॥ श्रीः ॥

॥ सनातनधर्म्म दर्पण ॥

॥ प्रथमभाग ॥

पण्डित रामस्वरूप शर्म्मा द्वारा
सङ्कलित और रचित

जिसको

मुरादाबाद निवासी--सनातनधर्म्म
कार्य्यालयाध्यक्ष पण्डित राम-
स्वरूप शर्म्मा तथा मुरादाबाद
निवासी गौड़वंश्य श्रीमान्
पण्डित गुरुसहायमल
जीके पुत्र चुन्नीलाल
शर्म्मा ने

डायमण्ड जुबिली यन्त्रालय कानपुर में छपवाया
सम्वत् १९५६ सन् १९००

॥ श्रीहरिः शरणम् ॥

सनातनधर्म दर्पण

॥ प्रथम भाग ॥

॥ हरिः ॐ श्रीगणेशायनमः ॥

॥ मङ्गलाचरण ॥

चेतोदर्पणमार्जनंभवमहा दावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणंविद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनंप्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नयनंपरंविजयतेश्रीकृष्णसङ्कीर्त्तनम् १

यत्पादपद्मं हृदये निधाय भवार्णवं साधु
जनास्तरन्ति। गोपीगणानां करतालकाभि
र्नृत्यन्तमन्द्रैस्तमहं भजामि ॥२॥

मालावर्हमनोज्ञकुन्तलभरा वन्यप्रसूनोक्षितां
शैलेयद्रवक्लृप्तचित्रतिलकांशश्वन्मनोहारिणीम
लीलावेणुरवामृतैकरसिकांलावण्यलक्ष्मीमयीं
वालांवालतमालनीलवपुषंवन्देपरांदेवताम् ३
लोकानुद्धरयन्श्रुतीमुखरयन्क्षोणीरुहान्हर्षयन्

शैलान्विद्रवयन्मृगान्विवशयन्गोवृन्दमानन्दयन्। गोपान्संभ्रमयन्मुनीन्मुकुलयन्सप्तस्वरानूजृम्भयन् नोङ्कारार्थमुदीरयन्विजयतेवंशीनिनाद:शिशो: ॥४॥

॥ कवित्त ॥

वेदन उधारि भूमिभार पीठिधारि धरा दशन उवारि हिरनकशिपु को मार्‍यो है। वलि छलिलेके क्षितक्षत्री विनु कैकै रन दश शिर जैकै हलधर वपु धार्‍यो है ॥ करुना विचारि यज्ञ विधिहि निवारि फेर कलि कल्की है कुल म्लेच्छन संहार्‍यो है। नन्दके कुमार तुम्हैं नमौ बार २ ऐसे दश अवतार अवतरि जगतार्‍यो है ॥१॥

॥ प्रणाम ॥

हे ओ३म् हे अनन्त हे भर्ग हे वरेण्य हे सत्य हे सनातन हे पूर्ण हे पर हे नित्य हे निरञ्जन हे ईश हे ब्रह्म तुम्हारे चरण कमलों में कोटि २ प्रणाम हैं हे सर्व हे सर्वमय हे सर्व व्यापिन् हे सर्वसान्निध्यभूत ! तुम जल स्थल आकाश वायु आदि सर्वत्र ओत प्रोतभावसे, भीतर और बाहर सूक्ष्म और स्थूल रूपसे व्यक्त और अव्यक्त भावसे विराजमान हो, हे विभो!

तुम्हारे चरणकमलों में कोटि कोटि प्रणाम है। हे आदि ! हे अनादि ! हे नित्य सत्य ! हे कालस्वरूप ! हे सर्वकाल विद्यमान ! तुम आदि और अन्तमें सृष्टि और प्रलयमें भूत और भविष्यत में जन्म और मरणमें, संयोग और वियोगमें सदा विराजमान रहते हो, जिससमय ब्रह्माण्ड का नाम मात्रभी नहीं था, जिस समय जल और थलमें पर्वतों और समुद्रोंमें, अन्धकार और प्रकाश में सर्वत्र अभेद एककार भाव था उस समय केवल आपही थे, हे प्रभो ! आपके चरणों में कोटि कोटि प्रणाम हैं ॥

॥ प्रार्थना ॥

हे प्रभो ! हे जगत्पते ! हे करुणासिन्धो ! हे दीनबन्धो ! आप अपने भक्तोंपर देखकर पुण्य हीन पुरुषोंको भ्रममें डालने वाले सगुण रूपको धारण करते हो, आपने ऋषियों की पीर हरने के लिये, अहिल्या के शाप दूर करने के लिये और मनुष्य चरित्रकी शिक्षा देनेके लिये तथा शबरी आदि अनेकों भक्तों की भीर हरने के लिये श्रीरामावतार धारण करा था, प्रह्लाद की रक्षा के निमित्त विचित्र नृसिंह रूप धारण किया था अधिक क्या कहैं आप सदाही अपने भक्तोंकी भीर हरते हुये अपने भक्तवत्सल नामको सार्थक करते हैं, हे ईश ! हे मधुसूदन ! आपने जिस कृपा कटाक्षसे, भारत वासियों को यवन सम्राटों के अत्याचारों से दुःखित देखकर परम न्याय शीला महाराणी विक्टोरिया के हस्तको भारतवासियों के

शीश का छत्र बनाया है उसही कृपाकटाक्ष से हम दीन भा-रतवासियों को सदा आनन्दित करते रहिये, जिससे हम सब लोग इस उत्तम ब्रटिश राज्यमें शान्ति के साथ सनातनधर्म का यथेष्ट आचरण करके आपके चरणों की सेवा करने के अधिकारी बनें ॥

॥ परमेश्वर स्तोत्र ॥

जगदीश ! विभो ! भुवनादि गुरो ! करुणामय ! शाश्वत ! शान्तिसर । रचिताञ्जलि रार्त्त जनोहिमिन ! प्रणमामि तवांघ्रिसरोज युगम् ॥१॥

त्वमनादि रजो जगदादि पिता त्वमनन्त ! ऋभो ! जगदन्तकरः । शरणागत दास मवेक्ष विभो ! कुरुपादरजः सुपवित्रतनुम् ॥२॥

सततं कृतमेव मया कलुषम् ! सुकृतिस्तु पितर्न कदापि कृता । अनुताप हुताशन तप्त तनुम् ! कुरु शीतलमीश्वर ! शान्तिजलैः ३

जय विश्वपते ! परमेश ! पितः ! जय नित्य सुखप्रद ! शान्तिमय । गतहीन मभाजनमल्य पतिं ! भवकातर किङ्करमादि विभो ॥४॥

तवपादयुगं सुपवित्रतमम् ! भवसागर ता

रणादिव्यतरिः। परमार्थ विवेकविहीनजनम्! परमेश्वर ! तारय पातकिनम् ॥५॥

सकलास्तु गुणास्तव पादभवा ! अगुणो ऽसि तथाप्यखिलादि गुरो। गुणहीन मधन्य मपुण्यजनं ! परमेश पुनीहिनुपातकिनम् ६

ननु तावक पादसरोजमधु ! भवरोग विनाशन भेषजकम्। भ्रमरेण चयेन निपीत मिदम् ! सुरलोकसुखं नुकिमिच्छतिसः ॥७॥

जय विश्वपते ! जगदादिपितः !! जयनित्य! निरामय ! नादि विभो। जय शङ्कर ! किङ्कर दुःखहर !! जयदेव ! नतोऽस्मि विधेहिशिवम् ८

॥ सनातनधर्म ॥

ऐसा कठोर हृदय कौनहोगा जो अपने बान्धवोंकी ऐसी हीन तमदशा को देखकर अपने नेत्रोंसे अश्रुपात न करता होय, हां यह वही ब्राह्मण ज्ञाति है जिसके पूर्व महर्षियों का गौरव देश देशान्तरों में सूर्य्यवत् प्रकाशित होरहा था हाय लिखते हृदय शतधा विदीर्ण होता है जो महर्षिगण केवल धर्मके आश्रय काल यापनकर अर्थात् स्वधर्म्मका मर्म समझकर उसके अनुसार आचरणकर एक समय वेदत्रयी कालत्रयी और लोकत्रयी के ज्ञाता प्रख्यात होरहे थे उन्हीं की सन्तान

आज हम यह नहीं जानते कि धर्म्म क्या वस्तु है यदि ऐसे समय में हमारी अवनति होय तौ आश्चर्य्यही क्या है क्योंकि धर्मोहतोहन्ति नरंधर्मोरक्षति रक्षतः—तथापि अपने पूर्वजनोंकी दूर दर्शिता के प्रभाव से अनेक ग्रन्थ ऐसे ऐसे प्रस्तुत हैं कि जिनमें स्वधर्मके मर्मको हस्तामलकवत् प्रत्यक्षकर दिखादिया है शास्त्र सागरोंमें गोतामारिये तौ अवश्य मुक्ताओं से झोळीभर जाय इसमें तनकभी सन्देह नहीं है ॥

हे महाशयो जगत्में धर्मही सार है मनुष्यों में जो मनुष्यत्व का लक्षणहै वही एकमात्र धर्महै धर्म्मका स्वरूप देखने से तद्धर्मावलम्बियों के पूर्व पुरुषों की गम्भीरता गौरव बुद्धिमत्ता और दूरदर्शितादि गुणों का यथावत् परिचय होजाता है संसार में अनेक गुण सभ्यता के द्योतक हैं परंतु सबों में श्रेष्ठ जैसा धर्महै तैसे अन्य नहीं हैं—अतएव आज पृथिवीभर के धर्मों की तुलना कीजाय तौ सर्व धर्मों में मुख्य अन्तःसार गर्भित समाज रक्षक अध्यात्म विद्यासे पूर्ण एवं सर्वगुण संपन्न एकमात्र हमारा सनातनधर्महो है इसके समान दूसरा उदार धर्म कोई पृथिवीभर में दृष्टि नहीं आता इसकी सिद्धिके लिये इसकी प्रत्येक शाखा का पूर्ण विवेचन कियाजायगा जिससे पाठकगणों को दृढ़ विश्वास होजायगा कि वास्तवमें यह हमारा सनातनधर्महो इस असार संसार से पार उतारनेवाला अर्थात् मोक्षप्रद और श्रेयस्कर है स्वधर्म के प्रत्येक नियमोंको देख अपने पूर्वाचार्य्य महर्षियों की दूर दर्शिता और जगत्

हितैषिता प्रकट होतीहै परन्तु क्याकहिये "लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति" बडे खेदकी बात है कि हमारे बहुतसे बन्धुवर्ग अपने सनातनधर्मके तत्वको विना समझे दोषारोपण करतेहैं और अन्य धर्मों में सार ढूढ़ते फिरते हैं कितनेही अन्यधर्मों में रुचितौ नहीं करते परन्तु स्वधर्मकी ओरसे गाढ़ी निद्रामें सोरहे हैं ऐसे पुरुषों के वास्ते तथा बहिर्मुख अनभिज्ञ नवशिक्षतों के लिये धर्म्म तत्वका लिखना परम आवश्यक है, धर्म्महीसे धन और धर्म्महीसे सांसारिक सुख विलास प्राप्त होताहै धर्म्महीसे परब्रह्म की प्राप्ति होतीहै इसलिये सर्वों को धर्म्मका आश्रयण करना उचितहै ॥

धर्म्मात्सञ्जायतेह्यर्थोधर्म्मात्कामोऽभिजायते।
धर्मादेव परंब्रह्म तस्माद्धर्मं समाश्रयेत् ॥

कूर्म पुराण और स्कन्दादि पुराणान्तरोंमें भी कहा है कि सुख और ज्ञान ये दोनों बातें धर्म्महीसे प्राप्त हो सक्तीहैं तिस कारण विद्वज्जनको उचितहै कि अन्य सब बातों को त्यागकर भलीभाँति से वह केवल धर्म्मका आचरण करैं ॥

धर्मात्सुखंच ज्ञानञ्च यस्मादुभयमाप्नुयात्।
तस्मात्सर्वंपरित्यज्य विद्वान्धर्मंसमाचरेत् ॥

और श्रीमद्भागवतमें प्रह्लादजीने कहाहै कि भगवद्भक्ति सम्बन्धी धर्म्मों में कुमारावस्थाही से बुद्धिमान् जनों को लगजाना उचितहै क्योंकि प्रथम तो मनुष्य जन्मही दुर्लभ सोभी

स्थिर न जाने कब चोला छूट जाय—परन्तु इस मनुष्य तनसे धर्म और मोक्ष साध्यहै इस कारण जितने दिन जीना उतने ही धर्म और मोक्षके साधन में यत्न करते रहना चाहिये ।

कौमारआचरेत्प्राज्ञो धर्मान्भागवतानिह । दुर्लभ मानुषं जन्म तदप्य ध्रुव मर्थदं ॥

धर्मही माता पिता है धर्मही बन्धु और सुहृदहै धर्मही भ्राता और मित्रहै धर्मही रक्षकहै धर्मके समान कोई बन्धु नहीं धर्मके समान कोई सुहृद नहीं धर्म लाभके समान कोई लाभ नहीं धर्मके समान कोई शरणागत का परित्राता नहीं है सज्जन पुरुष धर्मही की शरण ग्रहण करतेहैं और धर्म सज्जनों को सँभालता है धर्मही से संसार थँभा है धर्मही से संसारके व्यवहार का निर्वाह होताहै विद्या धन सुन्दर शरीर शूरता अच्छे कुलमें जन्म निरोगी तन यह सब बातें धर्मही से मिलती हैं और संसार में बार २ आवागमन से छूट जाना अर्थात् मोक्षका कारण जो तत्वज्ञान है वहभी धर्मही से मिलता है। शब्द स्पर्शरूप रस गन्ध ये सब इन्द्रियों के विषय कहलातेहैं इनमें से जो प्राणी जिनको जितना अपने आपत्त कर सक्ताहै जानकार लोग जानतेहैं कि शब्दस्पर्श इत्यादि सुख के विषय धर्मही का आचरण करनेसे प्राणी के आपत्त हो सक्तेहैं, जिसे बहुत धनकी आकांक्षा हो उसे चाहिये कि पहले वह धर्मही के अनुष्ठान में तत्परहो क्योंकि जैसे स्वर्गलोक के आश्रयण विना किसीको अमृत नहीं मिलसक्ता है ऐसे

ही धर्माचरण का परिग्रहण किये बिना ऐश्वर्य लाभ किसीको नहीं होसक्ताहै । और जो मनुष्य अपने हृदयमें धर्मानुष्ठान करने का संकल्प करै और यदि वह धर्मानुष्ठान करने के पूर्व ही कदाचित् मृत्युको प्राप्त होजाय तो वह धर्मानुष्ठान के संकल्प जनित पुण्य मात्रसेही स्वर्गवासी होताहै—जो धर्मसे धन उपार्जन करतेहैं वह सच्चे कहातेहैं—धन लाभकी इच्छासे सनातन स्वर्ग सुखके दाता धर्मका त्याग कदापि न करना चाहिये—क्योंकि धर्मके अनुष्ठानसे धन और सांसारिक सुख विलास भी उपलब्ध होताहै इसकारण आप सदां धर्मके अनुष्ठान में क्यों नहीं लगते । जो जन धनागार होकर शान्ति प्रकृतिसे श्रद्धा समेत धर्मरूपी उत्तम कर्मको अनुष्ठान करते हैं उनका धन प्रकृति की शांति और श्रद्धा और भी बढ़ती है उनके यहां क्रमसे एक उत्सव के अनन्तर दूसरा उत्सव होता रहताहै और एक सुखकी प्राप्ति के अन्तर दूसरा सुख प्राप्त होताहै और अन्तमें जब उनको स्वर्गलाभ होताहै तो सुख दायक एक स्वर्गके भोग के अनन्तर उससे अधिक सुखदायक दूसरे स्वर्गको भोग उपलब्ध होता है और फिर धर्म के अनुष्ठान की आवृत्ति करते रहनेसे धर्मके अनुष्ठाता पुरुषकी बुद्धि वृद्धिको प्राप्त होतीहै वह पुरुष सदां पुण्य कर्महीके अनुष्ठान में प्रवृत्त रहता है । जो मनुष्य सांसारिक सुख विलास की कामना (प्राप्तकी इच्छा) रखता हो उसे उचित है कि धर्माचरण में दत्तचित्त होवै कारण जो धर्मानुष्ठान करता है

उसके पक्षमें कुछभी दुर्लभ नहीं है जैसे चरही में मेंडक और जलयुक्त जलाशय में पक्षी अवश्य आते हैं तैसेही समस्त सम्पत्ति धर्मानुष्ठान करनेवाले के समीप स्वयंजाती है ॥

कामार्थौलिप्समानस्तु धर्ममेवादितश्चरेत् ।
नहिंधर्मादृतेकिञ्चिद दुष्प्रापमितिमेमतिः ॥
निपानमिवमण्डूका रसेपूर्णमिवाण्डजाः ।
शुभकर्माणमायान्ति विवशाःसर्वसम्पदः ॥

और धर्मही से राज्यधन और सुख मिलताहै इस कारण जो सुख की इच्छा रखते हों उन्हें उचित है कि धर्मानुष्ठान करैं लोक और परलोक में जो सुख मिलता है वह धर्म ही के अनुष्ठान से मिल सक्ता है सुख प्राप्तिका धर्म से भिन्न अन्य कोई उपाय नहीं है इस कारण जो अपने मनोरथों को पूर्ण करना चाहे उसे उचित है कि धर्मानुष्ठान करै जो कोई धर्म युक्त कर्मका संकल्प करता है वह उस विचार मात्रसेही ऐसी उन्नति को पहुँचाताहै जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमा अपनी कलाओं से बढ़ता है । जगत के प्राणियों में जिसकी उन्नति होती है वह उसके अनुष्ठित धर्म केही प्रभावकी बढ़ती सेही होती है और इसके विपरीत जिस किसी प्राणी की संसार में अवनति होती है वह उसके धर्मानुष्ठान के अभाव केही कारणसे होती है । इसलिये हे प्रिय ! उन्नति और अवनति के हेतुओं को परिचिन्तन करके धर्मही की बढ़ती में तत्पर होना चाहिये । और श्री मनु भगवान ने कहा है कि जो मनुष्य

वेदों और धर्म शास्त्रों मे जतलाये हुए धर्म का अनुष्ठान करता रहता है वह इस लोकमें कीर्ति और परलोक में सर्वोतम सुख को प्राप्त करता है वास्तव में प्राणियों का सुहृद् (ऐसा हित कारी जो अपने किसी प्रत्युपकार की प्रत्याशा के विना अपने मित्र का उपकार करै) केवल एक धर्म ही है कि जो मरणान्त में भी संगदेता है क्योंकि प्राण छूट जाने से और सब कुछ छूट जाता है परन्तु धर्म उस समय में भी सहायक होता है इस कारण सबको उचित है कि धर्म को अपना सदा सहाय बनावें परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि धर्म चटपट बटोरे नहीं बटुरता है किन्तु धीरे २ बटोरने बटुरता है इस कारण धर्म कर्म में लगा रहना उचित है जिस स्थान मे दूसरी किसी वस्तु द्वारा पार पहुँचना अशक्य है ऐसे नरक स्थान से निस्तार केवल धर्महीकी सहायतो से होता है ॥

श्रुतिस्मृत्युदितंधर्म मनुतिष्ठन्हिमानवः ।
इहकीर्तिमवाप्नोति प्रेत्यचानुत्तमंसुखं ॥
एकएवसुहृद्धर्मो निधनेप्यनुयातियः ।
शरीरेणसमंनाशं सर्वमन्यद्धिगच्छति ॥
तस्माद्धर्मंसहायार्थं नित्यंसञ्चिनुयाच्छनैः ।
धर्मेणहिसहायेन तमस्तरतिदुस्तरम् ॥

और जैसे पके हुए फल डाल से नजाने कब चू पड़ेंगे इस बात की शंका सदा बनी रहती है इस कारण बाल्यावस्था

ही से धर्म के अनुष्ठान में तत्पर हो जाना चाहिये इस लोकमें धर्मही सज्जनों का सँभालने वाला है और परलोकमें भी धर्म सज्जनों का सहारा है इसलिये काम क्रोध अथवा अन्य मनो वृत्तों से व्याकुल हो धर्म से हाथ धो बैठना उचित नहीं है, हे तात! सबसे उत्तम पावन यह एक और बात भी मैं तुमसे कहता हूं कि काम से वा भयसे वा लोभ से कदापि धर्म का परित्यांग न करना चाहिये—यहां तक कि प्राण जाने से धर्म बचता हो तो प्राणों को जाने देना परन्तु धर्म को नहीं॥

बालएवचरेद्धर्म मनित्यञ्जीवनंयत:।
फलानामिवपक्वानां शश्वत्पतनतोभयम्॥
नकामान्नचसंरम्भा न्नोद्वेगाद्धर्ममुत्सृजेत्।
धर्मएवपरेलोक इहचैवाश्रय:सताम्॥

इदन्त्वांसर्वंब्रवीमि पुण्यप्रदंतातमहाविशिष्टम्। नजातुकामान्नभयान्नलोभा द्धर्मंजह्याज्जीवितस्यापिहेतो:॥

॥ धर्म मीमांसा ॥

धर्म तलवार की धार की समान कठिन वस्तु है, धर्म का पालन करना औरभी कठिन है, केवल जप, तप अथवा आराधनों से धर्म का पालन नहीं होता है, तथा केवल सत्य बोलने से, न्यायवान अथवा जितेन्द्रिय होने से भी पुरुष धार्मिक नहीं होसक्ता, धर्मका मूलतत्व अति सूक्ष्म है, और अत्यन्त

गम्भीर चिन्तवन का विषय है, इसीलिये शास्त्र में भी बारम्बार उपदेश करा है कि

धर्मस्यतत्वंनिहितंगुहायां।
देवानजानंतिकुतोमनुष्याः॥

अर्थात् धर्म का तत्व अत्यन्त गूढ़ भावसे स्थित है, देवता भी एकायकी उसको नहीं समझ सक्के, इस क्षुद्र मनुष्य की तो वार्ताही कौन ? यह कथन ठीक ही है। हम जिसको धर्म जानते हैं क्या केवल वह ही धर्म है ? हम जिसको जान लेते हैं क्या वास्तव में वह ही धर्म है, हमारे शास्त्रों में तौ कहीं वैसा वर्णन नहीं है, शास्त्रमें लिखाहै सत्य, सत्य वार्ता बोलना चाहिये। शास्त्र में लिखा है परोपकार, परोपकार से परम पुण्य होता है प्राण देकर भी परोपकार करना चाहिये, शास्त्र में ठीक लिखा है अहिंसा परम धर्म है शास्त्र में ठीक लिखा है कि-क्षमावान् और जितेन्द्रिय होना चाहिये। मान लिया कि यह सब सत्य है, जानलिया कि-सत्य भाषण आदि इन सबों के प्रत्येक अणु अणु और परमाणु मात्र अंश में भी धर्म का फल स्थित है निश्चय करलिया कि-धर्म के इन सकल अङ्गोका पालन करूंगा। सत्य को छोड़कर कदापि मिथ्या नहीं बोलूंगा, सदा परोपकार करूंगा, परन्तु क्या केवल इतना करने सेही धर्मका पालन होजायगा, ? मैं केवल सत्य वादी, मैं केवल क्षमावान् मैं केवल जितेन्द्रिय, इस प्रकार सत्यादि गुणवान् होने से क्या निर्विघ्न धार्मिक पद प्राप्त हो

सक्ता है। क्या यही धर्मका लक्षण है? नहीं ऐसा नहीं है, हमारे किसी शास्त्रकार ने भी ऐसा नहीं कहा है, जहांतक बुद्धिको दौड़ाया जाय उससे प्रतीत होताहै कि-इन सत्यादि सबका पालन करना ठीक है परन्तु इन के पालन की रीति को विचारना परम आवश्यक है। सत्यादि सब का पालन करना चाहिये यह ठीकहै, सत्यवादी जितेन्द्रिय, परोपकारी न्यायवान् होना उचितही है परन्तु सबका समयोचित महत्व विचारे। नहीं तो क्या केवल सत्यबादी होने से धर्म की रक्षा हो सक्ती है? क्या केवल परोपकारी होने से धर्म की मर्यादा रह सक्ती है? और यदि ऐसा निश्चय होजाय की सत्यादि सबका ही पालन आवश्यक है तो इनकी परस्पर की विषमता की मीमांसा होना अति कठिन है, अर्थात् जो सब समय में सत्यबादी परोपकारी, क्षमावान् और जितेन्द्रिय होसकै वह ही धर्म का पालन करसक्ता है। परन्तु हर समय इन गुणों से युक्त होना अत्यन्त ही कठिन है, क्योंकि जहां एककी मर्यादा की रक्षा होती है दूसरी मर्यादा नष्ट हुई जाती है, एककी सहायता करने पर अन्य के मस्तकपै पदाघात होता है, उस समय क्या करना चाहिये? उस समय ही कर्तव्य के महत्व की विवेचना करने की आवश्यक्ता पड़ती है, वह कर्तव्य के महत्व की विवेचना ही धर्म के गूढ़तत्व का विचार है, हमारे शास्त्रों में यह विषय बारम्बार आलोड़न किया गया है, प्रत्येक चरण रखने पर महर्षि गण शास्त्रोंकी तिस अलोड़ित आज्ञा को पालन करने के लिये कहगए हैं,

हिन्दुओं के शास्त्र की समान धर्म की यथोचित मीमांसा करने वाला किसी दूसरे मत का शास्त्र नहीं है, और सकल विषयों में सकल शास्त्रों का मत यद्यपि एक है परन्तु इस प्रकार धर्मके तत्व की मीमांसा अर्थात् धर्मके अङ्गोंमें परस्पर विरोध पड़ने पर उसके परिहार की मीमांसा और किसी के यहां नहीं है, इस कारणही हिन्दुओंका शास्त्र सर्वाङ्ग पूर्ण है और हिन्दू जगत् में सबसे श्रेष्ठ गिने जाते हैं, हिन्दुओं के शास्त्र की समान और कहीं ऐसा देखने में नहीं आता कि जहां धर्म के दो अङ्गों का परस्पर विरोध हो तहां क्या व्यवस्था करनी चाहिये? इसका निर्णय ही इस विषय को और सरल करके दिखाते हैं कि कोई पुरुष अपने मनमें विचार करै कि मैं क्षमावान् हूँ और जितेन्द्रिय भी हूँ परन्तु जिस समय उसके सामनें कोई दुष्ट पापाचारी पुरुष किसी सदाचार स्त्री के ऊपर बलात्कार करने लगे तौ उसको क्या करना चाहिये? यदि उस समय अपने को क्षमाशील और जितेन्द्रिय समझ कर चुप रहजाय तौ धर्म में त्रुटि होती है उस समय क्षमा को त्यागकर क्रोध बिना करे कदापि कार्य नहीं चलेगा, इसलिये ऐसे अनेकों स्थलोंपर समयानुसार कर्तव्यके महत्वको जानना परमावश्यक है, ऐसे और बहुत से दृष्टान्त हैं, जहाँ धर्म के गूढ़ तत्व की मीमांसा करना कुछ सहज बात नहीं है, ऐसा संकट धर्म में पद २ पर आकर प्राप्त होता है। ऐसे मौकोंपर सनातन धर्मावलम्बियों को क्या करना चाहिये? क्या ऐसे समय के आपड़नेपर धर्म की मीमांसा नहीं करनी पड़ेगी?

क्या ऐसे समय कर्तव्य के महत्व का विचार करना मुख्य कार्य नहीं है ? किन्तु हैही है। ऐसे विषय में हमारे पुरातन शास्त्रकार कैसी उच्च श्रेणी का सदुपदेश सब को देगए हैं जिसका वर्णन नहीं होसक्ता, ऐसी अनेकों घटना देखने में आती हैं कि–जहां सत्य भाषण से किसी पुरुष केप्राण जाने की संभावना होतीहै, इस विषयकी हमारे पुरातन धर्मतत्वज्ञ शास्त्रकार महर्षि कैसी सुन्दर मीमांसा कर गये हैं, उनकी आज्ञा है कि--यदि सत्य बोलने से किसी के प्राण जाते होयँ तो उस सत्य भाषण से पाप भोग के सिवाय कदापि पुण्य प्राप्ति नहीं होसक्ती क्योंकि देशकाल और पात्र का विचार करके धर्माचरण करने के लिये शास्त्रकी आज्ञाहै। इस विषय में हमारे परम पूजनीय वेद विभागकर्ता सर्वशास्त्रपारंगत वेद व्यासजीने कर्तव्य के महत्व के विचार करने का परिचय देने के लिये कैसा सद्विचार से भरा हुआ इस सर्वोत्तम धर्म मीमांसा का मूर्तिमान् दृष्टान्त महाभारत में लिखा है–पूर्वकाल में एक शिवि नामक परम धर्मात्मा राजा था, सत्य भाषण परोपकार न्यायवान् पना, जितेन्द्रियता अधिक क्या कहैं सब ही विषय में उसकी समान धर्म निष्ठ कहा जा सक्ता था, सर्वत्रही उन महाराज का गुणगान होताथा, सर्वत्रही उनकी धर्म निष्ठा का यश फैला हुआ था, एक दिन राजा राजसभा में बैठेहुए विचार कररहे थे उसी समय एक कपोत पक्षी उड़ता हुआ आया और महाराजा शिवि से कहने लगा कि--महा राजा रक्षाकरो–मेरे प्राण जाते हैं” यह समीप मेंही श्येन पक्षी

मेरे मारने के लिये आरहा है "धर्मात्मा राजा और क्या करै आश्रित की रक्षा करना भी धार्मिक पुरुषों का धर्म है, इस लिये राजा ने उस कपोत की रक्षा के लिये मन में विचारा और उस कपोत से बोले कि" भयमत कर-मैंतेरी रक्षा करूंगा यह सुनकर कपोत को धैर्य हुआ, इतनेही में पीछे २ लम्बे २ श्वास लेताहुआ श्येन पक्षीभी राजाके पास आया और राजा ने कपोत को अभय दिया है ऐसा देखकर कहने लगा कि-हे महाराज! आपने यह धर्म निन्दित कार्य कैसे किया? आप मेरे भोजन में विघ्न डालकर मेरा अपकार करने के लिये किस कारण उद्यत हुए हैं? मेरे मुखका ग्रास निकालकर क्या आपके धर्म की रक्षा होगी? ईश्वर ने हमारे भोजन के लिये ही इनको रचाहै, इनको खाकर ही हम अपना जीवन धारण करते हैं, ऐसी अवस्था में हमारे खाने की वस्तु को मुख से निकाल कर छिपा लेना क्या आपका धर्म का कार्य है? इस लिये जैसे भी हो मेरा भोजन मुझे दीजिये, नहीं तो परका अपकार करने से आप के धर्म की हानि होगी, ईश्वर ने जिस के लिये जो वस्तु रची है, वह वस्तु उसके ही व्यवहार में लानो उचित है। राजा यह सुनकर बड़े विषम संकट में पड़ गए, एक ओर आश्रित के प्राणों की रक्षा, दूसरी ओर एक प्राणी के उचित अधिकार में हस्तक्षेप, एक को बचाकर उसकी प्राण रक्षा करने से दूसरे के आहार में विघ्न पड़कर उसका बड़ा भारी अपकार होता है ऐसी दशामें इस समय उनको क्या करना चाहिये? विचार करके देखने पर उस

समय दोनों ओर उनके धर्ममें बाधा पड़ती है, ऐसे विषम संकट के प्राप्त होनेपर राजा शिवि न आगे को बढ़सक्ते हैं, न पीछे को हटसक्ते हैं इसलिये इस बार्ताका निश्चय करने के लिये वह अत्यन्तही व्यग्र हुए कि—मैं क्या करूँ! किस उपाय से कार्य्य सिद्धि होसक्ता है? दोनों ओर धर्म में बाधा पड़ती है, दोनों ओर एकन एक प्राणियों की हत्याका पातक लगता है, एक ओर एक प्राणी की रक्षा न करने से उसके प्राण जाते हैं, दूसरे ओर दूसरे प्राणी को भोजन न मिलने से वह मराजाता है, इस विचार में राजा का चित्त बड़ा ही उद्विग्न हुआ, उस समय राजाने अगति के गति, अशरण को शरण देनेवाले श्रीमधुसूदन भगवान् के नामको स्मरण करके प्रार्थना करी कि—हे हरे! उपाय करो प्रण को रक्खो? अधिक क्या कहैं, उस प्रार्थना करने के साथ २ मानो उनके कान में कोई मंत्र रूप सुन्दर उपदेश होगया, उसी समय राजा मानो अपूर्व स्वर्गीय प्रकाश से हृदय और मनको तृप्त करके तिस श्येन पक्षी से कहने लगे कि—अच्छा तुम्हारी जिसमे कुछ हानि न होगी, मैं वह ही उपाय करता हूँ मेरे आश्रित कपोत के भी प्राण बच जायँगे और उसके साथ २ तुमको भी आहार मिल जायगा, मैंने ऐसा एक उपाय विचार लिया है। यह कहते कहते राजाने एक तेज छुरी से अपने अङ्ग में का खाने के लायक मांस काट कर हँसते २ तिस श्येन पक्षी से कहा कि यह लो अपना आहार, मेरे शरीरके मांसमेही तुम तृप्त होओ इस कपोत की ओर अब दृष्टि मत देना। प्रिय पाठकगण! देखिये

कैसे २ धर्म निष्ठ हो गए, जिनकी प्रभुता से जगत् इस समय पर्य्यंत उज्ज्वल हो रहा है, क्या ऐसी धर्म की मीमांसा करने को जगत् में और कोई समर्थहै ? क्या ऐसी धर्मकी मीमांसा सनातन धर्म के पालक हिंदुओं के सिवाय और कहीं है। धर्म का पालन करने के लिये ऐसा स्वार्थत्यागी ऐसा परोपकारी और ऐसा सद्विचारक होना चाहिये, नहीं तौ केवल स्वार्थ खोजने से धर्म का पालन नहीं होता है, इसीलिये शास्त्रकार कहगए हैं कि–धर्मका तत्व बड़ाही गुप्त है, धर्म की मीमांसा बड़ी ही कठिन है, जो ऐसी धर्म मीमांसा के व्रतका अनुष्ठान करते हैं, जिनको इस धर्ममीमांसा का पार मिलगया है, वहही इस जगत्में धन्यहैं, उनकाही धर्मका विचार सार्थकहै॥

॥ आश्रम बिचार ॥

जगत् में परोपकार करनेवाले हैं तो सनातनधर्म्मावलम्बी हिन्दूही हैं, हमारे पूर्व शास्त्रकार ऋषि महात्मा केवल परोपकार के निमित्तही अपने जीवन को कठोर व्रत के साथ व्यतीत करगए, हिन्दू स्वार्थ रूप माया के वन्धन में कदापि नहीं फँसे, केवल अपनेही को निरन्तर सुख मिलनेकी इच्छा से हिन्दू किसी कार्य्य को नहीं करते हैं विषय वासना के वशीभूत होकर अपने काल को व्यतीत नहीं करते हैं, हमारे पूर्वज ऋषि महात्मा जिस समय पवित्र सलिला सरस्वती के तटपर योगासन से बैठकर लोक पालिका शक्ति की आराधना करते थे उस समय प्राणियों का केवल हित साधन ही

उनका प्रयोजन होता था, हमारे पूर्वज ऋषि महात्मा जिस समय शान्तिमय तपोवन में निवास करके एकाग्र चित्त से अमृतमयी सरस्वती शक्ति का आवाहन करते थे उस समय संसार के हित साधन की ओरही उनका ध्यान होता था, हमारे शास्त्रकार जिस समय शास्त्रोंकी रचना करने में चित्त लगाते थे उस समय संसार के कल्याण की ओरही उनका ध्यान होता था, वह महात्मा परम शान्तिमय, विषय भोगकी इच्छा रहित और भिक्षासे जीवन धारण करनेवाले थे, जैसा वहइन्द्रियोंको अत्यन्तही वशमें रखकर जितेन्द्रियताका परिचय देते थे तिसी प्रकार परोपकार साधन काभी सर्वोपरिध्यान रखते थे, वह ऋषि महात्मा साधारण फूंस पत्तोंकी झोपड़ियों में रहकर और भिक्षाका अन्न भोजन करके जिस सभ्यता को चलागए हैं वह आजतक पृथ्वी पै सबसे श्रेष्ठ गिनी जाती है, लोक के हितके लिये जिन शास्त्रों को रच गए हैं वह आजतक भारतवासियों को ज्ञान और धर्म की महिमा से भूखण्ड भरमें सर्व श्रेष्ठ प्रसिद्ध कर रहे हैं। हमारे पूर्व शास्त्रकारों के बताए हुए चार आश्रम परोपकारिता और आत्म संयम का अद्वितीय परिचय देतेहैं। मनुष्य के जीवनकी चार अवस्थाओं के लिये जो चार प्रकार के व्रतों को धारण करने की रीति है उनकोही चार आश्रम कहतेहैं, उनचार आश्रमों में पहिला ब्रह्मचर्य दूसरा गृहस्थ तीसरा वानप्रस्थ और चौथा संन्यास है। हिन्दू किस प्रकार अपने पवित्रतायुक्त दीर्घ जीवन को विताते हैं। सब प्रकार के स्वार्थ को त्यागकर हिन्दू सन्तानों

के क्या प्राणी मात्रके उपकार के लिये अपने जीवन को किस प्रकार परोपकारता में तत्पर कर दिखाया है और अपने सनातनधर्म में कैसी गम्भीर श्रद्धा और भक्ति दिखाते हैं सो सब इन चार आश्रमों का विषय विचारने से हृदय पर चित्रित होजायगा, चारों आश्रमों में प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य, हिन्दुओं के सनातनधर्म रूपी मन्दिर के चढ़ने के लिये ब्रह्मचर्य पहिली सीढ़ी है, जिस प्रकार बीजके योग्यजल और ताप (उष्णता) की सहायता से फलको उपजाने वाला महाबृक्ष परिपक्व दशा को प्राप्त होता है तिसी प्रकार हिन्दू ब्रह्मचर्य की सहायता से धर्मतत्वके अधिकारी आर्य्यनाम को प्राप्त हुए, वाल्यावस्था में हृदय में जो भाव प्रवेश करता है, अवस्था की वृद्धि के साथ क्रम २ से वह आधिक्य और विकाश को प्राप्त होता है वाल्यावस्था का ज्ञान, वाल्यावस्था की शिक्षा, वाल्यावस्था की धारणा चिरकाल हृदय पर अंकित रहती है, जिस प्रकार पत्थर की लकीर सहज में नहीं मिट सक्ती तिसी प्रकार वाल्यावस्था की शिक्षा आदिका भी हृदय से दूर होना सहज नहीं है, इसी कारण हमारे तत्वज्ञ पुरातन महर्षियों ने इस आर्यावर्त में वाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य पालन की प्रणाली बांधी है, जिस शिक्षा से हिन्दू जगत् प्रसिद्ध आर्य्य नाम की सार्थकता को प्राप्त करसक्ते हैं, जिस शिक्षा से देह सवल, मन उन्नत, हृदय पवित्र और आत्मा परमात्मनिष्ठ होता है, जिस शिक्षा से सकल प्राणियों के हित साधन रूप ब्रत में दीक्षित परम महिमा को प्राप्त और महापुरुषों की श्रेणी में प्रविष्ट हो

सक्ते हैं, हिन्दुओं के बालक ब्रह्मचर्य आश्रम में उसही शिक्षा को पाते हैं, हमारे पूर्व पुरुष श्रेष्ठ प्रणाली के द्वारा उस शिक्षा की व्यवस्था करगए हैं, कि लोक पूजित आर्य्यावर्त निवासी असाधरण ज्ञान की प्राप्ति के प्रभाव से आज भी सभ्य जगत् को विस्मय में डाल रहे हैं, उनके ज्ञानकी भित्ति (दीवार) इस ब्रह्मचर्य व्रतरूपी भूमिपरही स्थितहै, जो हिन्दू वीर पुरुष अनन्य साधरण वीरता और तेजस्विता को दिखाकर वीरेन्द्र समाज में प्रसिद्ध होगए, इस कठोर और अपूर्व चित्त संयम रूप ब्रह्मचर्य व्रतसेही उनकी वीरता और तेजस्विताका अंकुर उत्पन्न हुआ था, जिन धर्म परायण गृहस्थ हिन्दुओं ने न्याय कारिता और समदर्शी पने में अनन्त अक्षय कीर्ति को पाया यह ब्रह्मचर्य आश्रम ही उनके तिस अनिवर्चनीय देवभावका बीजथा, वह ब्रह्मचर्याश्रममें जिस शिक्षाके बीजका संग्रह करते थे उस बीजसे विश्वव्यापी महान् वृक्षउत्पन्न होकर अपनी स्निग्ध घनी छाया से जगत् भरके प्राणियों को तृप्त करता था।

उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार के अनन्तर द्विज कुमार वेदादि शास्त्रोंको सीखने के लिये गुरुकेसमीप जातेथे, इसही समय से उनके ब्रह्मचर्य्य को प्रारम्भ होता था, वेद का नाम "ब्रह्म" होने के कारण ब्रह्मचारी वा वेद शिष्य कहाते थे, गुरुके घर शिक्षा लेतेहुए ब्रह्मचारी को कमसेकम नौवर्ष और अधिक से अधिक छत्तीस वर्ष व्यतीत करने की रीति थी, अथवा शिक्षार्थी द्विज कुमार जितने समय में वेदत्रयी में अधिकार प्राप्त कर सक्ते थे, उतने दिनों गुरु कुल में निवास करते

थे, मनुस्मृति में ब्रह्मचारी के लिये बड़े कठिन २ नियमों को पालन करना लिखाहै, गुरुके यहां रहते समय छात्रको उनहीं सकल नियमोंके आधीन होकर चलना पड़ताथा, हमारेप्राचीन शास्त्रों में शिक्षा के चार विषय कहे हैं-देह और मन, आत्मा और हृदय। देह को बलवान् और निरोग करना, शास्त्र के ज्ञान से मनकी उन्नति प्राप्त करना, देवपूजन आदिसे आत्मा को ईश्वर में निष्ठावान् करना और भक्ति श्रद्धा तथा विलास शून्यता से हृदय को पवित्र करना शिक्षा का एक २ अंग था, मनुस्मृति के नीचे लिखे हुए श्लोकोंसे यह विषय स्पष्ट प्रतीत होता है, पहिले देह के बलिष्ठ और निरोग रखने के लिये ब्रह्मचारी के लिये यह नियम कहे हैं ॥

दूरादाहृत्यसमिद्धः संनिदध्याद्विहायसि ।
सायंप्रातश्चजुहुयात् ताभिरग्निमतन्द्रितः ॥
उदकुम्भंसुमनसो गोशकृन्मृत्तिकाकुशान् ।
आहरेद्यावदर्थानि भैक्षंचाहरश्चरेत् ॥
अकृत्वाभैक्षचरण मसमिध्यचपावकम् ।
अनातुरःसप्तरात्र मवकीर्णिव्रतंचरेत् ॥
मुण्डोवाजटिलोवास्यादथवास्याच्छिखाजटः
नैनंग्रामेभिनिम्लोचेत्सूर्य्योनाभ्युदियात्क्वचित्
तञ्चेदभ्युदियात्सूर्यः शयानःकामचारतः ।
निम्लोचेद्वाप्यविज्ञानाज्जपन्नुपवसेद्दिनम् ॥

हीनान्नवस्त्रवेशास्यात् सर्वदागुरुसन्निधौः ।
उत्तिष्ठेत्प्रथमंचास्य चरमंत्रैवसंविशेत् ॥

अर्थात्–ब्रह्मचारी दूरमे समिध काष्ठ लाकर कुटीकेऊपर अथवा किसी खुले हुये स्थान में सूखने को रखदेय, और आल सहित होकर सायंकाल तथा प्रातःकाल के समय तिन समिधाओं के द्वारा हवन करै, आचार्य (गुरू) के लिये जल का कलश, पुष्प, गोमय, मृत्तिका, और कुश लावै, इसके सिवाय गुरू के प्रयोजन की सब वस्तु इकट्ठी करदेय, स्वयं प्रतिदिन भिक्षा मांगकर लावै यदि ब्रह्मचारी निरोग अवस्था में सात रात्रि बराबर भिक्षान्न भोजन और सायंकाल तथा प्रातःकाल के समय समिधाओं से होम नहीं करै तौ उसका लोप होजाता है जिसने मस्तक के सकल केशों को मुंडन करालिया है, जो मस्तकपर जटाओंको धारण करता है, और जो मस्तक के केशों का मुण्डन कराकर शिखा मात्र धारण करता है, वह सूर्य के उदय काल में वा अस्तकाल में ग्राम में शयन न करे यदि आलस्य वश ब्रह्मचारी शयन करता होय और सूर्य उदय होजाय, वा ब्रह्मचारी अज्ञान वश शयन करता होय और सूर्य अस्त होजाय तौ विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करे, गुरू जिसप्रकार के अन्न भोजन और वस्त्र भूषणादि को व्यवहार में लावै शिष्य उससहीन अन्न भोजन और वस्त्र भूषणादि को व्यवहारमें लावै शिष्य कुछ रात्रि के शेष रहनेपर गुरू के शय्यासे उठनेसे पहिलेही उठबैठे और गुरूके शयन करने

के अनन्तर शयन करै। मनुस्मृतिमें इसी प्रकार और भी बहुत से नियम हैं, ध्यान देकर इस विषय का विचार करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि–पूर्वोक्त नियमों का पालन करनेसे शिक्षार्थी ब्रह्मचारी का शरीर अवश्यही सुस्थ और बलिष्ठ होजायगा, पहिले ब्रह्मचारी प्रत्यूष काल में शय्या से उठते थे, आचार्यके प्रयोजन की वस्तु इकट्ठी करके देतेथे, दिनमें शयन नहीं करते थे, घर २ फिरकर भिक्षा मांगकर लातेथे उनको जल लाना यज्ञके लिये समिधालाना, होमके स्थानको स्वच्छ करना और दिन रात गुरूकी सेवा करनेमें तत्परहोना पड़ताथा इसप्रकार शारीरिक परिश्रमके साथ कार्य्य करनेसे उनके दैहिक बलकी बृद्धि होतीथी, वह जैसे कष्ट सहिष्णु होते थे वैसेही श्रम शील, सुस्थ शरीर और फुर्तीले भी होतेथे इस प्रकार जो ब्रह्मचारी गुरूके पास वेदादि शास्त्रों का अभ्यास करते थे उनको दशप्रकारके धर्म लक्षणोंको अभ्यास करना होताथा मनुस्मृति में वह धर्मके दशप्रकारके लक्षण इस प्रकार कहेहैं॥

धृतिःक्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

अर्थात्—सन्तोष, क्षमा, मनको संयम चोरी न करना, शारीरिक और मानसिक पवित्रता, इन्द्रिय निग्रह, शास्त्रज्ञान, आत्मज्ञान, सत्य बोलना और क्रोध न करना। ब्रह्मचारी सावधान चित्तसे इन सकल विषयों में पारदर्शी होतेथे चिरकाल पर्यन्त सावधानी और उद्योग के साथ शास्त्र का

अभ्यास करनेसे उनकी मानसिक शक्तिकी उन्नति होतीथी, वह सर्व शास्त्रों में पूर्णपण्डित होकर अपने अपूर्व ज्ञानके प्रकाश से संसारको प्रकाशित करते थे, आत्मा और हृदयकी शिक्षा के विषय में मनुस्मृति में इस प्रकार लिखा है ॥

नित्यंस्नात्वाशुचिःकुर्यात् देवर्षिपितृतर्पणम् ।
देवताभ्यर्चनञ्चैव समिदा धानमेवच ॥
गुरोर्यत्र परीवादो निन्दावापि प्रवर्त्तते ।
कर्णौतत्रविधातव्यौ गन्तव्यंवाततोऽन्यतः ॥
आचार्योब्रह्मणोमूर्त्तिः पितामूर्त्तिप्रजायतेः ।
मातापृथिव्यामूर्त्तिस्तुभ्रातास्वोमूर्त्तिरात्मनः॥
आचार्यश्च पिताचैव माताभ्राताच पूर्वजः ।
नार्त्तेनाप्य वमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥
यंमातापितरौक्लेशं सहेते सम्भवे नृणान् ।
नतस्यनिष्कृतिः शक्या कर्तुंवर्ष शतैरपि ॥
तयोर्नित्यं प्रियंकुर्या दाचार्यस्यच सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपःसर्वं समाप्यते ॥
तेषा त्रयाणां शुश्रूषा परमन्तप उच्यते ।
नतैरभ्य ननुज्ञातो धर्ममन्यत्समाचरेत् ॥

अर्थात्-प्रति दिन स्नान करके शुद्धभाव से देवता ऋषि और पितरों का तर्पण, देव पूजन और समिधाओं के द्वारा हवन करै, जहां गुरु का परिवाद और गुरु की निन्दा होय

शिष्य तहां होय तौ दोनों हाथों से अपने कानों को बन्द कर लेय अथवा अन्यत्र चला जाय। आचार्य ही वेदान्त में वर्णन करेहुए परमात्मा की मूर्तिहै, और भ्राता अपनी द्वितीय मूर्ति है अतएव इनका अपमान करनो उचित नहीं है। आचार्य, पिता, माता और ज्येष्ठ भ्राता आदि गुरु जनों से पीड़ित रहने पर भी कोई पुरुष और विशेष करके ब्राह्मण इनका अपमान न करै। माता पिता सन्तान के लिये जिस क्लेश को सहते हैं पुत्र सैकड़ों वर्ष मेंभी उसकी निष्कृति नहीं करसक्ता है, अतएव सर्वदा माता पिता और आचार्य का प्रिय कार्य करै, इन तीनों के प्रसन्न होनेपर पूर्ण तपस्या का फल प्राप्त होजाता है। उन तीनों शुश्रुषा ही परम तप कहता है, उनकी आज्ञा के बिना किसी धर्मका अनुष्ठान न करै। इसके सिवाय हृदय की पवित्रता की प्राप्ति के लिये सब प्रकार के विलासों को त्यागने के विषय में इस प्रकार नियम लिखे हैं कि ब्रह्म चारी मद्यपान और मांस भोजन न करै, गन्धद्रव्योंको व्यव हार में नलावे, पुष्पमाला धारण न करै, स्त्री संसर्ग और प्राणि हिंसा न करै, तैलादि मर्दन, अंजन चर्मपादुका (जूते) और छत्र लगाना त्यागदेय, जुआ न खेलै, किसी के साथ कलह और परदोषों का उद्घाटन न करै, मिथ्या भाषण न करै, स्त्रियों को कुत्सित अभिप्राय से न देखे और परका अनिष्टा चरण न करै। इस प्रकार प्रतिदिन स्नान, विशुद्ध भाव से तर्पण और देवपूजन करने से ब्रह्मचारी जैसे परमात्मनिष्ठ और धर्म प्रण होतेथे तैसेही माता पिता और आचार्य की सर्वोपरि

भक्ति करने में भी तत्पर होते थे, वृद्धों में यथोचित श्रद्धा और सर्व प्रकारके बिलास से विरत होनेके कारण शुद्ध हृदय और संयत चित होते थे धर्मचर्या में उनका आत्मा ईश्वर के विषै संलग्न होता था, सर्व प्रकार की पवित्र भावकी शिक्षा से उनका हृदय पवित्रता पूर्ण होजाता थो, शिक्षाके जो चार विषय वर्णन करे हैं उनकी आलोचना करने पर ब्रह्मचर्य का मंगलमय फल हृदयङ्गम होगा। विद्या की शिक्षा प्राप्त करने में स्वास्थ्य की विशेष आवश्यक्ता है, शरीर के रुग्न होनेपर किसी कार्य के करने में भी मनुष्य की प्रवृति नहीं होती है इसलिये प्राचीन पुरुष स्वास्थ्य की ओर दृष्टि रखते थे, ब्रह्म चारी प्रातःकाल को सूर्योदय से प्रथम ही शय्या को त्याग देतेथे, स्नान के द्वारा पवित्र होकर तर्पण और देवपूजन करने में तत्पर रहते थे, दूरस्थान से यज्ञ के लिये काष्ठ लाते थे, भिक्षा के लिये कूंचे २ घर २ भ्रमते थे, और नियमानुकूल गुरुकी सेवा करने में तत्पर रहते थे, प्रातःकाल उठना प्रातः काल भ्रमण करना और श्रमसाधन कार्य करना उनके शरीर को स्वस्थ रखता था, अतएव उनका शरीर दृढ़ और वलिष्ठ होता था, इस प्रकार निरोगशरीर से चिरकालपर्यन्त वेदादि शास्त्रों की आलोचना करके वह शास्त्र पारदर्शी होतेथे वैदिक बलके विकाशके साथ २ उनकी अभिज्ञता का प्रकाश होजाता था, उस समय गुरु शिष्य का बड़ाभारी सम्बन्ध था, शिष्य जिस प्रकार मनमें गुरुको परब्रह्म का अंश मानता था तिसी प्रकार गुरुभी शिष्य के ऊपर पुत्रसे अधिक स्नेह और प्रीति

दिखाते थे, गुरू शिष्य में इस प्रकारकी घनिष्ठता इस प्रकार अति महान् सम्बन्ध होने से शिष्य को अत्युत्तम शिक्षा प्राप्त होती थी, इसके सिवाय मनुष्यत्व की प्राप्ति के लिये जो जो गुण होने चाहिये उन सबमें ब्रह्मचारी को बाल्यावस्था सेही अभ्यास होजाता था वह ब्रह्मचारी मिताहारी मिताचारी होकर कठोर व्रतका पालन करतेथे, उनका जीवन कठोर तपस्या मय होता था, वह कष्ट सहिष्णुता में सर्वदा अटल रहते थे भोग विलास से दूर रहते थे, चित्त संयम में अनमनीय थे, निष्ठावान् होकर देवाराधन और अध्ययन करते थे, उनको काम--क्रोध-लोभ-नृत्यगीत और बाजे आदिको त्याग करना होताथा, वह भिक्षासे प्राप्त हुए अन्नद्वारा ही जीवन धारण करते थे, द्यूत क्रीड़ा परनिन्दा--स्त्री सेवा पर के अपकार को त्यागकर प्रतिक्षण संयत भावसे स्थित रहते थे, माता-पिता आचार्य आदि गुरुजनों को मूर्तिमान् महान् देवरूप मानते थे देवभक्ति से उनका हृदय जैसा पवित्र होता था, मातृ पितृ भक्ति और गुरुभक्तिमें भी वह तिसी प्रकार पवित्र भावयुक्त होते थे। ब्रह्मचारी इस प्रकार अनेकों कष्टों को सहकर अनेकों प्रकार के श्रमसाध्य कार्यों में तत्पर होकर और सर्व प्रकार के भोगाभिलाषोंको त्यागकर चित्त संयमका अभ्यस करतेथे। चित्त संयम, सहिष्णुता और विलास शून्यता से वह कदापि चलायमान नहीं होते थे, यदि मनुष्य को वास्तविक शिक्षा प्राप्त करनी होतौं उसको संयत चित्त कष्ट सहिष्णु विलास शून्य और निष्ठावान् होना उचित है। जिस्के आत्म संयम नहीं है कष्ट

सहिष्णुता नहीं है विलास शून्यता नहीं है वह कदापि मनुष्यत्व की उच्च पदवी को प्राप्त नहीं होसक्ता । और जिस शिक्षा में तन्मयता नहीं होती है वह शिक्षा भी कार्यसाधिका नहीं होती है । जो विद्या की शिक्षा के समय विलास समुद्र में निमग्न रहते हैं, आत्मसंयम और कष्ट सहिष्णुता को त्याग कर सब प्रकारकी शौकीनता में मग्न रहते हैं, वह कदापि मनुष्य जीवन के अवश्य कर्तव्य कार्य को सिद्ध करने में समर्थ नहीं होते हैं । विषय वासना के मलिन प्रवाह से उनका चित्त निरन्तर कलुषित रहताहै । आपात रमणीय शौकीन भावसे उनका प्रत्येक कार्य निरन्तर उन्मार्ग गामी होता है, उच्छृंखलता के घोर प्रवाह में उनकी प्रकृति निरन्तर निमग्न रहतीहै। वह इस विशाल विश्वराज्य के सर्व श्रेष्ठ जीव होकर भी नानाप्रकार के निन्दित कार्योंमें अपार आनन्दका अनुभव करतेहैं, किसी दुःसाध्य कार्य के साधन करनेमें उनकी प्रवृत्ति नहीं होती है परन्तु पूर्वकाल के ब्रह्मचर्य की व्यवस्था से शिक्षा पानेवालों में इन सब दोषों का लेशमात्र भी नहीं होता है । शिक्षार्थी ब्रह्मचर्य रूप कठोर तपस्या में जैसे कष्ट सहिष्णु जैसे संयम चित्त, और जैसे बिलास शून्य होते थे वैसेही निष्ठावान् होते थे । वह इस तपस्या के बलसे आगे को गृहस्थ होकर संयत चित्त से धर्म कार्यों का अनुष्ठान करते हुए परोपकारिता का परिचय देते थे, इस तपस्या के बलसे पवित्र मनुष्य नामकी योग्यता को प्राप्त करते थे और इस तपस्या के बलसे क्या व्यवहारिक कार्य क्या धर्म कार्य सर्वत्र सबके भक्ति और श्रद्धा

के पात्र होते थे। महाभारत में कथा है कि-एक आयोदधौम्य नामक गुरूका उपमन्यु नामक एक शिष्य था उपमन्यु कठोर ब्रह्मचर्य व्रतको पालन करता हुआ गुरू के समीप विद्या का अभ्यास करता था, भिक्षा में प्राप्त हुआ अन्नही उसकी प्राण रक्षाका अवलम्बन थी, गुरुने शिष्य की कष्ट सहिष्णुता और चित्त संयम की परीक्षा करने के लिये उपमन्यु को भिक्षाका अन्न ग्रहण करने को निषेध करा, उपमन्यु गुरूकी इस प्रकार की आज्ञा से किञ्चिन्मात्र भी दुःखित नहीं हुआ, भिक्षान्न को त्यागकर पयस्विनी गौका दुग्ध पान करके एकान्त मनसे विद्याभ्यास करने लगा। गुरु ने शिष्य को दुग्ध पान करने को भी निषेध करा, उपमन्यु गुरुकी इस आज्ञा से भी उदासीन न हुआ, दुग्ध पानके समय बछडे के मुखसे जो झाग निकलकर गिरतेथे उपमन्यु उनकोही खाकर प्रसन्न मनसे विद्याभ्यास करने लगा। गुरुने इसके अनन्तर उसको उन झागोंके भक्षण करने को भी निषेध करा, उपमन्यु उस समय वृक्षोंके पत्ते खाकर भक्तिभाव से गुरुकी सेवा और संयत हृदय से विद्याभ्यास करने लगा। कष्ट सहिष्णुता और चित संयत का कैसा अपूर्व दृष्टान्तहै ! कठोर व्रत पालन का कैसा महिमा मय उदाहरण है ! इस शिक्षा सेही हमारे पूर्व पुरुष पवित्र धर्म मन्दिर में प्रवेश करके वरणीय देवताओंका ध्यान करते करते स्वर्गीय आनन्द का उपभोग करतेथे, इस शिक्षा सेही हमारे पूर्व पुरुष संसार क्षेत्र में स्थित होकर लोकहितकारी कार्यको सिद्ध करने में समर्थ होते थे, और इस शिक्षाके प्रभाव सेही

हमारे पूर्व पुरुष संसारिक विषय वासना से विरत रहते थे। जिनका हृदय इस प्रकारकी शिक्षासे वलिष्ट होताथा वहही वास्तविक आर्यथे वहही वास्तविक हिन्दू और वहही वास्तविक धार्मिकथे। दूसरा आश्रम है गार्हस्थ्य, ब्रह्मचारी नियम पूर्वक दारपरिग्रह (विवाह) करके द्वितीय अर्थात् गार्हस्थ्य आश्रम में प्रविष्ट होनेपर गृहस्थ वा गृहमेधी कहाता है गृहस्थ ब्रह्मचर्य के नियमोंका पालन करके कष्ट सहिष्णु, संयतचित्त, विलासकी वासना रहित और निष्ठावान् होतेथे। जिससमय वह वेदादि शास्त्रों की आलोचना करते थे, शास्त्र विहित कार्य में उनकी निष्ठा उत्पन्न होतीथी, बुद्धि वृत्तिके साथ उनकी धर्म प्रवृत्ति का प्रकाश होता था, वह अपने स्वार्थ को त्यागकर परोपकार व्रतको धारण करतेथे, भोग विलासकी ओर को उनका चित नहीं खिचताथा, शौकीनपने से उनका शरीर शिथिल नहीं होता था, निरन्तर अपने सुखकी वृद्धि करने की ओर ही उनका ध्यान नहीं होताथा, वह जानतेथे कि-इस द्वितीय आश्रममें परोपकार करनाही हमारा परम व्रतहै, वह गृहस्थी ब्रह्मनिष्ठ होकर सावधानतासे पञ्च महायज्ञका अनुष्ठान करते थे, मनुजी ने पञ्च महायज्ञ यह कहे हैं।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञश्च तर्पणम् ।
होमोदैवोवलिर्भौतोनृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥
पञ्चैतान्योमहायज्ञान्नहापयतिशक्तितः ।
सगृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्नलिप्यते ॥

अर्थात्—अध्यापन (वेदादि शास्त्र पढ़ना) का नाम ब्रह्म यज्ञ है, पितृ तर्पणादि का नाम पितृ यज्ञ है, होम का नाम देव यज्ञहै, बलि अर्थात् जीवों को भोजन देनेका नाम भूत यज्ञ, और अतिथि सेवा का नाम नृयज्ञ है। जो गृहस्थ प्रति दिन यथा शक्ति इन पञ्च यज्ञों का त्याग नहीं करता है वह गृहमें वास करके भी पापसे लिप्त नहीं होताहै। इसलिये धर्म प्राण गृहस्थी के कर्त्तव्य निम्न लिखित पांच कार्य हैं। १ वेद पढ़ना और पढ़ाना। २—श्राद्ध तर्पणादि के द्वारा पितरों को तृप्त करना। ३—आराधनादि के द्वारा देवताओं को तृप्त करना। ४—प्राणियों को भोजन देना। ५—अतिथियों का सत्कार करना। इन पांच कार्यों से गृहस्थी का धार्मिकपना प्रकट होता है, पूर्वकाल के गृहस्थ स्वयं वेदादि शास्त्रों का विचार करते थे तथा औरों कोभी शिक्षा देते थे, सावधान चित्तसे शास्त्रके अनुसार यथा समय पितृतर्पण और देवपूजन में तत्पर होतेथे, प्राणियों को भोजन दान देतेथे, अतिथि अभ्यागतों के सत्कार करनेमें निरालस्य होतेथे। उनके किसी कार्यमें भोग विलास का उद्देश्य नहीं होता था, वह प्राणियों को आहार बिनादिये और अतिथिकी विधिपूर्वक सेवा बिना करे स्वयं भोजन नहीं करतेथे। मनुजी का कथन है कि—जो अज्ञ पुरुष अतिथि से लेकर भृत्य पर्यन्त सबको अन्न बिना दिये स्वयम् भोजन करता है वह नहीं जानता है कि—मरण होने पर उसके शरीर को पक्षी और कुत्ते खायँगे। पहिले ब्राह्मण अतिथि, कुटुम्बी और दास दासी के भोजन करलेने

पर जो कुछ शेष रहै गृहस्थ स्त्री सहित उसको भोजन करै इसके सिवाय गृहस्थ के लिये मनुजी की और भी कई एक आज्ञा हैं–उन सबका संक्षिप्त मर्म यह है कि हाथकी चंचलता (ग्रहण के अयोग्य वस्तुका ग्रहण करना) चरणकी चंचलता (निष्प्रयोजन आना जाना) नेत्रों की चंचलता (दुष्टभावसे पर स्त्री आदिको देखना) वाणी की चंचलता (निरर्थक बहुतसी बातैं और पराई निन्दा करना) इन सबको गृहस्थ त्यागदेय। सरल स्वभाव रहै, किसी की हिंसा (चित्तको दुखाना) न करै। ऋत्विक् (यज्ञादि कर्मका होता), पुरोहित (शान्ति स्वस्ति वाचनादि करनेवाला) आचार्य, मामा, घर आया हुआ पाहुना, अनुजीवी बालक, वृद्ध, रोगी, वैद्य, ज्ञाति, कुटुम्ब, माता, पिता, वहिन, पुत्र, वधू, भ्राता, स्त्री, कन्या, भृत्य, इनके साथ विवाद न करै। यम और नियम का पालन करै, महर्षि याज्ञवल्क्य ने यम और नियम के यह लक्षण कहे हैं ॥

ब्रह्मचर्यं दयाक्षान्ति र्ध्यानंसत्यमकल्पता।
अहिंसास्ते यमाधुर्यं दमश्चेति यमाःस्मृता॥
स्नानंमौनोपवासेज्यास्वाध्यायोपस्थनिग्रहाः।
नियमो गुरुशुश्रूषा शौच क्रोधाप्रमादता॥

अर्थात्—ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा, ध्यान, सत्य भाषण, निष्पाप, अन्तःकरण, अहिंसा, चोरी न करना, सौम्यभाव और चित्त संयम यह सब यम कहे जाते हैं, तथा स्नान, मौन

रहना, उपवास यज्ञ कार्य वेद पढ़ना जितेंद्रिय होना, गुरुसेवा करना, शुद्धभाव, क्रोध न करना और सावधान रहना यह नियम कहाता है। मनुजी का कथनहै कि-सर्वदा यमकाही सेवन करै, केवल नियममें ही तत्पर हुआ न रहै, यमकेसेवन को त्यागकर केवल नियम केही सेवनसे पतित होजाताहै, गृहस्थको यम और नियम दोनों काही पालन करना चाहिये कठोर ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करकै गृहस्थ इन सम्पूर्ण पवित्र कार्यों के संपादन करनेमें समर्थ होताहै। जो दुश्चर ब्रह्मचर्य के कष्टको सहनेवाले और विषयों की आसक्ति रहित होते हैं एवं निष्ठावान् और आत्म संयत होकर अपने कर्तव्यकार्य करतेहैं, उनको संसार का प्रलोभन कदापि विचलित नहीं करसक्ताहै, शोक दुःख उनको कातर करनेमें समर्थ नहीं होता है, पाप उनको स्पर्श करनेका साहस नहीं करसक्ताहै वह संसार क्षेत्रमें-पाप ताप के राज्य में अटल गिरिराज की समान अचल भावसे स्थित रहते हैं। पूर्वकालके गृहस्थ फल की अभिलाषा को त्यागकर सकल कार्य ईश्वर को समर्पण करके करते थे, निष्काम धर्माचरणही उनका एक व्रत था, उनके इस महाव्रतसे संसार शान्तिका आगार होजाता था, अनेकों पुरुषों को अनेक समय गृहस्थ का शरणापन्न होना पड़ताहै, अतिथि अभ्यागत आदि गृहस्थ के ऊपरही निर्भर करके रहतेहैं, गृहस्थ के परिश्रम से अनेक असमर्थ आत्मीय स्वजन प्रतिपालन होते हैं, प्राचीन ऋषि मण्डली हिंदू समाज की सर्वोपरि कर्त्ता धर्त्ता होकर भी गृहस्थ के समीपसे भिक्षा

का अन्न ग्रहण करके परितृप्त होती थी, निष्कर्ष यह है कि परोपकार करने में ही गृहस्थको अपना जीवन समर्पण करना होता था, अपने सुख का उपाय करना और अपने उदर को पूर्ण करना ही गृहस्थ कार्य नहीं है, हरेपत्तों से छाया हुआ फलपुष्प युक्त महावृक्ष जिस प्रकार अपनी स्निग्ध छाया में मार्ग के थके हुए बटोही को विश्राम देता है, परमास्वादु फल देकर क्षुधार्त की क्षुधा को दूर करता है, बहुत सी शाखाओं को फैलाकर सैकड़ों पक्षियोंको बिश्रामदेता है, तिसी प्रकार गृहस्थ भी अपने स्थानपर आये हुए भिक्षु को दान देकर, अनेकों जीवों को अन्न देकर, अतिथि अभ्यागत और आर्त पुरुषोंका आश्रम रूप होकर भूलोकमें अपूर्व स्वर्गकी शोभाको प्रकाशित करता है, दानको गृहस्थके नित्य कर्मोंमें गणना है। क्या श्राद्ध, क्या व्रत, क्या देवपूजन, क्या शान्तिस्वस्त्यपन सब विषयमें गृहस्थ को दान देना लिखा है, पूर्वकालमें अन्य आश्रम गृहस्थाश्रम केही ऊपर निर्भर करके निश्चिन्त रहते थे, इस कारण मनुजीने सब आश्रमोंकी अपेक्षा गृहस्थ आश्रम कोही श्रेष्ठ कहा है। ब्रह्मचारी गृहस्थ के समीपसे भिक्षा लेते थे, वानप्रस्थाश्रमी गृहस्थ के दिये हुए दान से जीवन धारण करते थे, संन्यासाश्रमी गृहस्थ का अवलम्बन करके निश्चिन्त धर्माचरण करने में तत्पर रहते थे, गृहस्थी दानधर्मकी महिमा से इस प्रकार सबका रक्षक होकर संसार क्षेत्र में परम गौरव को प्राप्त होता था। हिन्दू धर्ममें गृहस्थ के लिये ऐसी आज्ञा है कि—सदा अन्न दान करै, क्षमा दिखलावै, धर्मानुष्ठान करने

में तत्पर रहे, सदा सबका यथोचित आदर करै, रोगी को शय्या, श्रान्तको आसन, तृषार्त को जल, और क्षुधार्त को भोजन देय, शुभभिलाषी बुद्धिमान् पुरुष, दीन दरिद्र अन्धे आदि कृपापात्रों कोभी औषधि पथ्य एवं अन्न देय, । गृहस्था श्रम का कैसा शान्तिमय, कैसा पवित्रतामय चित्त है, गृहस्थ का कैसा अपूर्व देवभाव है प्राचीन आर्यमण्डली के गृहस्थ, ब्रह्मचर्य के अनन्तर ऐसे देवभाव से भूषित होकर निश्वर जीवन से अविनश्वर (चिरस्थायी) कीर्ति का सञ्चय करते थे । गृहस्थ मृत्युकाल पर्यन्त यदि केवल विषय कार्य में ही तत्पर रहेतो धर्माचरण का मार्ग सङ्कीर्ण होजाय, विषय सुखमें प्रमत्त होकर अनन्त परमार्थ तत्व का विसर्जन करदेय, इस विघ्न को दूर करने के लिये तृतीय आश्रम अर्थात् वानप्रस्थ आश्रम नियत किया है । जिस समय गृहस्थके केश स्वेत होते थे, देहकाचर्म शिथिल होजाता था, जिस समय वह पुत्र के पुत्रको देखकर सुखी होते थे, जिस समय वह जान जाते थे कि–अब हमारा संसार को त्यागनेका समय निकट आगया है उस समय वह पुत्रों को सकल संपति सौंपकर धर्माचरण की अभिलाषा से वनको चलेजाते थे, उस समय वानप्रस्थाश्रमी कहाते थे, उनकी स्त्री भी इच्छा करने पर उनके साथ जा सक्ती थी, वानप्रस्थाश्रमी निर्विवाद ईश्वर चिन्तवन में तत्पर होते थे, वह पवित्र अन्न और फल मूलादि को भोजन करके वनके आश्रम मेंभी पूर्वोक्त पञ्चमहायज्ञका अनुष्ठान करते थे। इस वानप्रस्थाश्रम के समय भी उनका पवित्र जीवन परमार्थ

मेंही समर्पित होता था, वह भिक्षुक को भिक्षा देते थे , फल मूलादि के द्वारा आश्रम में आये हुए अतिथियों की सेवा करते थे, एवं जो कुछ भोजन करते थे उसमें से पशु पक्षियों को आहार देते थे, अधिकतर तौ वह वेदाध्ययनमें तत्पर रहते थे, शीत और आतप आदिके सहनेवाले होते थे, एवं सबका उपकार और मनः संयम की रक्षा करते थे, इस प्रकार परार्थ परायण होकर वानप्रस्थाश्रमी नाना प्रकार के कठोर तप में मनको लगाते थे, स्वार्थपरता के वशीभूत होकर अथवा परलोक में शुभ फलकी अभिलाषा से कोई भी कार्य करना उचित नहीं है, इस प्रकारकी उनकी धारणा क्रमशः बलवती होती चली जातीथी, वह निष्काम भावसे निर्विकार चित्तसे अन्तःकरण की वृत्ति को जमाकर ब्रह्मसाधन में सिद्धि पानेके लिये यत्न करते थे, गृहस्थी गृहस्थाश्रम में रहकर होमादि के द्वारा देवाराधना करते थे, पवित्र हृदयसे धर्मकार्य में निष्ठा दिखाते थे, फल की कामना को त्यागकर निराश्रय को आश्रय देते थे, देवभक्ति का उच्छ्वास उनके हृदय में पूर्ण होता था, देवाराधना में उनका मन संयत होता था, देव सेवामें उनकी पूर्ण निष्ठा होती थी, वह नानाप्रकार के, यज्ञ और शान्ति स्वस्त्ययन करके, चित्त संयम, अन्तःकरण शुद्धि, भक्ति, प्रीति और श्रद्धा के अधिकारी होते थे, । उस समय वह संसारको त्यागकर परब्रह्म के विषेचितको लगाते थे । उनके चारोंओर ईश्वर की अपूर्व सृष्टि, निसर्ग की अपूर्व शोभा विराजमान होती थी फल पुष्प युक्त नानाप्रकार के वृक्षोंसे भरे हुए निर्जन

बनके सुन्दर दृश्यसे उनका हृदय सौन्दर्य पूर्ण होता था, पर्वत की कन्दराओं के गम्भीर भावसे उनके हृदय में गम्भीरता आजाती थी, स्वच्छ सलिला नदी वा झरनों के कोमल शब्द से उनका हृदय अति कोमल होजाता था। वह प्रकृति के इस रमणीय राज्यमें ईश्वर के इस सौन्दर्य भाण्डार में योगासन पर विराजमान होकर तिस अनादि अनन्त परमाशक्ति का ध्यान करते थे जिस से ब्रह्मज्ञान की वृद्धि होय, ईश्वर के प्रिय कार्यों के साधन में प्रीति उत्पन्न होय, वानप्रस्थाश्रमी ऐसे कार्यों की विशेष दृष्टि रखते थे। यह बनवास उनकी इच्छा के विरुद्ध नहीं होता था, इसको उनके पवित्र कर्तव्यों में गणना थी। जिन्हों ने यथाक्रम से छात्र और गृहस्थ के कर्तव्य कर्म को यथावान् नहीं किया होताथा वह इस पवित्र आश्रम में प्रवेश नहीं करते थे। मनुष्य के दुर्दमनीय शत्रुको दमन करने के लिये प्रथम अवस्था में शिक्षा प्राप्त करने की अतीव आवश्यकता है। इस शिक्षा में कृत कार्य होने पर गृहस्थी वानप्रस्थ होकर परमभक्ति योग के साथ तपस्या में चित्त लगाते थे। वह सृष्टि राज्य के मनोहर स्थान रमणीय आरण्य में परब्रह्म का चिन्तवन करतेथे। तिस पवित्र शान्ति के आगार, तिस इष्टदेव के ध्यान मेंही उनके जीवनका शेष भाग व्यतीत होता था। ब्रह्मनिष्ठ साधक की शेष अवस्थाही उसके धर्ममय जीवन का अन्तिम आश्रम है। आश्रमका नाम भैक्ष्य अथवा संन्यास आश्रम है। संन्यासी संसार की अनित्यताका चिन्तवन करके वैराग्यका अभ्यास करतेथे। वह कर्म

फलकी कामना नहीं करते थे, अपने कियेहुए कार्यके पुरस्कार स्वरूप स्वर्ग सुखकी भी इच्छा नहीं करते थे। परब्रह्म के साक्षात्कार की प्राप्ति मेंही उनको अधिक रुचि होती थी। वह निःसङ्ग होकर, ब्रह्म में मनको लगाते हुए मोक्षको प्राप्त होते थे। प्राचीन आर्यमण्डली के यह चारों आश्रम परस्पर कैसे गम्भीर आध्यात्मिक भावसे परिपूर्ण हैं। जैसे सोपान (सीढ़ी की पैरी) के अनन्तर सोपान को उल्लङ्घन बिना करे मन्दिर के ऊपर चढ़ना नहीं होसक्ता तिसी प्रकार इन चारों आश्रमों में एकके अनन्तर एकको अतिक्रमण विनाकरे मनुष्यत्व का उच्च उत्कर्ष नहीं प्राप्त होता है। इस उत्कर्षको प्राप्त होने की इच्छा होनेपर धर्म मन्दिर के अति ऊंचे स्थान में ब्रह्मज्ञान की चरमसीमा को प्राप्त होनेकी इच्छा होनेपर ब्रह्मचर्य के कठोर ब्रतका पालन करके शारीरिक और मान सिक पवित्रता का संग्रह करना होगा। गृहस्थ होकर पञ्च महायज्ञ के अनुष्ठान पूर्वक श्रद्धा, भक्ति, विषयों से विराग और आत्म संयम का अनुशीलन करना होगा। वानप्रस्थ होकर ईश्वर के ध्यानमें मग्न होना होगा तब अन्तमें इस भैक्ष आश्रम में प्रवेश करने को अधिकार होगा। प्राचीन काल में जीवन की शेष अवस्था आनेपर इस प्रकार वानप्रस्थ और संन्यासी होकर धर्माचरण का नियम तो था, परन्तु अरण्य में वास करने पर ही वा संन्यासी होनेपरही वास्तविक धार्मि कता नहीं होती है, ऐसा प्राचीन हिन्दू स्वीकार करते थे, वह जानते थे कि—वनमें वास करनेपर भी पुरुषों का मन

इन्द्रियों की उत्तेजना से चंचल होसक्ता है वह समझते थे कि जन समूहमें भी मनुष्य हृदयमें पवित्र आरण्य आश्रम होसक्ता है। इस आश्रम में भी मनुष्य ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होसक्ता है। इस कारण निष्ठावान् और आत्म संयत हिन्दू कभी कभी गृहस्थाश्रम में रहकर भी ब्रह्मसाधना करते थे। राजर्षि जनक गृहस्थ होकर भी ऋषि समाज में परमात्मानिष्ठ योगी समझे जाकर सन्मानित होते थे। महर्षि याज्ञवल्क्य जीका कथन है कि—वानप्रस्थ होने से धर्म नहीं होता है, धर्म की यथोचित चर्चा करने सेही धर्म लाभ होता है"। मनुस्मृति में लिखाहै।

दूरितोऽपिचरेद्धर्मं यत्रतत्राश्रमेरतः ।
समःसर्वेषुभूतेषु नलिङ्गंधर्मकारणम् ॥

अर्थात् मनुष्य चाहे जिस आश्रमको अवलम्बन करे, उस आश्रम के उपयुक्त चिन्ह युक्त न होने पर भी यदि सकल प्राणियों में समान दृष्टि रखनेवाला होयतौ उसका धर्मानुष्ठान् सच्चा होता है। केवल दण्ड कमण्डलु आदि धारण करनेहीसे धर्मचार्या नहीं होतीहै। महाभारतमें भी ठीक ऐसाही लिखाहै।

"वनेऽपिदोषाः प्रभवन्तिरागिणाम्
गृहेपिपंचेन्द्रिय निग्रहस्तयः ।
अकुत्सिते कर्मणियः प्रवर्तते
निवृत्त रागस्य गृहं तपो वनम्" ॥

अर्थात्—अरण्य वासमें भी विषयासक्त पुरुषों को दोष प्राप्त होजाते हैं गृहमें रहकर पंचेन्द्रियों का संयम करने से

तपस्या होती है जो पुरुष विषयों में आशक्ति को त्यागकर विशुद्ध कर्मका अनुष्ठान करता है उसके लिये गृहही तपोवन है यह मत धर्म ग्रन्थों के अनेकों स्थलों के विषे देखने में आता है। उनमें से कुछ एक स्थलों का भावार्थ यहां लिखा है। संयमी पुरुषके लिये वनमें रहने की क्या आवश्यकता ? और असंयमी कोभी वनमें बसने से क्या लाभ ? संयमी जहां भी रहैगा वही स्थान अरण्यहै और वही आश्रम है"। "मनुष्य यदि वस्त्र अलङ्कारों से भूषित होकर गृहमें वासकरै और चिरकाल तक यदि शुद्धाचार एवं दया शील रहै तौ वह सकल पापों से मुक्त होजाता है"। "आत्मा के पवित्र न होनेपर दण्ड धारण, मौनावलम्बन, जटा भार धारण, मुंडन, भोजपत्र और मृगचर्म ओढ़ना, ब्रतपालन, अभिषेचन, यज्ञ, वनमें वास और शरीर शोषण आदि सब निष्फल है"। हमारे प्राचीन ऋषि समाजने आश्रमों के नियम के विषय में इस प्रकार उदारता का परिचय दियाहै। उनके मतमें चित्त शुद्ध होनेपर गृहमें रहकर भी धर्मानुष्ठान होसक्ता है। आध्यात्मिक भावसे आत्मोन्नति के साधन के लिये जीवनकी चार अवस्थाओं में जिस २ ब्रतके पालन की आवश्यकता है, उनको ही चार आश्रम नामसे कहाहै। पूर्वकालमें शिष्य गुरुके समीप आध्यात्मिक भाव से विद्याभ्यास करते थे, गृही आध्यात्मिक भावसे विवाह और गार्हस्थ्य धर्मका अनुष्ठान करते थे, वानप्रस्थ और यति आध्यात्मिक भावसे ब्रह्म साधनमें चित्त लगाते थे। वानप्रस्थ और यति गृहमें रहकर भी तपस्या कर

सक्ते थे। परन्तु गृह में रहने पर किसी प्रकार का सांसारिक प्रलोभन चित्तको ग्रसित न करे, चित्त संयममें किसीप्रकार का व्याघात न उत्पन्न होजाय इस आशङ्का से वह जीवनके शेष भागमें इच्छापूर्वक गृहको त्यागकर बनमें जाकर ईश्वर का चिन्तवन करते थे। मनुजीका कथन है कि—

वनेषुतु निहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषोभागंत्यक्त्वासंगान्परिव्रजेत् ॥
आश्रमादाश्रमंगत्वा हुतहोमोजितेन्द्रियः।
भिक्षावलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन् प्रेत्यवर्धते ॥
ऋणानित्रीण्यपाकृत्यमनोमोक्षेनिवेशयेत्।
अनपाकृत्यमोक्षन्तु सेवमानो व्रजत्यधः ॥
अधीत्यविधिवद्वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्यधर्मतः।
इष्टवाचशक्तितोयज्ञैर्मनोमोक्षेनिवेशयेत् ॥

इन श्लोकों का भावार्थ यह है कि-इसप्रकार आयु का तीसरा भाग वानप्रस्थ आश्रममें अनेक प्रकारकी दुश्चर तपस्याओं से विताकर आयुके चौथे भागमें अर्थात् आयुके शेष अंशमें विषय सङ्गको त्यागकर संन्यास आश्रमका अनुष्ठान करै। एक आश्रमसे द्वितीय आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य से गार्हस्थ्याश्रम, तदनन्तर वानप्रस्थ आश्रममें गमन करके इन्द्रिय संयम पूर्वक तिस २ आश्रमके विहित होमादि कर्मोंको करै। तदनन्तर भिक्षादान और वलि दानादिके द्वारा श्रान्त होकर संन्यासाश्रम में मोक्ष लाभ रूप परम ऋद्धिको प्राप्त होय, इन

तीन ऋणों का भुगतान बिनाकरे चतुर्थ आश्रमका अवलम्बन करने से नरक की प्राप्ति होतीहै । विधिपूर्वक वेदादि शास्त्रों का अध्ययन, धर्मानुसार पुत्रोत्पादन, विधिपूर्वक यज्ञादि कर्म करना, यह सब सम्पादन करकै चतुर्थ आश्रम की ओर मन लगावे । इस प्रकार मनुष्य के जीवनके चारभागों में भिन्न २ चार व्रतों के पालनकी व्यवस्था बांधी गई है, जो व्रत जिस समयमें उपयोगी है, हमारी पुरातन ऋषि मण्डलीने उस समयमेंही उस व्रतके पालन का उपदेश दियाहै, यथा समय में यथोक्त व्रतको धारण करकै हमारे पूर्व पुरुष धरमोन्नतिको प्राप्त होतेथे । जो गुरुके गृहपर निवास करके शास्त्रज्ञान,चित्त संयम और अन्तःकरण की शुद्धिके अधिकारी नहीं होतेथे, वह मानो गृहस्थाश्रम के योग्य नहीं होते थे, तिसीप्रकार जो गृहस्थाश्रम के विहित धर्म का यथा विधि पालन नहीं करते थे, वह आरण्याश्रम में रहकर संन्यास ग्रहण करने में समर्थ नहीं होतेथे । किसी २ समय नैष्ठिक ब्रह्मचारी, ब्रह्म साधना में मनको लगाते थे, परन्तु शास्त्रकारों के मतमें लोक स्थिति रक्षा और लोक पालनके लिये ब्रह्मचर्य के अनन्तर गृहस्थाश्रम का अवलम्बन करनाही प्रशस्त (अच्छा) है पहिलेही कह चुके हैं, कि–गृहस्थ बिनाहुये लोकके अभाव की परिपूर्त्ति और शोक तापादि का निवारण नहीं होताहै। प्रजाकी वृद्धि, प्रजाकी रक्षा, जीव की स्थिति और संपक्ष से विधाता की विश्व पालनी शक्ति का महान् भाव दिखाने के लिये गृहस्थ आश्रमही श्रेष्ठ आश्रम कहकर गिनागया है ।

इसप्रकार हिन्दुओं के चारों आश्रमों का संक्षेपसे वर्णन हुआ इन चारों आश्रमों का विचार करने से मालूम होगा कि-इन चारों आश्रमों के पालन से हमारे पूर्व पुरुषों की जैसी आध्यात्मिक विषयमें उन्नति होती थी, वैसेही उनकी शारीरिक और मानसिक तेजस्विता काभी विकाश होता था, मस्तिष्क की शक्तिके साथ हृदय की शक्तिभी उन्नतिको प्राप्त करती थी, कष्ट सहिष्णुता आदिके अभ्यास से महाकठोर कार्यको सिद्ध करने में प्रवृत्ति होतीथी और चित्त अधीर नहीं होता था। कठोर ब्रह्मचर्य से उत्पन्न होनेवाले आत्म संयम और स्वार्थ त्याग आदिके वशी विना हुये जातीय उन्नति की सम्भावना नहीं। पूर्वकाल में गुरुके गृहपर रहना और संयत चित्तसे गुरुकी सेवा करने की जो रीति प्रचलित थी, वह इस समय यद्यपि प्रायः लुप्त होगई है, तथापि हम चेष्टा करने से ब्रह्मचर्य आश्रम के योग्य कष्ट सहिष्णुता, शौकीनपने का त्याग, परिश्रमी स्वभाव और चित्त संयम के अधिकारी हो सक्तेहैं। जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिये ब्रह्मचर्य की व्यवस्था विधिवत् हुई थी, उस प्रयोजन की सिद्धि का मार्ग इस समय भी हमारे सन्मुख हुआ है। हमारे देशमें जो महानुभाव जाति प्रतिष्ठा में कृतकार्य हुये थे, जिनकी प्रतिष्ठित उच्च जातिकी लोकोत्तर कार्य परम्परा आजभी इतिहासोंमें आदर और सन्मान को पारही है, वह सवही इस मार्ग के बटोही थे। उनकी महती साधना से अमृतमय फल की उत्पत्ति हुई थी, उन्होंने आजन्म ब्रह्मचारी होकर जिस ज्ञान जिस दृढ़ता

और जिस तेजस्विता को फैलाया था, उसकेही बलसे निश्चेष्ट निर्जीव भारत भूमि एक समय सकल जगत् की शिरोमणि हुई थी। परन्तु इस समय हमारी अत्यन्तही दुर्दशा होगई है, हम पूर्व पुरुषों की चलाई हुई शिक्षा की प्रणाली में पूर्व पुरुषों के आचरण करे हुये गृहस्थ धर्म आदिकी ओर कुछभी ध्यान न देकर अपदार्थ (नाचीज) होगये हैं, जगत में अतुल्य प्राचीन ज्ञानभाण्डार हमारे सामने फैला पड़ा है, पवित्रतामय प्राचीन रीति नीति हमको पूर्ववत् होने के लिये चेष्टा (इशाणु करतीहै) प्राचीन मनस्वी और तेजस्वी महान् पुरुषों का कीर्ति कलाप हमको महा प्राण होने के लिये उप देश देता है, तथापि हमघोर मोह निन्द्रा के वशीभूत और जाड्य दोष से आछन्न हो रहे हैं, इस समय इस मोहनिद्रा और जड़ता को त्यागकर वास्तविक ब्रह्मचारी वास्तविक गृहस्थ और वास्तविक तत्वज्ञानी होना हमारा अवश्यकर्तव्य है। महान् आर्यबंश से हम उत्पन्न हुए हैं आर्य सन्तान के योग्य कार्य बिना करे हमारी जातीय उन्नति कदापि नहीं होगी। जो ब्रह्मचर्य व्रतको पालन करते हुए चिरकाल पितृ भक्ति सत्य प्रतिज्ञता और निःस्वार्थ परता के दृष्टांत रूप हो गये हैं, उनका लोकोत्तर चरित आजभी हमारे जातीय गौरव को बढ़ा रहा है। जो गृहस्थ होकर भी असाधारण धर्माचरण पूर्वक योग साधना करते हुए परमात्मनिष्ठ योगियों के द्वारा सन्मानित हुए, उनके अपूर्व महत्व से आजभी हमारी मातृ भूमि महिमान्वित होरहीहै। जो ब्रह्मचारी होकर, तेजस्विता

कष्ट सहिष्णुता और आत्मसंयम के बलसे निस्तेज निरीह सम्प्रदाय को भी देदीप्यमान वीर्य वन्हिसे उद्भासित करगए हैं, निजजाति की प्रधानता स्थापन करने के निमित्त उनकी कठोर तर ब्रतचर्या आजभी हमारे जातीय इतिहास के गौरव को बढ़ारही है। हमको आशा है कि ऋषि कुमार हिन्दू पूर्व गौरव के साक्षी रूप इन सब बिषयों की पर्यालोचना करके जीवन के अवश्य कर्तव्य ब्रतको पालन करते हुए फिर भूलोक में प्रसिद्ध पावेंगे। यदि सैकड़ों सहस्रों बिघ्न बिपत्तियें आपड़ें, कर्तव्य का मार्ग यदि दुष्प्रवेश, दुर्गम और दुर्दशा कारक होजाय, तौभी इस पुण्य पुंज़मय पवित्र भूमि में सभ्यता और ज्ञानके आदिमें आश्रय इस लोक पूजित भूखण्ड में फिर आर्यसन्तान के ब्रह्मचर्यादि ब्रतका अमृतमय फलउत्पन्न होकर परिपक्व होगा, और फिर आर्यसन्तान अपनी जातीयशिक्षा के गुणसे सकल जगत्में अक्षय और अनन्त कीर्तिको स्थापन करेंगे। क्योंकि वह रणबीर और धर्मबीर। महात्मा वर्तमान ब्राह्मण क्षत्रियादि केही पूर्व पुरुष थे कि–जिनके मुखके निम्न लिखित अटल बचन जगत् को चमत्कृत करते हुए मनुष्यमात्र को उन्नति का मार्ग बतला रहे हैं।

"कार्यंवासाधयेयं शरीरंवापातयेयम्"

सत्याश्रमाभ्यां सकलार्थसिद्धिः ॥

अर्जनुस्यप्रतिज्ञे द्वेनदैन्यंनपलायनम् ॥

॥ स्त्रीधर्म-विष्णुसंहिता ॥

भर्तरिप्रवासितेऽप्रतिकर्म क्रियापरगृहेष्व नभिगमनम् द्वारदेश गवाक्षेषुनावस्थानं सर्व कर्मस्वतंत्रता, बाल्यायौवन-वार्द्धकेष्वतिपित् भर्तृपुत्राधीनता मृतेभर्तरि ब्रह्मचर्य्यं तदन्वा रोहणंवा, ॥ नास्तीस्त्रीणांपृथक् यज्ञोनव्रतं नाप्युपोषणम् ॥ पतिंशुश्रूषतेयत्तुतेन स्वर्गेम हीयते । पत्यौजीवतियायोषि दुवासव्रतंचरे त् । आयुःसाहरतेभर्तु र्नरकंचैवगच्छति ॥ मृतेभर्तरिसाध्वीस्त्री ब्रह्मचर्यव्यवस्थिता ॥ स्वर्गंगच्छत्यपुत्रापि यथातेब्रह्मचारिणः ॥

अर्थात् विष्णु स्त्रियों के धर्म कहते हैं कि-प्रोषित भर्तृका (जिसका पति परदेश को गया हो वह) स्त्री सुन्दरता के बढ़ाने वाले भूषणादि को धारण न करै, पराए घर न जाय, द्वार (दरवाजा) अथवा खिड़की झरोखे आदि पै न बैठै, सम्पूर्ण कर्मों को पतिकी सम्मति के बिना अपनी स्वाधीनता (खुद मुख्त्यारी) से नकरै, बाल्यावस्था में पिता के, युवावस्था में पतिके और वृद्धावस्थामें पुत्रके अधीन रहै । पतिका मरण होजाने पर ब्रह्मचर्य से रहै अथवा पतिकी अनुगामिनी होय स्त्रियों को पतिके बिना यज्ञव्रत अथवा उपवास करना उचित नहीं है, जो स्त्री पतिकी सेवा करती है वह स्वर्ग लोक को

जाती है, पतिके जीवित रहते जो स्त्री व्रत उपवास आदि करती है वह इस लोकमें पतिकी आयुको हरती है और पर लोक में नरकगामिनी होती है, ब्रह्मचारी जिस प्रकार स्वर्ग गामी होते हैं तिसी प्रकार सुचरित्रा बिधवा स्त्री पुत्र रहित होय तोभी ब्रह्मचर्यसे जीवनको बितानेपर स्वर्गको पातीहै॥

॥ वृद्धहारीत संहिता ॥

सुशीलन्तुपरंधर्मं नारीणांनृपसत्तम ।
शीलभंगेननारीणां यमलोक:सुदारुणः ॥
मृतेजीवतिवापत्यौ यानान्यमुपगच्छति ।
पतिंयानातिचरति मनोवाक्कायकर्मभिः ॥
साभर्तृलोकमाप्नोति यथैवारुन्धतीतथा ।
आतीर्तेमुदितेहृष्टा प्रोषितेमालिनाकृशा ॥
मृतेम्रियेतयापत्यौ सास्त्रीज्ञेयापतिव्रता ।
यास्त्रीमृतंपरिष्वज दग्धाचेद्धव्यवाहने ॥
साभर्तृलोकमाप्नोति हरिणाकमलायथा ।
ब्रह्मघ्नंवासुरापंवा कृतघ्नंवापिमानवम् ॥
यमादायमृतानारी तंभर्तारंपुनातिहि ।
साध्वीनामिहनारीणा मग्निप्रयतनाहृते ॥
नान्योधर्मोऽस्तिविज्ञेयो मृतेभर्तरिकुत्रचित् ।
वैष्णवंपतिमादाय यादग्धाहव्यवाहने ॥
सावैष्णवपदंयाति यत्रगच्छतियोगिनः ।

मृतेभर्तरियानारी भवेद्यदिरजस्वला॥
चिताग्निसंग्रहेतावत् स्नात्वातस्मिन्प्रवेशयेत
गर्भिणीनानुगन्तव्या मृतंभर्तारमव्यया॥
ब्रह्मचर्यंव्रतंकुर्यात् यावज्जीवमतन्द्रिता।
केशरंजनताम्बूलः गन्धपुष्पादिसेवनम्॥
भूषितरङ्गवस्त्रञ्च कांस्यपात्रेचभोजनम्।
द्विवारभोजनंचाक्ष्णो रञ्जनंवर्जयेत्सदा॥
स्नात्वाशुक्लाम्बरधरा जितक्रोधाजितेन्द्रिया।
नकल्ककुहकासाध्वी तन्द्रालस्यविवर्जिता॥
सुनिर्मलाशुभाचारा नित्यंसंपूजयेद्धरिम्।
क्षितिशायीभवेद्रात्रौ शुचौदेशेकुशोद्भवेत्॥
ध्यानयोगपरानित्यं नित्यंसंगेव्यवस्थिता।
तपश्चरणसंयुक्ता यावज्जीवंसमाचरेत्॥
तावत्तिष्ठेन्निराहारा भवेद्यदिरजस्वला।

वृ० हा० ८ म अध्याय। अर्थात् सुशील स्त्रियों का परम धर्म है, दुःशीला स्त्री परलोक में कष्ट भोगती है, जो स्त्री पतिके जीवित रहते अथवा मरण को प्राप्त होजाने पर अन्य पतिको ग्रहण नहीं करती है वह इस लोकमें कीर्ति पाती है और परलोक में लक्ष्मी की प्रियपात्र होती है जो मनवाणी और कार्य से पति की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करतीहै वह अरुंधती की समान परलोक में पतिलोक को पातीहै जो स्त्री

पतिके पीड़ित होनेपर अपने को पीड़ित जानती है, पति के आनन्दित होनेपर प्रफुल्लित होती है पतिके परदेश को जानेपर मलिन और कृश रहती है, और जो पतिकी मृत्युसे मृतकसी होजाती है वह ही पतिव्रता कहलाती है। जो स्त्री मृत पति के साथ गमन करती है वह लक्ष्मीनारायण के समान परलोक में पतिके साथ आनन्द भोगती है, पति यदि ब्रह्म हत्यारा शराबी अथवा कृतघ्नी होयतौ यदि उसका मरण होनेपर स्त्री सहगामिनी होय तौ महापातक ग्रस्त पतिको पवित्र कर लेती है, पतिको परलोक होनेपर उसके साथ गमन करके सिवाय पतिव्रता स्त्रियों का और कोई धर्म नहीं है, जो मृत पति के साथ गमन करती है वह पतिसहित योगियों को जो पदप्राप्त होता है तिस विष्णुपदको प्राप्त होती है, पतिके साथ गमन करने के समय स्त्री यदि रजस्वला होजायतौ वह चिता ग्निकी रक्षा करकै स्नानके अनन्तर अग्निमें प्रवेश न करै, जब तक जीवित रहै ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके सावधानी से रहै केशोंको न सँभालै, ताम्बूल भक्षण न करै, सुगन्ध द्रव्य तथा पुष्पादि का सेवन न करै, भूषण तथा रँगेहुए वस्त्रादि धारण न करै, कांसी के पात्र में भोजन न करै, दोबार भोजन और नेत्रों में कज्जल धारण न करै, सुचरित्रा विधवा स्त्री स्नान करकै शुक्लवस्त्र धारण करै और जितेन्द्रिय तथा तंद्रा आल-स्यादि रहित, पवित्र होकर नित्य विष्णु भगवान् का पूजन करै, रात्रि में भूमिपर शयन करै, नित्य सत्संग करै, और भगवान् का ध्यान करती रहै, इस प्रकार जीवन भर तप

करनेमें लगीरहै, और रजस्वला होनेपर थोड़ा भोजन करै ॥

॥ मैं कौन हूँ ॥

यद्यपि जगत् में अनेकों धर्म प्रचलित हैं परन्तु उनके मूल भूत दोही धर्म हैं एकही मूल धर्मसे यद्यपि बहुतसी शाखा प्रशाखा निकलकर अनेकों सम्प्रदाय होगये हैं परन्तु उससे मूल धर्मकी कोई हानि नहीं हुई है, एक हिन्दू धर्ममेंही जितने सम्प्रदाय भेदहैं उनका पूर्ण रीतिसे वर्णन करनो अति कठिनहै, जैसे कि बौद्ध धर्मके प्रधानतः चार भेदहैं ॥

चतुःप्रास्थनिकाबौद्धाःख्यातावैभाषिकादयः ।

इसके सिवाय तिस बौद्ध धर्मकी और भी बहुतसी शाखा प्रशाखा हैं, इसी प्रकार मुसल्मीन धर्म्म और क्रिश्चियन धर्म्म में भी अनेकों सम्प्रदाय भेद देखने में आते हैं परन्तु उन सब का मूल तत्व प्रायः एकरूपही है, सब ईश्वर वादी धर्मों का मत यह है कि एक अनंत महिमामय ईश्वरसेही इस दृश्यमान् जगत् की सृष्टि होती है और वह इच्छामय सर्वज्ञ परमपुरुष ही जगत् का प्रेरक है, तथा तिस जगत् के आदि कारण सर्व व्यापी ईश्वरमें ही प्रलयकाल में यह जगत् लय को प्राप्त हो जाता है, इस कारण पूर्वोक्त सम्पूर्ण धर्म के भिन्नाकार और भिन्न भावसे गठित होनेपर भी सबका मूल या उदान एकही है। इन मतों के सिवाय और एक मत है। जिसका स्वरूप इससे बिलकुल भिन्न है, उस मतमें-इस दृश्यमान जगत् का कोई अलग रचनेवाला नहीं है, प्राकृतिक नियम सेही जगत्

का प्रवाह चलता है, संयोग वियोग शालिनी जड़ शक्तिही सृष्टि स्थिति और प्रलयकी मूल कारण है, इस मतको अवलम्बन करनेवाले जड़ शक्तिके सिवाय ईश्वरकी सत्ता नहीं मानते हैं इसकारण पूर्वोक्त मतसे यह मत बिलकुल भिन्न हैं, अब इन दोनों ईश्वर को न माननेवाले मतों में प्रधान २ अंशों में क्या भेद है? इसकाही विचार इस लेख में करैंगे। शास्त्र और युक्ति आदि किसी विषय को अवलम्बन न करके केवल अपने विचार रूप बुद्धि बलसेही मनुष्य मात्रके हृदयमें पहिले कई एक प्रश्न उत्पन्न होतेहैं जैसे कि–"मैंकौनहूँ? जगत् क्याहै? जगत् का नियन्ता कौन है?" यह तीन प्रश्न धर्म जिज्ञासुओं के हृदय में प्रथमही उत्पन्न होते हैं इनतीन प्रश्नों का विचार करने में ही और भी कई एक प्रश्न आपड़ते हैं, जैसे कि–परलोक, जन्मांतर, पाप, पुण्य, कर्मफल, उपासना, मुक्ति, जाति भेद और आचार भेद इत्यादि। पहिला प्रश्न है कि "मैं कौनहूँ? अर्थात् आत्मा का स्वरूप क्या है?" यहही मनुष्यका पहिला प्रश्नहै, जिस अहं पने (अहंता) को लेकरही संसार है, जो अहन्ता (मेरा २) जीवन का मूल मन्त्रहै, देहाभिमानी जीव जिसको भूलकर एक मुहूर्त्त मात्र भी नहीं रहसक्ता, उस अहम् (मैं) के मनमें इस प्रश्नका उदय होना स्वाभाविकहै। जिसप्रकार मेरा धन, मेरा गृह, मेरी स्त्री, मेरा पुत्र, इत्यादि सबही मेराहै, तिसीप्रकार मेरा हाथ, मेरा पैर, मेरी आखें, मेरे कान, मेरादेह, मेरामन, मेरी बुद्धि इत्यादि सबभी मेरेही हैं, अब यह विचार करना चाहिये कि–इस देह राज्य में

"अहम्" रूपी कर्त्ता कौनहै ? किसके सुखके लिये इतनी चेष्टा है ? जिसको न कभी देखाहै न कभी देख सकेंगे उसकेलिये इतनी चेष्टा क्यों ? सम्पूर्ण जगत् रसातल को चलाजाय तथापि मैं रहूंगा, वह मैं, कौन है जिसमें "अहम्" को लेकर चिरकाल जीवन को बिताऊँगा जिसके साथ जीव लीला की समाप्ति होगी, वह क्या पदार्थ है ? उसको निश्चय करके अवश्यही जानना चाहिये। अब यहभी ध्यान देना चाहिये कि शास्त्रों में इस विषय का क्या निश्चय किया है ? निरीश्वर वाद् मतको अवलम्बन करनेवाले कहते हैं कि "अहम्" शब्द का वाचक देहसे भिन्न और कोई स्वतंत्र (आत्मा) नहीं है? नास्तिक के मतमें यह स्थूल शरीरही "अहम्" शब्दका वाचक है, इस विषयमें वह इसप्रकार प्रमाण देतेहैं (सवाएष पुरुषो ऽन्न रसमय इत्यादि श्रुतेः, इति चारवाकाः) और उन निरीश्वर वादियों में कोई देहस्थ इन्द्रियों के समूह कोई "अहम्" शब्दका वाचक [आत्मा] कहते हैं इस विषय में वह इस प्रकार प्रमाण देतेहैं, "तेही प्राणाः प्रजापतिं समेत्य ब्रूयुरित्यादि श्रुतेः" अपरस्तु " इन्द्रियाणाम भावे शरीर चलना भावेत इन्द्रियाण्यात्मेति वदति" अर्थात् इन्द्रियों के न होनेपर किसीप्रकार भी देह नहीं चलसकता है इसकारण इन्द्रियों के समूह काही नाम आत्माहै इन दोनों मतों में कुछ थोड़ासा भेद होनेपर भी इनका प्रयोजन एकही है। किसीने स्थूल शरीरको और किसीने नेत्रकर्ण आदि स्थूल इन्द्रियों को आत्मा माना है। इनके मतमें पृथिवी जल तेज वायु इन

चार महाभूतों के मिलने की क्रिया से चैतन्य की उत्पत्ति होती है, वह चैतन्यही आत्मा और अहं शब्दका वाच्यहै, इस विषयमें यह कहते हैं ॥

अत्रचत्वारिभूतानि भूमिवार्य्यनलानिलाः।
चतुर्भ्यः खलुभूतेभ्य श्चैतन्य मुपजायते ॥
इति चार्वाकः।

जिसप्रकार प्राकृतिक दो पदार्थोंके मिलाने से एक नवीन धर्म्म की उत्पत्ति होतीहै तिसीप्रकार पृथिवी जल तेज और वायु के मिलने से चैतन्यकी उत्पत्ति होतीहै यहही नास्तिकों के मतका आत्मा और अहन्ता है। निरीश्वर वादियों के सिवाय सब धर्मों के मतसे आत्मा देहसे अलग भिन्न पदार्थहै तिस आत्मा के विषयमें अनेकप्रकार के मत भेद होनेपर भी आत्मा का स्वरूप सबने प्रायः एकसाही मानाहै। हिन्दू धर्म के प्रधान शास्त्र वेदांतदर्शन श्रीमद्भागवत और श्रीमद्भगवद्-गीता आदि का अभिप्राय आत्मा के विषय में प्रायः एकसा हीहै। इन सब मतोंमें आत्मा दोप्रकार का है, एक परमात्मा और दूसरा जीवात्मा—परमात्मा नित्य चैतन्य सर्वव्यापी साक्षी स्वरूप है और मायोपहित चिदाभास जीवात्मा नामक भोक्ता रूपहै, परमात्मा का अंशभूत जीवात्मा भी देहसे भिन्न और नित्य पदार्थ है, देहादि का नाश होनेपर आत्मा का नाश नहीं होता है, सोई श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है ॥

"अजोनित्यःशाश्वतोऽयं पुराणोनहन्यतेहन्यमानेशरीरे"।

अर्थात् आत्मा का जन्म नहीं होताहै क्षय नहीं होताहै और शरीरके नाश होनेपर आत्मा का नाश भी नहीं होताहै क्योंकि—आत्मा अविनाशी है। पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, प्राणादि पंच वायु और मन तथा बुद्धि, इन सत्तरह अवयवों का नाम लिङ्ग शरीर वा सूक्ष्म शरीर है, यह सूक्ष्म शरीरावच्छिन्न आत्माही जीव है। आत्मा आकाशकी समान सर्वव्यापी है परन्तु घटस्थित आकाश जिस प्रकार घटाकाश रूपमे प्रतीत होताहै और घटका नाश होनेपर उस घटमें स्थित आकाश का नाश नहीं होताहै तिसीप्रकार सर्वव्यापी आत्मा भी मायाके वशमें होकर सत्तरह अवयवों करकै युक्त सूक्ष्म शरीरमें स्थित होता हुआ जीवरूप मे प्रतीत होता है और तिस सूक्ष्म शरीर का नाश होनेपर आत्मा का नाश नहीं होता है घटमें स्थित आकाश जिसप्रकार घटके साथ एक स्थानसे दूसरे स्थान में जाताहै, तिसीप्रकार सूक्ष्म शरीर में स्थित आत्मा भी सूक्ष्म शरीर के साथ एक देहसे अन्य देहमें जाता है इसकोही संसार में मृत्यु कहते हैं। परन्तु इस प्रकार की मृत्युमे स्थूल शरीर का नाश होता है और सूक्ष्म शरीर में स्थित आत्मा का नाश नहीं होता है सोई श्री भद्भगवद्गीता में कहा है ॥

वासांसिजीर्णानि यथाविहाय नवानिगृह्णातिनरोऽपराणि। तथाशरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयातिनवानिदेही ॥

अर्थात् जिसप्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर नवीन वस्त्रों को धारण करता है। तिसीप्रकार जीवात्मा भी जीर्ण शरीरको त्यागकर नवीन धारण करता है। महर्षि गौतम कृत "न्यायदर्शन" के मतसे भी जीवात्मा देहसे भिन्न पदार्थ है परन्तु सर्वव्यापी नहीं है और प्रति शरीर का आत्मा भिन्न २ है। सांख्यदर्शन के मतमें भी आत्मा देहसे भिन्न पदार्थ है और महत्व, बुद्धि, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, और पंचतन्मात्रा इन सत्तरह अवयवों का मिलकर सूक्ष्म शरीर बनता है सोई कहा है,-"सप्तदशैकलिंगम्" (सांख्य-दर्शन) सांख्यके मतसे सर्वत्र जानेवाला यह सूक्ष्म शरीरही पुरुष नामसे कहाजाताहै, और प्रत्येक स्थूल शरीरमें स्वतंत्र२ अधिष्ठाता पुरुष (जीवात्मा) स्वरूप में विराजमान हैं इसी प्रकार पुराण संहिता तंत्र आदि सकल सनातन धर्मानुकूल शास्त्रों में जीवात्मा को देहसे अतिरिक्त पदार्थही माना है। कोई २ कहते हैं, कि-ज्ञानमय आत्मा संपूर्ण शरीरमें व्यापकर स्थित है, नहीं तौ शरीरके जिस किसी स्थानमें स्पर्श करनेपर, किसप्रकार वह आत्माको प्रतीत होय ? कोई कहते हैं कि-ऐसा नहीं है, किन्तु आत्मा देह के किसी प्रधान स्थानमें स्थित होकर इन्द्रियों की सहायता से मनके द्वारा संपूर्ण विषयों के गुणों को ग्रहण करता है और कोई कहतेहैं कि-जिसप्रकार घरमें रक्खा हुआ दीपक, घरके किसी नियत (मुकर्रिर) स्थानमें स्थित होकर बिरल परमाणु रूपसे संपूर्ण घरको प्रकाशित करता है तिसीप्रकार आत्माभी देहके किसी

नियत स्थानमें स्थित होकर सकल शरीरमें ज्ञानका प्रकाश करता है ॥--॥ ऐसेही और भी बहुतसे मत भेद देखने में आते हैं परन्तु यहाँ उन सबका वर्णन करना निष्प्रयोजन है, क्योंकि–आत्मा के स्वरूप का निर्णय करने के विषयमें कुछ मत भेद होनेपर भी, आत्माको देहसे अतिरिक्त (अलग) पदार्थ सबही मानते हैं, केवल हिन्दूही क्या आस्तिकमात्र जीवात्मा को देहसे अतिरिक्त पदार्थ मानते हैं इसकारण अहन्ता का विरोध केवल निरीश्वर वादियों के साथ है, अतएव अब यह बिचारना चाहिये कि–निरीश्वरवादी जो स्थूल शरीर वा इन्द्रियोंके समूहको आत्मा कहते हैं वह युक्ति युक्त (ठीक) है, या ईश्वरवादी जो आत्माको देहसे अतिरिक्त पदार्थ कहते हैं सो युक्ति युक्त है । मनमें विचार करने की बात है कि आत्मा यदि देहसे अतिरिक्त पदार्थ नहीं होता तौ कदापि देह वा स्थूल इंद्रियों के रहते जीवकी मृत्यु नहीं होती, देहके किंचिन्मात्र शेष रहने परभी उसमें आत्मा की क्रियोका प्रकाश होता, क्षणभर पहिले जो जीव शरीर स्वाभाविक अवस्था मेंथा, क्षणभर पहिले जो सकल इन्द्रियें दृढ़ और संपूर्ण कर्मों को करने में समर्थ थीं क्षणभर पहिले जो शरीर अपने परिवार के पुरुषों के नेत्रों के आनन्द का बढ़ानेवाले था, क्षणभर के अन्तर न जाने किस एक पदार्थ के न होने से वह शरीरजड़ अवस्था को प्राप्त होकर उनही परिवार के पुरुषों के हृदय में घृणा और भयका उत्पन्न करने वाला होगया, वहही शरीर है वहही नेत्र कर्ण आदि संपूर्ण

इंद्रियें विद्यमान हैं, परन्तु उनमें किसीमें कोईभी शक्ति नहीं है, वह सब काठकी समान चेष्ठा हीन हैं, सबही हैं और वह दीप्ति नहीं है, क्षणभर पहिले जो शरीर भयभीत पुरुष को साहस (ढाढस) देनेवाला था, इस समय वहही शरीर भयानक श्मशान रूप है, जिस शरीर को लेकर घोर अन्धकार वाली अर्धरात्रि के समय निर्जन स्थान में प्राणप्रिया स्त्री स्वर्ग सुख अनुभव करती थी, इस समय वहही प्राणप्रिया उसही शरीर को देखनेमात्र से भयभीत होतीहै, यदि देहही आत्मा होयतो ऐसा क्यों होता है। जिस भौतिक संयोग से चैतन्य की उत्पत्ति हुई थी वह भौतिक संयोग इस समय भी विद्यमान है, फिर चैतन्य का लोप क्यों होगया ? और भी एक बार्ता है, रसायन विद्याके तत्वको जानने वाले, जीव शरीर के सकल पदार्थ रासायनिक प्रक्रिया के द्वारा अलग २ करके उसके परिमाणका निश्चय करसक्ते हैं, परंतु उतनेही परिमाण के पदार्थों को इकट्ठा करनेपर क्या उससे चैतन्य की उत्पत्ति होसक्ती है, ? आजतक विज्ञान के बलसे क्या किसीने एक प्राणी कोभी रचना करने की शक्ति दिखाई है ? फिर किस प्रकार भौतिक संयोगसे चैतन्यकी उत्पत्तिका विश्वास किया जाय ? इसलिये वास्तव में तत्व यह है कि-जिससे जोनहीं होता, उससे वह किसी समय भी नहीं होसक्ता पञ्चमहाभूत जड़ (अचेतन) पदार्थ हैं, इस कारण उससे चैतन्य की उत्पत्ति होना अत्यन्त असंभव है, भिन्न २ धर्मवाले दो अचेतन पदार्थोंका संयोग होनेपर निःसंदेह एक नवीन धर्मकी उत्पत्ति

होती है परन्तु वह तज्जातीय अर्थात् अचेतन (जड़) कीही उत्पत्ति होती है, अचेतन पदार्थ से कदापि चैतन्य की उत्पत्ति नहीं होसक्ती, इसलिये "चतुर्भ्यः खलुभूतेभ्य श्चैतन्यमुपजायते" यह कथन अत्यन्त अश्रद्धेय है, आत्मा इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य पदार्थ नहीं है इस कारण आत्मा के स्वरूप का निर्णय करने के विषय में आस्तिक संप्रदायों में भी नानाप्रकार का मत भेद देखने में आता है परन्तु मत भेद होनेपर भी मूल विषय में कोई विवाद नहीं है, सबही आत्मा को देह से अतिरिक्त पदार्थ मानते हैं।

॥ भजन राग धनाश्री ॥

प्रीतम जानलेहु मनमाहीं। अपने सुखको सबजग बांध्यो कोऊ काहू को नाहीं॥ सुखमें आप सभी मिल बैठत रहत चहूंदिशि घेरे। बिपति पड़ी तब संग छांड़कोऊन आवै नेरे॥ घरकी नारि बहुत हित जासों रहत सदा संग लागी। जब इन हंस तजी यह काया प्रेत २ कह भागी॥ या विधि को व्यवहार बनो जग तासों नेह लगायो। सूरदास भगवन्त भजन बिन नाहक जन्म गंवायो॥

॥ जगत् क्याहै ? ॥

प्रथम अङ्क में, मैं कौनहूं ? इस प्रबन्ध के प्रारंभ में लिख चुके हैं कि—मनुष्य के चित्त में स्वयं बुद्धिबल से तीन प्रश्न उठते हैं,—मैं कौनहूं, जगत् क्या है, और जगत् का नियन्ता कौन है, जिसमें से, मैं कौनहूं ? इस प्रश्नका उत्तर १-२ अङ्क

में लिख चुके, हैं अब दूसरे जगत् क्याहै इस प्रश्न का उत्तर लिखते हैं--निरीश्वर वादी इस दृश्यमान जगत् को अनादि मानतेहैं, और कहतेहैं कि-जैसा इस समय देखरहे हैं अनादि अनन्त कालसे ऐसाही चलाआता है, जगत् को किसीने किसी समय रचा नहीं है और न इस जगत् का नास होगा बीजके बिना अंकुर और अंकुर (वृक्षादि) के बिना बीज उत्पन्न नहीं होता, तथा शुक्र (वीर्य) की बिन्दु के बिना मनुष्य की उत्पत्ति नहीं होती और मनुष्य के बिना शुक्र बिंदु नहीं उत्पन्न होता, इस प्रकार जगत् के प्रत्येक पदार्थ की उत्पत्ति का कारण प्रत्येक पदार्थ में बिद्यमान है इसलिये प्रत्येक पदार्थ अनादि है। आस्तिक संप्रदाय में कोई कोई जगत् का धारा वाहिक नित्यत्व स्वीकार करकै भी जगत्को अनादि नहीं मानते हैं. आस्तिक मतमें जगत् रचित बस्तुहै जगत् की उत्पत्ति के विषयमें आस्तिक शास्त्रों का परस्पर मत भेद होनेपर भी जगत् की उत्पत्ति और लय सब मानते हैं। वेदान्त मतमें सच्चिदानन्द ब्रह्महीं जगत् की सृष्टिका कारण है ब्रह्मकी आवरण और विक्षेप नामक दोशक्ति हैं। आवरण शक्ति से आवृत होकर आत्मा अपने को कर्ता भोक्ता आदि मानता है और विक्षेप शक्तिके द्वारा परमात्मा में, जगत् का भ्रम अर्थात् भ्रमात्मक यह दृश्यमान जगत् उत्पन्न होताहै यथा "विक्षेपशक्तिर्लिङ्गादि ब्रह्माण्डाण्डंजगत्सृजेत्" अर्थात् विक्षेप शक्तिमान् अज्ञानोपहित चैतन्य से आकाशादि सूक्ष्म पञ्चभूत और तन्मात्ररूप सूक्ष्म भूतसे सूक्ष्म शरीर (लिङ्ग शरीर)

तथा तन्मात्ररूप सूक्ष्म भूतसे परिमिश्रण क्रियाके द्वारा आका-शादि स्थूल पञ्चमहाभूत की उत्पत्ति होती है, यह दृश्यमान जगत् तिन स्थूल पञ्चमहाभूतों का परिणाममात्र है, और प्रलय काल में यह जड़ जगत् अपने २ कारणमें लयको प्राप्त होजाता है। श्रीमद्भागवत आदि कितनेही महा पुराणों मेंभी सृष्टि प्रकरण प्रायः वेदान्त मतके अनुकूल ही है, किञ्चिन्मात्र भेद है, जैसे श्रीमद्भागवत में लिखा है

भगवानेकआसेदमस्त आस्मात्मनांविभुः ।
आत्मेच्छानुगतावात्मानानामत्युपलक्षणम् ॥
सवाएषतदाद्रष्टा नापश्यद्दृश्यमेकराट् ।
मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥

अर्थात् आत्माका आत्मस्वरूप, जगत् का स्वामी वह परमात्मा सृष्टि के समय नानाप्रकार की बुद्धियों में उपलक्षित हुआ, उसकी अपनी इच्छा के लीन होनेपर (महालय के समय) यह विश्व एक भगवत्स्वरूप था, उस समय उन्हों ने द्रष्टा होकरभी अन्यदृश्य पदार्थ कुछ नहीं देखा, उनका माया शक्ति के उनमेंही लीन होजानेके कारण दृश्य वस्तुका अभाव होनेपर अपने को जिस समय अभाव रूपसा माना उस समय उन्होने सृष्टि की इच्छा करके ॥

"सावैएतस्यसंद्रष्टुः शक्तिःसदसदात्मिका ।
मायानाममहाभाग ययेदंनिर्ममेविभु" ॥

अर्थात् द्रष्टा परमेश्वर ने अपनी सदसद्रूप माया शक्ति के

द्वारा इस दृश्यमान जगत् की रचना करी, तिस माया सेही क्रम करके महत्तत्व और महत्तत्व से सूक्ष्म आकाशादि इस प्रकार क्रमसे स्थूल जगत् पर्यन्त उत्पन्न हुआ है। सांख्यदर्शन आदिके मतमें भी जगत् रचित पदार्थ है, सांख्य मतमें सत्व रजस्तमोगुण रूप त्रिगुणात्मिका प्रकृतिही सृष्टिका मूलहै, इस मूल प्रकृति से महत्तत्वादि के क्रमसे तेईस तत्व उत्पन्न होते हैं, यथा "महदादि क्रमेण पञ्चभूतानाम्" (सांख्य दर्शन) महत्तत्वादि के क्रमसे पञ्चभूतों की उत्पत्ति होकर संसारकी सृष्टि होती है, सांख्य दर्शन के साथ पातञ्जल दर्शन का सृष्टि के विषय में और कोई भेद नहीं है केवल सांख्य मत की सृष्टि प्रकृति से उत्पन्न होती है और पातञ्जल मतमें प्रकृति से परे और एक पुरुष विशेष को ईश्वर नामसे स्वीकार करा है, यथा—क्लेश कर्म विपाकाश यैर परामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः (पातञ्जल दर्शन) अर्थात् अविद्या जनित क्लेश, कर्म फल वासना आदिके स्पर्शसे रहित जो पुरुष विशेष (परमपुरुष) है वहही ईश्वर है। पातञ्जल मतमें इस परम पुरुष की इच्छा के क्रम करकेही प्रकृति तत्वसे सृष्टी का उत्पत्ति होती है, और प्रलयकाल में सब अपने २ कारण में लय होकर परम पुरुष मात्र शेष रहता है। देवी भागवत और मार्कण्डेयपुराण आदि ग्रन्थों मेंभी सृष्टि क्रम प्रायः सांख्य दर्शन के अनुसार ही वर्णित है। तात्पर्य यह हैकि--जगत् की उत्पति के विषय में शास्त्रकारों में मत भेद होनेपर भी जगत् को अनादि नहीं मानते हैं, आस्तिक शास्त्रमात्र में जगत् को सृष्टि पदार्थ

मानाहै, इस कारण बिरोध केवल निरीश्वर वादियों के साथ है, अब यह भी देखना चाहिये कि--ईश्वर और निरीश्वर वादी दोनों में कौन मत युक्ति युक्त है। प्रथम यह देखना चाहिये कि–अनादि वा नित्य शब्दकी ब्युत्पत्ति क्याहै। जिस की आदि नहीं, अन्त नहीं क्षय, उदय नहीं परिवर्त्तन (रूप बदलना) नहीं वहही अनादि वा नित्य है, और जिसकी उत्पत्ति नाश, परिवर्त्तन, वृद्धि तथा अवधि है वहही अनित्य है। इस दृश्यमान जगत् को कदापि अनादि वा नित्य नहीं कहा जासक्ता, जगत् शब्द का वास्तविक अर्थ समूह है, अतएव जगत् में स्थित प्रत्येक पदार्थ की समष्टि का नाम जगत् है, परन्तु जगत् के छोटे बड़े किसी पदार्थ को भी हम अवधि रहित और उत्पत्ति नाश रहित नहीं देखते हैं, अधिक क्या कहैं जिसका परिमाण पृथ्वी से बहुतही अधिक है वह सूर्यभी अवधि हीन नहीं है, इस प्रकार जगत्के सकल ही पदार्थ नाशवान् हैं इस कारणही सब अनित्य हैं, जिन पदार्थों के समूह से जगत् कहाता है उनका कुछ अंश अनित्य होनेपर भी जगत् की अनित्यता स्वीकार करनी पड़ैगी, इस कारण उत्पत्ति नाश परिवर्त्तन-परि वर्द्धन शील-अन्तवान् जगत्को अवश्यही सृष्टि (रचित नकि अनादि) पदार्थस्वीकार करना पड़ैगा॥

॥ जगत् का नियन्ता कौनहै ? ॥

हमने इस पत्रिका के प्रथम अङ्क में यह विषय लिखाथा

कि—मनुष्यके हृदयमें—मैं कौनहूँ? जगत् क्या है? जगत् का नियन्ता कौन है? यह तीन प्रश्न प्रायः स्वयं उदय होते हैं जिसमें से मैं कौनहूँ? जगत् क्या है? इन दोनों प्रश्नों का विषय पिछले अङ्कोंमें कहचुके अब "जगत् का नियन्ता कौन है"? इस तीसरे प्रश्न के विषयमें यथा मति कुछ कहने का साहस करते हैं—किसीप्रकार शिक्षा प्राप्त न होनेपरभी मनुष्य के हृदयमें स्वयंही इस प्रश्नका उदय होता है कि—"जगत् का नियन्ता कौनहै"? किसकी अखण्डनीय आज्ञासे अनन्त आकाश मार्गमें यह सुविशाल ज्योतिश्चक्र (तारागणादि) प्रति नियत रूपसे अपने २ कक्षमार्ग में घूमता है? किसकी आज्ञासे दिन, रात्रि, पक्ष, अयन, ऋतु आदि निर्दिष्ट नियम से परिवर्तित होते हैं? किसकी आज्ञासे वायु बहता है, सूर्य ताप देताहै, मेघ जलकी वर्षा करते हैं किसकी आज्ञासे तरु लतादि उत्पन्न होतेहैं, पुष्प खिलते हैं, फल फलित होतेहैं? यह जड़ जगत् कैसे अविराम गतिसे घूमताहै? कौन चलाता है? कैसे चलता है? संसार यन्त्रके चलानेका प्रयोजन क्या है? प्रश्न सब प्रायः एकसे हैं, परन्तु उत्तर पृथक् २ है। निरीश्वरवादी कहते हैं कि—यह विश्व प्राकृतिक शक्तिके बल से चलरहा है, इसका कोई स्वतन्त्र नियन्ता नहीं है। उनमें कोई कहते हैं—प्रत्येक पदार्थ की प्राकृतिक शक्ति पृथक् २ है दूसरे कहते हैं—सम्पूर्ण जगत् की मूलमें एक आदि शक्ति प्रति नियत क्रियाओं का प्रकाश करती है, परन्तु इन दोनोंही के मतमें वह शक्ति जड़ है, जिस प्रकार चुम्बक के समीप लोहा

रखनेपर अचेतन चुम्बक उसको खैंचता है, तिसीप्रकार जगत् का प्रत्येक पदार्थ प्रति नियत नियमानुसार दूसरे पदार्थ को खैंचता है, इसीप्रकार केन्द्राभिकर्षिणी और केन्द्रापसारिणी शक्ति के बलसे सूर्यको केन्द्र करके पृथिवी और सम्पूर्ण ग्रह नक्षत्रादि अपने २ कक्षमार्ग में नियत रूपसे भ्रमण करते हैं। इन पृथिवी और ग्रह नक्षत्रादि की गतिके द्वाराही दिन, रात्रि, पक्ष, ऋतु, अयन आदि परिवर्त्तित होते हैं, और उस परिवर्त्तनके सङ्ग २ जगत् के सकल पदार्थों के उत्पत्ति-परिवर्त्तन वृद्धि--और लय होते हैं। इसके सिवाय इस जगत् का कोई स्वतन्त्र चैतन्य मय चलानेवाला नहीं है। दूसरे पक्षके आस्तिकों का कथन है कि-सर्व्व शक्तिमान ईश्वरके अनन्त नियमों से जगत् परिचालित होता है, ईश्वर की त्रिगुणात्मिका प्रकृति उन सुनियमों की रक्षा करती है, ईश्वर नियामकहै और प्रकृति उन नियमों के अधीनहै, आस्तिक सम्प्रदाय में इस विषयमें और भी बहुतसे भेदहैं, कोई कहते हैं कि-सृष्टिके आरम्भमेंही ईश्वर सकल जगत् को रचकर स्वयं निर्लिप्त भावसे स्थितहै, उसके उन अखण्डनीय नियमों के अनुसारही अनन्त कालमे जगत् चलरहा है, कोई २ कहते हैं कि-उन्होंने प्रयोजन के अनुसारही सकल नियमों की कल्पना करी है, और कोई २ कहते हैं कि-जड़ जगत् के लिये उसके किये हुये नियम अखण्ड भावसे चलरहे हैं, परन्तु चैतन्यमय जीवके लिये यह व्यवस्था नहीं है, कर्मानुसार जीवकी उन्नति अवनति होनेपर भी अनेकों समय जीवके

लिये उसको स्वतन्त्र व्यवस्था करनी पड़ती है, परन्तु भक्ति शास्त्रका कथन इस सबसे सर्वथा पृथक् है, भक्ति शास्त्रके मतमें भक्तवत्सल भगवान् ने जड़ जगत् के लिये जो नियम निर्धारित किये हैं, भक्तके विषयमें वहभी अखण्डनीय नहीं हैं, भक्ताधीन भगवान् भक्तके लिये प्रति नियत स्वतन्त्र व्यवस्था करके दयामय नामकी सार्थकता का सम्पादन करते हैं, भागवान् ही जिसके जीवन सर्वस्व हैं, वह प्राकृतिक नियमों की वाध्यता स्वीकार नहीं करता है, भक्त आइन का दास नहीं है, आइन कर्त्ता का दास है, भक्तके लिये भगवान् इच्छामय है, अतः भक्तका कर्त्तव उनको अवश्य सहन करना पड़ता है, प्रेम पार्थिव पदार्थ नहीं है किन्तु स्वर्गीय ज्योतिसे परिपूर्ण है, प्रेम स्वभावतः , अन्धहै, उसके निकट भले बुरेका विचार नहीं है, वह किसी समयभी नियम तीतिका अनुशरण करना नहीं चाहता है, अतः उसे भक्ति शास्त्रकी कोई बात लेकर विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। अब, युक्तियों के द्वारा नास्तिक मतका खण्डन और आस्तिक मतका जो पार्थक्य है, उसको लेकर आलोचना करते हैं—ईश्वर और प्रकृति यह दोनोंही शब्द वर्ण समष्टिके सिवाय और कुछ नहीं है, यदि प्रकृतिको चैतन्य स्वरूपा सर्वशक्ति मयी स्वीकार कियाजाय तो प्रकृतिके साथ ईश्वर का कोई बड़ाभारी अन्तर नहीं रहेगा और यदि प्रकृतिको वा प्राकृतिक शक्तिको जड़ स्वीकार कियाजाय तो ईश्वरके साथ सर्वथा पृथक्ता होजायगी, इस कारण जो प्रकृति को

चैतन्य स्वरूपा कहते हैं उनके साथ तो विशेष विरोध है नहीं परन्तु जो प्रकृति और प्राकृतिक शक्ति दोनों में जड़त्व मानते हैं उनके मतका खण्डन करने के लियेही युक्तिकी आवश्यकता है। १ म। हम इस दृश्यमान जगत् मे जो सम्पूर्ण पदार्थ देखते हैं—वह प्रधानतः तीन श्रेणी में बटे हुयेहैं, यथा—चेतन अचेतन और उद्भिज्ज। इन तीन श्रेणियों मेंसे प्रत्येक श्रेणी में असंख्य श्रेणियों का विभागहै। और उन असंख्यश्रेणियों में प्रत्येकही पदार्थ कुछ एक भिन्न २ श्रेणी के अवयवों से युक्त और विभिन्न श्रेणीके गुणों की समष्टि मात्र है। अतएव एक बालुका के कणकी समान दूसरा एक बालुका का कण नहीं है, एक वृक्षके एक पत्ते की समान दूसरा पत्ता नहीं है एक जीवके समान दूसरा जीव नहीं है अथवा जीव देहके किसी एक अङ्ग प्रत्यङ्ग की समान दूसरा अङ्ग प्रत्यङ्ग नहीं है। और प्रत्येक पदार्थ में तथा प्रत्येक पदार्थके एक एक सूक्ष्मांश में एक एक विभिन्न शक्ति विद्यमान है। इसप्रकार भिन्न जातीय पदार्थों में भिन्न २ प्रकार की शक्ति देखकर निरीश्वरवादी सम्पूर्ण जगत् की एक आदि शक्ति स्वीकार नहीं करतेहैं। परन्तु आस्तिक सम्प्रदाय जगत् के सकल पदार्थों में भिन्न २ शक्तिको प्रत्यक्ष करके भी सम्पूर्ण जगत् की मूल एक त्रिगुणात्मिका आदि शक्ति मानते हैं। इस स्थानमें हम समष्टि और व्यष्टि, दो उदाहरण देकर आस्तिक मतकी श्रेष्ठता दिखाने की चेष्टा करेंगे। एक सामान्य किसान के खेतके पास एक दूसरे किसान का खेत होनेपर वहदोनों

सीमा (हद) को लेकर सर्वदा परस्पर विवाद करते हैं और आपसमें एक दूसरे की सीमाको अतिक्रमण करने की चेष्टा करते हैं, इसीप्रकार एक राजा दूसरे राजाके राज्यमें अधिकार करने के लिये निरन्तर चेष्टा करताहुआ, समय पाकर उसको अपने अधिकार में करलेता है और जबतक वह अपने अधिकार में नहीं होता तबतक आपस में तुमुल संग्राम होता रहता है, परन्तु इस विराट् विश्व राज्यमें कितने लोक, सूर्य चन्द्रमा, कितने ग्रह, उपग्रहादि हैं, और वह भयानक वेगके साथ अपने २ गतिमार्गमें नियत रूपसे भ्रमण करतेहैं उनमें कभी किसी प्रकार का विरोध देखने में नहीं आताहै, किंतु एकके साथ एकका आश्चर्य सम्बन्ध प्रतीत होता है। इस ग्रह नक्षत्रादि के संस्थान के द्वाराही जगत् के सकल पदार्थों की उत्पत्ति स्थिति, परिवर्त्तन और लय होतेहैं। यदि यह ग्रह उपग्रहादि प्रत्येक एक २ पृथक् शक्तिकेद्वारा चलाये हुये होते तो किसी केभी साथ किसीका कोई सम्बन्ध नहीं होता, और गतिमार्ग में परस्पर संघर्षणहोकर सकल जगत् में प्रलय काल उपस्थित होजाता परन्तु किसी समय भी इसप्रकारकी घटना नहीं होती है, वरं सकल एक सूत्रमें गुथेहुयेसे एकके शासन की आधीनता में अपने २ कक्षमार्गमें प्रति नियतरूप से भ्रमण करके यह विशाल विश्व एक नियन्ता के अधीनहै इसको प्रमाणित करतेहैं। और इस समष्टि के व्यष्टिरूप जीव देह वा तरु लतादि को ध्यान देकर देखो, उनमें भी इस नियमको पाओगे। जीव देह व तरु लतादि के प्रत्येक अङ्ग

प्रत्यङ्ग भिन्न २ प्रकारके अवयव वालेहैं, एवं प्रत्येक इन्द्रिय वा यन्त्रकी शक्ति वा क्रिया सर्वथा भिन्न २ हैं और प्रत्येक के साथ अभिन्न सम्बन्ध है--सकल अवयवों की सकल शक्ति यों के एकत्र संस्थान का नाम जीव वा तरुलतादिहै । अतः व्यष्टिभाव से एक साधारण पिपीलिका वा तृणादिसे लेकर अति बृहत् ग्रहादि पर्यन्त प्रत्येक पदार्थ में भिन्न २ प्रकारकी शक्ति होनेपर भी सकल समष्टि रूपसे एक आदि शक्ति के आधीनहैं । यह अनन्त जगत् जो सत्व रजस्तमोरूप त्रिगुणा-त्मिका एक महा शक्तिके अधीनहै सो सदा सबको प्रत्यक्ष होता है । प्रत्येक पदार्थ की आकृति प्रकृति, पृथक् २ होने परभी सकलही पदार्थ सत्वरजस्तम अर्थात् सृष्टि स्थिति प्रलयके अधीनहै, अतएव निर्दिष्ट नियमाधीन समस्त पदार्थों के मूलमें एक शक्तिकी क्रिया चलरही है, इसको कोई भी अस्वीकार नहीं करसकैगा। जिसप्रकार एकही वाष्पीय यन्त्र (इञ्जन) के साथ नानाप्रकार के यन्त्रों का संयोग करदेने पर उससे जिसप्रकार एक २ स्थानपर एक २ भिन्न २ प्रकार का कार्य (अर्थात् कहीं मयदा का पिसना, कहीं पुस्तकों का छपना, कहीं तेलका निकलना आदि कार्य) एकसाथ होता है तिसीप्रकार बहु यन्त्र समन्वित इस विशाल विश्व यन्त्रके मूलमें भी एक त्रिगुणात्मिका शक्ति प्रतिष्ठित होकर स्थान, काल और पात्रके भेदसे पृथक् २ क्रियाओंका विकाश करती है ॥ २ म । सम्पूर्ण जगत् के मूल में जो एक आदि शक्तिका होना कहा, अब देखना चाहिये कि--उसका स्वरूप क्याहै ?

अर्थात् वह महाशक्ति जड़ है वा चैतन्य मय है। नास्तिक इस शक्तिको जड़शक्ति और आस्तिक नित्य चैतन्यरूप कहते हैं इस स्थलमें निरीश्वर वादियों की युक्ति बिलकुल निर्बल प्रतीत होती है, क्योंकि--जड़ शक्ति, कदापि नियम करनें में समर्थ नहीं होसक्ती, नियमका संस्थान बुद्धि की वृत्तिका कार्य है, जो करने के लिये जिस शक्तिकी आवश्यकता है उसका प्रतीकार करने के लिये भी उसी शक्तिकी आवश्यकता है, एक बड़ीभारी पत्थर की शिला जितनी शक्ति के प्रयोग से एक स्थान में रक्खी गई है, उतनीही शक्ति के बिना वह शिला उस स्थानसे उठाकर अन्य स्थान में कदापि नहीं रक्खी जायगी, कबि कालिदासने जिसशक्ति के बलसे शकुन्तला की रचना करी थी तत्तुल्य कवित्व शक्ति के बिना दूसरा कोई उसके रचने को समर्थ नहीं होगा, इस नियम में जिसकी जितनी बुद्धि है वह उतनाही वैज्ञानिक नियमके तत्व का निर्णय करने में समर्थ है। अतः जब बुद्धि के बिना प्राकृतिक नियम नहीं स्थिर किया जासक्ता तब यह नियम भी बुद्धि वृत्तिका कार्य है, यहबात निःसन्देह है। परन्तु बुद्धि कदापि चैतन्य के आश्रय के बिना जड़ शक्ति में रह नहीं सक्ती। विशेषतः इस दृश्यमान् जगत् का कोई नियम भी उद्देश्य शून्य नहीं है। मनुष्य–शिशुका आधार एकमात्र दुग्ध है, परन्तु उसका भाण्डार गृह शिशुके उत्पन्न होनेसे प्रथमही माताके हृदयमें तैयार होजाता है। भ्रूण के गर्भमें स्थित नहोने तक उस दुग्धके भाण्डार में दुग्ध इकट्ठा नहीं होता है, और

यथा समयपर वह भाण्डार दुग्धसे परिपूर्ण होजाता है, माता पहिले जिन भोजन के पदार्थों को व्यवहार में लाती थी गर्भावस्था मेंभी ठीक उनही पदार्थोंका भोजन करती है, परन्तु पहिले जिन पदार्थोंसे माताके स्तनोंमें दुग्ध उत्पन्न नहीं होता था, गर्भावस्था में उनही पदार्थों से दुग्ध उत्पन्न होता है, और शिशुकी परिपाक स्थाली की परिपाक क्रिया की सामर्थ्य के अनुसार यह स्तनों का दुग्ध क्रमसे गाढ़ा होकर प्रयोजन न रहने पर फिर अन्तरधान होजाता है, तथा फिर प्रयोजन होनेपर बारम्बार प्रकट होकर अन्तर्धान होजाता है, यह देख कर किस बिचारवान् पुरुष के मनमें नहीं आवैगा कि–इस प्रकार का आपेक्षिककार्य कदापि उद्देश्य शून्य नहीं है, परन्तु इस प्रकार आपेक्षिक प्रयोजन को समझकर नियमका निर्धारण करनी क्या जड़ शक्ति के द्वारा सम्भव होसक्ता है ? नहीं ऐसा कदापि नहीं होसक्ता, और भी देखो–जड़शक्ति युक्त वाष्पीययन्त्र (इंजन) के द्वारा परमाश्चर्य कारक कुशलता से नानाप्रकार के कार्य सम्पन्न तो होते हैं परन्तु उसका रचने वाला वो चलानेवाला चिच्छक्ति सम्पन्न बुद्धिमय जीवही है इस यन्त्रके मूल में चिच्छक्ति न होनेपर कदापि वह कार्य साधक नहीं होसक्ता। तिसी प्रकार इस जड़शक्ति सम्पन्न बिशाल विश्वयन्त्र के मूलमें भी किसी अपरिसीम चिच्छक्ति के नहोने पर कदापि यह इसप्रकार सुनियमसे नहीं चलता। सकल जगत् के मूलमें एक आदिशक्ति और वह चैतन्य मयी सिद्ध हुई, इसको देवी भागवत् और मार्कण्डे पुराणादि शाक्त

मतकी प्रकृति" कही जासक्ती है। और इस शक्ति को ब्रह्म शक्ति वा साक्षात् पूर्ण ब्रह्म सनातनी कहने में भी कोई दोष नहीं है। क्योंकि-चैतन्यमयी आदिशक्ति के साथ ईश्वर का अत्यन्त ही अल्प भेद प्रतीत होता है। अब देखना चाहिये कि--आस्तिक मतमें इस जगत् के नियम के विषय में जो कुछ मत भेद हैं, उनमें से कौनसा युक्ति युक्त है। कोई कहते हैं कि--सृष्टिके प्रथमही ईश्वरने इस सृष्टि के सकल नियमों को स्थिर कर रक्खा था, अनन्त कालतक उस नियममेही सृष्टि का कार्य चलेगा, किसी समयभी उसके प्रतिकूल नहीं होगा जिस प्रकार कोई पुरुष घटिकायन्त्र (घड़ी) बनाता होतो उसकी गति आदिके नियमों को घड़ी बनाने से प्रथमही स्थिर करलेता है और जबतक वह घड़ी नष्ट नहीं होती है तबतक उस पहिले स्थिर करे हुए नियम से चलती रहती है तिसी प्रकार यह विश्वरूपघटिकायन्त्रभी महाप्रलय के समय पर्य्यन्त एक नियम मेही चलेगा। और दूसरे भिन्न मताव-लंबी कहते हैं कि--जड़ जगत् के विषय में वह नियम अखण्ड नीय तोहै परन्तु चैतन्य मय जीवके लिये वह नियम नहीं है चैतन्य मय जीवके लिये साधारणतः एक नियम होनेपर भी अनेकों समयपर ईश्वर को समयानुसार व्यवस्था करनी होती है, नहीं जड़के साथ चैतन्य का कोई भेद नहीं रहै, क्योंकि स्वाधीनताही चैतन्य का लक्षणहै, परन्तु चैतन्यमय जीवकी तिस स्वाधीनता की सीमा है। और कर्मानुसार क्रमसे वह स्वाधीनता कर्माधीन होजाती है इस कारणही अनेकों समय

इच्छा होनेपर भी जीव उस स्वाधीनता वृत्तिको अभिलाषित मार्ग में नहीं चलासक्ता है । जीवकी स्वाधीनता को ससीम न माननेपर जीव पाप पुण्य का भोगने वाला नहीं होसक्ता पाप पुण्यके फलमे जबकि--जीवको सुख दुःखका भागीहोना पड़ता है तब उसको अवश्यही स्वाधीन कहना होगा, नहीं तो जीव के पाप के लिये ईश्वर के ऊपर दोषारोपण होगा। इस कारण जीव ससीम स्वाधीनता युक्त है, अतएव स्वाधीन जीवके नियम--विगर्हित कार्य्यों मे जिस समय जगत्में नाना प्रकार के भौतिक विप्लव होते हैं उसी समय शांति स्थापन करने के लिये ईश्वर को समयानुसार व्यवस्था करनी पड़ती है और इस कारणही समय २ पर अवतार की अवश्यकता होती है, जैसा कि--श्रीमद्भागवत् गीतामें भगवान्का बचनहै।

यदायदाहिधर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानंसृजाम्यहम् ॥

अर्थात् हे भारत ! जिस जिस समय धर्मकी ग्लानि अर्थात् विप्लव और अधर्म का आविर्भाव होता है उसी समय मैं अपनी सृष्टि करता हूं अर्थात् अवतार रूपमे प्रकाशित होता हूं। आस्तिकों में जो सामान्य मत भेद प्रतीत होता है, वास्तव में कोई दोष नहोनेपर भी उल्लिखित दोनों मतोंमें हम अन्तिम मतकोही युक्ति युक्त मानकर विश्वास करते हैं। शास्त्र और युक्तिके द्वारा यही प्रमाणित होता है कि--यह वृहत् ब्रह्माण्ड किसी एक अनन्त शक्ति सम्पन्न परम पुरुष वा परमा प्रकृति

अथवा प्रकृति पुरुषात्मक परब्रह्म की इच्छा और नियम के बदले चलता है।

॥ देवयान ॥

सत्ययुग में इस भारतवर्षके विषैं ऋषि और राजाओंकी अप्रतिहत प्रभुता थी, सनातनधर्म की स्निग्ध और बिमल ज्योति उत्तरोत्तर प्रकाशित होती चलीजाती थी, राजशासन अनार्यों के वक्षस्थल पर दृढ़ता के साथ चरण जमाए हुए था, समाज शासन का पूर्ण पूर्ण गौरव था, तृप्ति और संतोष रूप अमृत की धारासे भारतबासी मात्रका हृदय सीं चाहुआ होने पर भी कोई निरुद्यस्त नहीं था, राजा और प्रजा सबकीही इच्छा भारत की सुख समृद्धि की वृद्धि के लिये थी, सुख और शान्ति के स्थान भारतवर्ष के तिस आदि युग में याज्ञ-बल्क्य, श्वेतकेतु और अष्टावक्र यह तीन ऋषि भगवान् की त्रिमूर्तिकी समान त्रयी (बेद) विद्याके सारको निकालकर ऋषि मण्डली को तृप्त करते थे, उनके जाज्वल्यमान विद्याके प्रकाश के सामने अन्य सकल ऋषि मस्तक नमाए हुए खड़े रहते थे, परन्तु तीन राजे उनके परम प्रति पक्षीरूप से गौरव के साथ मस्तक को ऊंचा करकै मानो स्पर्धा और अवज्ञा से उनका हास्य करते थे, उन तीन परममान्य राजाओंमें पहिले बिदेह राजा जनक, दूसरे पञ्चाल राज प्रवाहण जैवलि और तीसरे काशीराज अजात शत्रु थे, अत्रि, भृगु, वशिष्ठ आदि ऋषि उस समय कर्मकाण्ड की अन्तिम दशाको साधन करकै

धीरे २ ज्ञानकाण्डकी शान्ति और अमृतमय गोदमें प्राप्त होते थे, उस समय सोमयागादि में किसीका अधिक आदर नहीं था, उस समय अनेकों मनमें आध्यात्मिक विचार काही आविर्भाव होता था, सत्ययुग के ज्ञानकी उन्नति के उस सुखमय कालमें कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड के तिस अर्द्धसम्मिलन (आधा मेल होनेके) समय में पञ्चालराज प्रवाहण एक समय निर्जन स्थान में बैठकर जीवकी निर्याण (शरीर को त्यागकर जाने की) अवस्था का चिन्तवन करने लगे, इक्ष्वाकु,ऐलस पुरुरवा आदि परम प्रतापी महाराजे आज कहां हैं ? जिस यज्ञानुष्ठान के लिये महाराजा मिथिको ब्रह्मशापग्रस्त होना पड़ाथा, आज वह तिस यज्ञका किस प्रकार का फल कहां स्थित होकर भोग रहे हैं ? किसके लिये इतने नरमेध अश्वमेध आदि यज्ञ हुए, किस कारण सोम रस का पान हुआ था, और किस कारण इतने हविर्यज्ञ हुए ? दिनके अनन्तर दिन, वर्ष के अनन्तरवर्ष व्यतीत होते चलेगए परन्तु महाराज प्रवाहण की इस शंका का समाधान नहीं हुआ, निराशा से उनके हृदय का अन्धकार मानो और गम्भीर होगया संदेह में पडेहुए महाराजा प्रवाहण एक समय उन्मत्त पुरुष की समान बोल उठे कि-- क्या परलोक नहीं है ? क्या इस संसार मेंही जीवका अन्त होजाता है ? उस क्षणमेंही मानो कोई अदृश्य देवता पञ्चालराजके हृदय की तामसी यवनिका (परदे) को हटागया, उस समय उनके हृदयका एक अज्ञातद्वार खुलगया, जिससे भीतर और बाहर मानो मिलकर एक होगया, उस समय विस्मय

और आनन्द में मग्न महाराज प्रवाहण ने नेत्र मूंद लिये, नेत्र मूंदनेपर उन्होंने जो कुछ देखा उससे उनका विस्मय और आनन्द बढ़कर द्विगुण होगया, उन्होंने देखा कि--अनन्तकाल के मध्य में छायापथ (रात्रिको आकाश में दीखता है) की समान दो मार्ग उत्तर और दक्षिण दो ओर को जा रहे हैं, जो मार्ग उत्तर की ओर को जारहा था राजाने उधर को ही दृष्टि लगाई, देखा कि--विद्याकी विमल विद्युच्छटासे विमान को प्रकाशित करके निर्मल शुभ्रवस्त्र धारण करने वाले शान्त स्वभाव महात्मा पुरुष तिस मार्गमें क्रमसे उत्तर ओरको जारहे हैं, उनके सन्मुख अर्चि और अहर्देवता, उनके ऊपर शुक्लपक्ष और उत्तरायण के अधिष्ठात् देवता, उसके ऊपर देवलोक, देवलोक के ऊपर विद्युत्लोक, उसके ऊपर ब्रह्मलोक, निर्मल अपार्थिव अपूर्व ज्योति पुञ्ज की एक २ राशिकी समान यह सातों लोक बिराजमान हो रहे हैं, भाग्यवान् आत्माओं का समूह क्रम २ से एक २ लोकको अतिक्रमण करके ऊपर को चढ़रहा है, अन्त में ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर अनन्त शान्ति की प्राप्ति से सुखी होरहा है तिस ब्रह्मलोक से भाग्यवानों के आत्माको फिर लौटकर संसार में नहीं आना पड़ता है॥

"यद्गत्वाननिवर्त्तन्ते तद्धामपरमंमम ।"

अर्थात् भगवान् ने गीतामें स्वयं अपने श्रीमुखसे कहा है कि-जिसको प्राप्त होकर प्राणी फिर लौटकर नहीं आते हैं वहही मेरा परमधाम है। जीवित अवस्थामें इस मृत अवस्था

के गूढ़ रहस्यको देखकर पञ्चाल राज प्रवाहण मानो शरीर सहित ब्रह्मलोक को प्राप्त होगये, तथापि कुतूहल देखने की इच्छासे उन्होंने उधरसे दृष्टि हटाकर दूसरी ओर लगाया, और देखा कि–रक्त वस्त्रधारी कितनेही पुरुष तिस मार्गमें चलकर चन्द्रलोक आदि देवलोकों को प्राप्त होरहे हैं, परन्तु कुछ कालके अनन्तर फिर पृथिवीतलको लौटकर आरहे हैं, जिन्होंने किसी समय भी अध्यात्म ज्ञान का परम सुखद आस्वाद नहीं लिया केवल याग यज्ञ और दान पूजा करके ही समय को बिताया था, पूर्णता को प्राप्त न हुई आशा की तृप्तिके लियेही उनकी बार २ आवृत्ति (जन्म मरणरूप आवागमन) होतीहै। यह सब कुतूहल देखकर राजाने जानना चाहा कि–इनदोनों मार्गों का नाम क्या है ? उसीसमय कोई अदृश्य देवता उनके हृदयमें कहगया कि–देवयान और पितृयान, जो मार्ग क्रमसे उत्तरकी ओर को जारहाहै जिसका अन्त ब्रह्मलोकमें है वह देवयान है और जो मार्ग क्रमसे दक्षिण की ओर को जारहा है तथा जो सकल पान्थो (रास्ते गीरों) को फिर पृथिवी पर लौटा देता है वह पितृयान है। सत्ययुगके इस चिरकाल स्मरण करने के योग्य दिन, पञ्चाल राज प्रवाहण जैवलि ने जिस महासत्य को पाया था उसके प्रकाश मे एकसमय सकल भारतवर्ष प्रकाशित होगया था, याज्ञवल्क्य की सदृश विद्वान् भी तिस सत्यको प्रकाशित नहीं करसक्तेथे, आज हजारों वर्षों के अनन्तर अज्ञान और दुर्भाग्यके गाढ़ अन्धकार में निमग्न होकर भी भारत सन्तान

उसकी क्षीण ज्योति का दर्शन कररही है, और उस गौरव मय व्यतीत हुये अतुलनीय प्रकाशकी कल्पना करके वर्त्तमान कालकी यातनाको विस्मरण करना चाहतीहै, राजा प्रवाहण ने जिस अपूर्व तत्वज्ञान को प्राप्त करा था, उसकी श्वेतकेतु की समान पण्डितभी कल्पना करने कोभी समर्थ नहीं हुये, इस कारण वह पञ्चालराज प्रवाहण ब्राह्मणों कोभी शिक्षा देनेवाले हुये, इस विषयमें उपनिषदों में वर्णन कराहुआ श्वेत केतु और प्रवाहण का सम्वाद प्रत्यक्ष प्रमाणहै ॥

"श्वेतकेतुर्हवा आरुणेयः पञ्चालानां परिस दमाजगाम। स आजगाम जैवलिं प्रवाहणं परिचर्यमाणं तमुदीक्ष्याभ्युवाद कुमार इति, सभोइतिप्रतिशुश्रावानु शिष्टोऽन्वसिपित्रेत्यो मितिहोवाच" ॥

आरुणिनन्दन श्वेतकेतु सकल विद्याओं की पारदर्शिता को प्राप्त होकर अपने यशको फैलाने की इच्छासे पिताकी आज्ञाके अनुसार पञ्चालराज प्रवाहण की सभामें आये, तहाँ राजाकी सभाके विद्वानों को परास्त करके राजाको परास्त करने की इच्छासे राजाके समीप गये, पंचालराज प्रवाहण जैवलि श्वेतकेतु के ज्ञानगर्व की वार्त्ता पहिलेही सुनचुके थे, इससमय इस ब्राह्मण कुमारका दर्पदूर करना होगा, मन २ में ही ऐसा विचारकर श्वेतकेतु को देखतेही अनादर के साथ हेकुमार ! कहकर कहने लगे कि–तुमने पितासे समस्त विद्या

सीखी है ? उ० हां सीखीहै । श्वेतकेतु के इस गर्वीले वचन को सुनकर राजाने कहा कि–"वेत्थ यथेमाः प्रजाः प्रयत्यो विप्रति यथन्ता इति" अर्थात् यह सकल प्रजा मरणके अनन्तर जिसप्रकार जहां जातीहै, सो तुम जानते हो ? "नेतिहोवाच" श्वेतकेतु ने उत्तरदिया कि नहीं मैं नहीं जानता हूं । "वेत्थो यथेमं लोकं पुनरायद्यन्ताइति" फिर राजाने कहा कि–वह प्रजा इसलोक में जिस प्रकार फिर लौटकर आती है सो तुम जानते हो ? "नेति होवाच" श्वेतकेतुने उत्तरदिया कि--नहीं मैं यहभी नहीं जानता । "वेत्थो यथासौ लोक एवं बहुभिः पुनः पुनः प्रयद्भिर्न सम्पूर्यता इति" फिर राजाने कहा कि नित्य कितने प्राणी मरते हैं तथापि वह लोक क्यों परिपूर्ण नहीं होता है सो तुम जानते हो ? "नेतिहोवाच" श्वेतकेतुने कहा कि--मैं यहभी नहीं जानता । "वेत्थो देवयानस्यवा पथः प्रतिपदं पितृयानस्यवा, यत्कृत्वा देवयानंवा पन्थानं प्रतिपद्यन्ते पितृयानंवा" राजाने फिर प्रश्न करा कि--लोकमें कैसा कर्म करने से देवयान मार्गमें और कैसा कर्म करनेसे पितृयान मार्गमें जाना होता है सोतुम जानतेहो ? "नाह मत एकंचन वेदेति होवाच" श्वेतकेतुने कहा कि–इन विषयों मेंसे मैं कोईभी नहीं जानता । श्वेतकेतुका गर्वोन्नत मस्तक नीचा होगया, उनके पिताने उनको सब विद्याओं का पारंगम कर दियाथा, इससमय यह नवीन विद्या कहांसे आगई ? तदनन्तर पंचालराजने पाद्य अर्घ्य आदिसे श्वेतकेतु का पूजन करा परन्तु श्वेतकेतु उस पूजन का अनादर करके हृदयमें दुःखित

होतेहुबे पिताके समीप जाकर कहने लगे कि--"वावकिलनो भवान् पुरानुशिष्टानवोच इति" हे पितः! हमारे समावर्त्तनके समयमें आपने तो कहाथा तुझको सब विद्या प्राप्त होगई॥ पुत्रको अभिमानके साथ लम्बी २ श्वासें लेतेहुये देखकर और इस क्रोधमे भरेहुये वाक्यको सुनकर आरुणिने कहा॥ "कथं सुमेध इति" हे सुबुद्धि पुत्र! तुमसे किसने क्या कहा है? तुमको यह दुःख किस कारण होरहाहै? पिताके इस कथन को सुनकर श्वेतकेतु ने आद्योपान्त वृत्तान्त कहकर, राजा के पाँचों प्रश्न कह सुनाये, और उसने मनमें विचारा कि--पिता ने मुझे उस गूढ़ अध्यात्म तत्वकी शिक्षा नहीं दीहै,आरुणि उन पाचों प्रश्नोंका विषय नहीं जानतेहैं, इसका उस बालक सुकुमार के हृदय में निश्चय नहीं हुआ, परन्तु जिस समय उसके पिताने कहा कि--"यदहं किञ्चवेद सर्वं महं ततुभ्यमवोचम्" हे पुत्र! मैं जो कुछ जानता था वह सब तुमको सिखा दिया, नहीं तौ तुमसे अधिक प्रिय मुझे दूसरा और कौन है? जिसके लिये मैं उस तत्वको छिपाकर रखता, इसप्रकार कहकर महर्षि आरुणि पंचालराज प्रवाहण जैबलिके समीप गये, और उनकेही अनुग्रहसे उस परम आध्यात्मिक तत्वको पाया, "तेय एवमेत द्विदुर्येचामी अरण्ये श्रद्धां सत्य मुपासते तेऽर्चिरभिसंभवंत्यर्चिषोऽहरन्ह आपूर्यमाण पक्षमा पूर्यमाण पक्षा द्यान् षण्मासानुदङ्ङादित्य एति, मासेभ्यो देवलोकं, देवलोकादादित्यम्,आदित्यात् वैद्युतम्,तान् वैद्युतान् पुरुषोऽमानस एत्य ब्रह्मलोकान् गमयति, तेतेषु ब्रह्मलोकेषु पराः परावतो

वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः" ॥ अर्थात् पहिले श्रद्धाके साथ पञ्चाग्निका विषय कहकर राजा कहते हैं कि–जो वानप्रस्थ आदि आश्रमों को धारण करके भक्ति और श्रद्धाके साथ हिरण्यगर्भ ब्रह्मकी उपासना करतेहैं, वह स्थूल शरीरको त्यागने के अनन्तर पहिले अर्चिनामक देवताओं के सन्मुख प्राप्त होतेहैं, फिर तहांसे अहर्नामक देवताओं के समीप जाते हैं, फिर अहर्देवता उनको शुक्लपक्षके अभिमानी देवताओं के पास पहुँचा देतेहैं, फिर शुक्लपक्षाभिमानी देवता उसको लेजाकर सूर्यकी उत्तरायण गतिके अधिष्ठातृ देवताओंके पास पहुँचा देतेहैं वह षण्मास देवता उसको देवलोकमें पहुँचातेहैं, देवलोक से आदित्यलोक और तहां से वह विद्युत् लोक में गमन करते हैं, विद्युत् लोकमें पहुँचनेपर परब्रह्म लोकवासी अमानव पुरुष आकर, उसको तिस अक्षय अव्यय ब्रह्मलोक को लेजातेहैं, तहां रहकर क्रमसे अधिक २ उन्नति को प्राप्त होतेहैं और अनेक कल्पान्तकाल निवास करतेहैं ब्रह्मलोकसे फिर उनको लौटना नहीं पड़ताहै, और जन्म मरणादि का क्लेश नहीं भोगना पड़ताहै, इसमार्ग काही नाम देवयान है। परन्तु जो पुरुष केवल यज्ञादि करतेहुये ही समयको व्यतीत करतेहैं और अध्यात्म विद्याका अभ्यास नहीं करतेहैं, सत्य स्वरूप परब्रह्म के विषय का ज्ञान प्राप्त करने को भी समर्थ नहीं होतेहैं, वह इस मार्गमें जाने को समर्थ नहीं होतेहैं उनके लिये दूसरा मार्गहै, जिसका ऊपर "पितृयान" नामसे वर्णन करचुके हैं ॥

॥ उपासना ॥

थोडे काल मे प्रचलित हुये नवीन संप्रदायके बहुतसे पुरुष देवोपासना के माहात्म्य और अवश्य कर्त्तव्यता को स्वीकार नहीं करते हैं, परन्तु उपासना के विना मनुष्य में मनुष्यत्व नहीं रहसक्ता, अतः यह अत्यन्त प्रयोजनीय विषयहै। उपासना किसको कहते हैं,—यह विना जाने उपासना का कुछ प्रयोजन है या नहीं, इसका निश्चय नहीं हो सक्ता, इसलिये सबसे प्रथम उपासना का वास्तविक तात्पर्य जानना आवश्यकहै, जो पुरुष भक्तिके वशीभूत होकर एकाग्रताके साथ किसी विषयकी आराधना करताहै उसको उस विषयका उपासक कहते हैं, हमारे शास्त्रमें उपासना दो प्रकार की कही है, एक निर्गुण और दूसरी सगुण। वास्तव में निर्गुण उपासना उपासना नहीं है किन्तु उसको अव्यक्त साधन वा ज्ञान निष्ठ संन्यास कहते हैं, सगुण उपासना ही उपासनापद वाच्य है गुणतीन हैं सत्वरज और तम, सत्वगुण का अर्थ ज्ञानानन्द विकाशिनी शक्ति, रजोगुणका अर्थ प्रकृति और क्रिया द्दीपनी शक्ति है और तमोगुण का अर्थ आवरण शक्ति है, अतएव ज्ञानकी उपासना का नाम सात्विक उपासना है, यह सात्विक उपासना भी दो प्रकार कीहै, अध्यात्मिक तत्वज्ञान की प्राप्ति के निमित्त और वैषयिक तत्वज्ञान की प्राप्ति के निमित्त परन्तु यह भिन्न २ होनेपर भी हैं दोनों सात्विकही, इस सात्विक उपासना के द्वाराही कपिल, पत-

अलि, व्यास, गोतम्, कणाद, जैमिनि, वराह मिहिराचार्य आदि दर्शन, विज्ञान और ज्योतिष आदिकी उन्नति तथा वस्तुके तत्वका निर्णय करगए हैं। अभ्यन्तरीण राजसिक उपासना के दृष्टान्तस्वरूप रघु, अर्जुन आदि होगए। अभ्यन्तरीण तामसिक उपासना के दृष्टान्तरूप दुर्योधन-कंस आदि होगए। अर्थात् एक २ विषयकी अभीष्ट सिद्धिके लिये यत्न, चेष्टा चिन्ता और एकाग्रताके द्वारा एक २ शक्ति वा दृत्तिकी जो सकाम उपासना करीजाती है वहही आभ्यन्तरीणसकाम उपासना है। हमारे परमसिद्धि ध्रुव उपासकोंमें सर्वोपरि दृष्टान्तरूप होगए। उपासना का मूल-भक्ति और विश्वास है उपरोक्त उपासनाही मानसोपासना वा स्वभाव-शक्ति का अनुशीलनरूप प्राकृतिक उपासना है। अभ्यन्तरीण (भीतरी) और वाहर (वाहिरी) पदार्थ शक्तिसे जगत् के संपूर्ण कार्य सम्पन्न होते हैं, सकल शक्तियों की वाहर आराधना करनेमें मनुष्य की स्वयंही प्रवृत्ति होती है, तिसमें मनकी एकाग्रता की वृद्धि, भक्ति और विश्वास आदि की उत्पत्ति होती है. वाहर आराधना काभी बहुत देरी से प्राप्त होनेवाला फल-शक्तिकी वृद्धि और इच्छितकार्य की सिद्धिहै, परन्तु शक्ति वास्तव में कोई दृश्य (दीखने वाला) पदार्थ नहीं है, उस शक्तिके गुणके अनुसार कल्पना करीहुई मूर्ति के विना वाहर उपासना कदापि नहीं होसक्ती अतः विशेष करके साधरण पुरुषों की भक्ति बढ़ाने के लिये इनसब शक्तियों के गुणोंके अनुसार साकार देवमूर्तियों की कल्पना करना और उनसब

का पूजन करना अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्यकी प्रीति भक्ति विश्वास, आसक्ति और कामना से एकाग्रता उत्पन्न होतीहै तिस एकाग्रता के द्वारा अध्यवसाय, यत्न और चेष्टासे अभीष्ट फलकी प्राप्ती होती है, बाहिरी शोभा आदिके बिना साधारण पुरुषों के प्रथम तौ भक्ति और विश्वास की उत्पत्ति नहीं होसक्ती और मन आकर्षित वा मनकी एकाग्रता भी नहीं होसक्ती, पुराण आदि दूर रहैं, मूल भगवद्गीता मेंभी उपासना की बहुत कुछ प्रशंसा करीहै, परन्तु गीताकार ने केवल साधरण पुरुषों के विश्वास और भक्तिके निमित्तही उसकी आवश्यकता कही है, वास्तव में देवोपासना में एक प्रकारकी शक्तिहै, वह अमूलक नहीं है, यद्यपि कालक्रमसे इसके द्वारा नानाप्रकारके अमूलक विश्वास उत्पन्न होकर वहशक्ति मलिन अवस्था को प्राप्त होगई है परन्तु इस दशा मेंभी देवोपासना में उस शक्तिकी वास्तविक ज्योति पाई जाती है। देवोपासना के बाह्य और आभ्यन्तरीण दो प्रकार हैं। प्रथम तौ बाह्य उपासना से मनुष्यका चित्त आकर्षित होताहै। मनुष्य सर्वदा संसारिक सुख दुःख क्लेश और यन्त्रणाओं के वशीभूत रहता है, मनुष्य सर्बदाही शोकसे सन्तप्त, तथा दुःख और क्लेश के भोगसे मलिन चित्त होकर मार्ग भूलेहुए पथिक (बटोही) की समान अन्ध तमोमय कण्टकयुक्त मार्गमें निरन्तर भ्रमता रहता है, और यह मनुष्य तृष्णाओं से, मरुभूमि के विषैं पिपासित तथा धूपसे तपते हुए पथिक की समान उन्मत्त होकर जल ढूंढ़ने के लिये इधर उधर को दौड़कर खड़ा रहजाता है परन्तु

जलकहीं नहीं मिलता है, ऐसी दशा में मनुष्य यदि कुछ कालके लिये भी शीतल वृक्षकी छायाके नीचे स्वच्छ स्थान पाजाय तो उसकी तृष्णा (पिपासा) की कुछ एक शान्ति और दारुण परिश्रम दूर होजाता है। देवपूजन की, पुष्पगन्ध समर्पण आदि बाहरी कर्तव्यता से मनस्वयंही आकर्षित होता है, पुष्पचन्दन धूपदीप आदि सामग्री तथास्नान वन्दना और मंत्रोच्चारण आदि से मन पवित्र और भक्ति भावसे युक्त होता है तथा निमंत्रित और अभ्यागतों के आदर, आह्वान भोजन एवं दान आदि सत् क्रियाओं के करने से मन प्रफुल्लित होता है, उस समय मनुष्य कुछकाल के लिये संसारिक यन्त्रणाओं को भूल जाता है, इन सब सत् अनुष्ठानों का देरमे होनेवाला फल, मनुष्य की नैतिक उन्नति भीहै, अब विचारना चाहिये क्या देवमूर्तियों को पुष्प चन्दनादि समर्पण करना निरर्थक है ? इसके सिवाय देवपूजन का आभ्यन्तरीण (भीतरी) और एकस्तर (दरजा) है इस भीतरी देवपूजन में गूढ़ दार्शनिक तत्व, वैज्ञानिक तत्व और परम सत्य स्थित है, जिसका वर्णन करना मुझ सरीखे क्षुद्र मनुष्य की बुद्धि से बाहर है, उस देवपूजन के विषैं स्थित सत्यकी ज्योति जो बाहर होती है वह अवश्यही सत्य है। इस तत्व को अपनी शक्ति अनुसार समझाने के लिये दो एक दृष्टान्तों की अवश्यकता है— अनेकों पुरुषों को विदितहै कि-परम पीड़ाको प्राप्तहुए असाध्य रोगी अनन्योपाय होकर एकाग्र चित्तसे तारकनाथ वा वैद्यनाथ आदि प्रसिद्ध देव मन्दिरों में मरणका निश्चय करकै स्वप्न

में उचित औषधि वा रोगके दूरहोने के उपाय को प्राप्त होगये हैं, इसके सिवाय इष्टदेव की सच्चीभक्ति से कोई २ अपने घरमें ही ऐसी औषधि को प्राप्त होगए हैं। इस बिषय की परीक्षा के लिये एकाग्रता, भक्ति और बिश्वास की आवश्य कता है। किसी पुरुष के कठोरबचनकहनेपर हम क्रोधयुक्त और मधुर बचन कहनेपर प्रसन्न क्यों होते हैं ? इसका वास्तव में कारण क्याहै ? किसीने निश्चिय कराहै ? वाक्य एकशब्द मात्र है, और यह शब्द–आकाश के परमाणुओं के कंपन से जो एक प्रवाह उत्पन्न होता है वह बायु से चलायमान होकर हमारी कर्णेन्द्रिय के द्वारा मस्तिष्क में पहुंचता है, उस समय किसी अव्यक्त शक्ति के प्रभावसे एक अन्य शक्तिका प्रकाश होकर, हमारे सूक्ष्म मनकी किसी वृत्तिके साथ उस शब्द के गुणकी अनुकूलता वा प्रतिकूलता होनेसे एक अव्यक्त शक्ति की उतेजना होती है और फिर वह बाहर प्रकाशित होतीहै वहही हमारा सन्तोष वा क्रोध है। इस प्रकार हमारे सब व्यापार बाहिरी और भीतरी एक २ शक्तिका प्रकाश और बिकार मात्र हैं। क्लेश–मनकी एक वृत्ति वा अवस्था है, वह भी स्थूल सूक्ष्म दो प्रकार की है, सूक्ष्म और स्थूल भूतों में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्धहै, जिस प्रकार शब्द और बाहरविषय वा क्रिया की सूक्ष्म शक्ति के साथ मनकी वृत्तिके संयोगसे एक अन्य शक्ति की उत्तेजना होकर मनके शोक, दुःख, क्रोध, भय आदि एक--एक प्रकार के अनुभव से मनुष्य की अवस्था बदल जाती है तिसी प्रकार शरीर के स्थूल भूतोंका

अभाव और असामञ्जस्य होनेके कारण शरीर की विकृत अवस्था होती है उस विकृत अवस्था के द्वारा एक मनुष्य जीवन के प्रतिकूल शक्ति प्रकाशित होती है उस प्रतिकूल शक्ति के साथ सूक्ष्म मनकी वृत्तिके संयोग से एक प्रकारका भयंकर क्लेश उत्पन्न होता है। जिस समय प्रतिकूल शक्तिके द्वारा मन--बुद्धि आदि अन्तःकरण सहित जीवात्मा अत्यन्त आक्रान्त होता है उस समय असह्य यंत्रणा से स्थूल और सूक्ष्म शरीर में परस्पर विरोध होता है, इसकाही नाम मृत्यु है परन्तु इस स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर का वियोग न होय इसलिये प्रतिकूल शक्तिके साथ अनुकूल शक्तिका घोरसंग्राम होता है, उस दशामें आभ्यन्तरीण (भीतरी) अनुकूल शक्ति, बाहर जगत् की स्वजातीय स्थूल वा सूक्ष्म किसी शक्ति की अनुकूलता प्राप्त होनेपर (अर्थात् ग्रहादि के सुप्रसन्न होनेपर) इस अनुकूल शक्ति की क्रियाओं का स्रोता अत्यन्त वेग से प्रवाहित होने लगताहै उससमय रोगसे मुक्त होनेकी आसक्ति और वासना होती है तथा उसके लिये किसी देवता में दृढ़ भक्ति, एकाग्रता, तन्मय रूपसे चिन्तवन, धारणा और ध्यान आदि के द्वारा जीवात्मा की एक प्रकार की अनुकूल ज्ञान शक्तिका उदय होताहै, तिससे स्वप्नके मिष (बहाने) करके औषधि वा अन्य किसी प्रकार के उपाय की प्राप्ति होती है और अनुकूल सूक्ष्म शक्ति की जय होती है, फिर उस प्राप्त हुए औषधादि उपाय के साथ भक्ति और एकाग्रता आदिके मिलनेसे जो भौतिक शक्ति प्रकट होतीहै उसके द्वारा शरीर

के स्थूलभूत का अभाव और असामञ्जस्य दूर होकर साम-ञ्जस्य, रक्षा और निरोगता होती है। स्थूल और सूक्ष्म भूतों के संयोग और वियोगका व्यापार जिस नियमके आधीन है, सूक्ष्म भूतोंके परस्पर अनुकूल और प्रतिकूल संयोगका व्यापार भी उसही एक नियमके आधीन है अतएव भक्ति, विश्वास, एकाग्रता और तन्मय चिन्तवन आदि अनुकूल शक्तिके द्वारा मनुष्यको इच्छित फलकी प्राप्ति होतीहै। भगवद्गीता कारने भी इस विषय को पूर्णरीति से पुष्ट करा है॥

"येयथामांप्रपद्यन्ते तांस्तथैवभजाम्यहम्।
ममवर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याःपार्थसर्वशः॥
कांक्षन्तःकर्मणांसिद्धिं यजन्तइहदेवताः।
क्षिप्रंहिमानुषेलोके सिद्धिर्भवतिकर्मजाः॥

४ र्थ अध्याय ११ श और १२ श श्लोक

"योयोयांयांतनुंभक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्यातस्याचलांश्रद्धां तामेवविदधाम्यहम्॥
सतयाश्रद्धयायुक्त स्तस्याराधनमीहते।
लभतेचततःकामान् मयैवविहितान्हितान्"॥

७ म अध्याय २१। २२ श्लोक

अर्थात्—भगवान् कहते हैं कि–हे पार्थ? जो जिस भावनासे मेरी (ईश्वरकी) उपासना करताहै, मैं उसकेऊपर उसी भाव से अनुग्रह करता हूँ, कर्माधिकारी मनुष्य नाना प्रकारसे पूजन करते हैं परन्तु सर्वथा एक मेरा (ईश्वर का) ही

अनुसरण करतेहैं ॥११॥ इस लोकमें कर्मका फल शीघ्रही प्राप्त होनेके लिये सकाम पुरुष इन्द्रादि देवताओं का पूजन करतेहैं ॥१२॥ वह सकाम भक्तपुरुष श्रद्धायुक्त होकर जिस देव मूर्त्तिका पूजन करतेहैं, मैं (ईश्वर) उनकी संकल्पके अनुसार कामना को पूर्ण करताहूँ ॥२२॥ जो २ पुरुष भक्ति युक्त होकर जिस २ देव मूर्त्तिमें श्रद्धालु होकर पूजन करने में प्रवृत्त होताहै मैं (ईश्वर) भी अन्तर्यामी रूपसे उस २ पुरुष की भक्ति तिस २ मूर्त्तिमें दृढ़ करदेताहूँ ॥२१॥ इस कथनका तात्पर्य यह है कि–जो पुरुष एकाग्र और तन्मय होकर जिस किसी विषयकी कामना करताहै उस कामनासे उसकी अनुकूल शक्ति उत्पन्न होकर सब कामनाओं को पूर्ण करदेताहै। मनुष्य जिस शक्तिकी उपासना करताहै अर्थात् जिस२विषय की साधना करताहै उसमें क्रमसे उसकी आसक्ति और प्राप्ति उत्पन्न होती है, उस समय तिस विषय में एकाग्र चित्त और तन्मयता होने से उत्पन्न हुई आध्यात्मिका सूक्ष्म अनुकूल शक्तिके प्रभाव से मनोरथ सफल होजाता है। यह आसक्ति प्रीति–विश्वास, चुम्बक पत्थरकी शक्तिकी समान एकसूक्ष्म आध्यात्मिक आकर्षिणी शक्तिरूप है। यह आकर्षिणी वा अनुकूल और प्रतिकूल शक्ति आत्मा की एक २ अवस्था वा शक्ति विशेष है, यह उस मूलभूत अनन्त शक्तिकाही प्रकाश वा विकार मात्र है, इसकारण चाहें जिस शक्तिकी उपासना करो उससे अनन्त शक्तिकी ही उपासना होतीहै और उस अनन्त शक्तिसे ही भक्ति, प्रीति, निश्चय आदि अनु-

कूल शक्ति वा उसके विपरीत प्रतिकूल शक्ति उत्पन्न होती है। अतएव देवाराधना के द्वारा भक्ति और एकाग्रता आदि की उत्पत्ति होतीहै, उसके द्वारा मनुष्यकी कामना सिद्ध होतीहै और यहही देवाराधना का दूसरा प्रकार है॥

॥ कर्मफल ॥

कर्मफल! कर्मफल!! कर्मफल!!! प्रत्येक पुरुषके मुखसे यह बात सुनने में आती है परन्तु इसके स्वरूप को कोई नहीं जानता कि-कर्मफल क्या वस्तुहै, तथा प्रत्येक शास्त्रमें, प्रत्येक पुराणमें कर्मफल कोही श्रेष्ठ माना है, महा मनस्वी परम प्रसिद्ध भिल्हण मिश्र अपने जगद्विख्यात शान्ति शतकके प्रथम श्लोकमें कहतेहैं।।

" नमस्यामोदेवान्ननुहतविधेस्तेऽपिवशगाः।
विधिर्वन्द्यःसोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः॥
फलंकर्मायत्तं किममरगणैः किंचविधिना।
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपिनयेभ्यःप्रभवति"॥

अर्थात्—जिन देवताओं को हम नमस्कार करतेहैं वहभी विधिके वशीभूत हैं अतः विधिको नमस्कार करने योग्य मानना चाहिये परन्तु वहभी कर्मों के अनुसारही फल देसक्ता है और वह फल कर्मों के आधीनहै अतः देवता और विधि को प्रणाम करने से क्या है? उन कर्मों कोही नमस्कार है, विधिभी जिनको वशमें नहीं करसक्ता है। अब विचारना चाहिये कि-कर्मफल क्या पदार्थ है? कर्मफल को जानने का यत्न करनेपर पूर्व जन्मको अवश्यही मानना पड़ेगा, अंग्रेजी

विद्याके शिक्षित कालेजमें चक्कर लगानेवाले महाशय पूर्वजन्म को स्वीकार नहीं करतेहैं, वह कहतेहैं कि–जिसप्रकार पृथ्वी पर आयेहैं उसीप्रकार पृथ्वीपरही मरणको प्राप्त होकर लीन होजायँगे, परजन्म और पूर्व जन्मके मानने की कोई आवश्यकता नहीं है, ईश्वरने सृष्टि रचीहै और उनकीही इच्छासे लय होगा यह वार्त्ता अवश्यही स्वीकार करनी होगी, भगवान्ने इस आसमुद्र भूमण्डल और इसके ऊपर निवास करने वाले असंख्य प्राणियों को रचाहै, इसमें किसीप्रकार का संदेह नहीं है, और उन भगवान् कीही इच्छासे सकलप्राणी लयको प्राप्त होतेहैं, और होंगे, इसमें भी कोई सन्देह नहीं है, परन्तु भगवान् के अंशरूप प्रत्येक देहधारी जीवके देहमें सूक्ष्म आत्मा विराजमान है, उस आत्मा कोही ज्ञानियों ने अविनाशी मानाहै, पञ्चभूतात्मक स्थूल शरीर समयपर निधन (अन्तकाल) को प्राप्त होता है परन्तु आत्मा कदापि नाश नहीं होताहै, स्थूल शरीरके नाश होनेके साथ अतिसूक्ष्म व्यापक नित्य वस्तु (आत्मा) के किंचिन्मात्र अंशकोभी हानि नहीं पहुँचतीहै, भगवान् का वचनहै कि ॥

"अविनाशितु तद्विद्धि येनसर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य नकश्चित्कर्तुमर्हति" ॥

आत्मा अविनाशीहै, जबतक यह आत्मा लिस परमात्म में लीन नहीं होगा तबतक इसको वारम्वार जन्म और मरण का दुःख सहना होगा, जीवात्मा जीर्ण शरीरसे पृथक् होकर

और एक नवीन शरीरमें प्रवेश करताहै, भगवान् का वचनहै

"वासांसिजीर्णानि यथाविहाय नवानिगृह्णातिनरोऽपराणि । तथाशरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानिसंयातिनवानिदेही" ॥

मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर जिसप्रकार नवीन वस्त्र धारण करताहै तिसी प्रकार जीवात्मा जीर्ण शरीरको त्याग करकै नवीन शरीर में प्रवेश करता है, बारम्बार जन्म और मृत्युकी यन्त्रणाओं के द्वारा जिस समय पर्यन्त आत्मा परिशोधित नहीं होयगा तबतक उसको जन्म धारण करना पड़ैगा, परमात्माके साथ जीवात्मा के मिलने का नाम मुक्ति है, प्रत्येक जीवात्मा इस मुक्तिको चाहता है, परन्तु विना पाप क्षय हुये इस मुक्तिका मिलना असम्भव है, तिसही पाप क्षय का प्रायश्चित्त करने के लिये आत्मा, अति कठोर जन्म और मृत्युके दुःखको बारम्बारस हताहै बौद्धोंका "ललित विस्तार" नामक ग्रन्थ देखने से मालूम होता है कि-बुद्ध देवने ५०६ बार नानाप्रकार के शरीर धारण करने के अनन्तर अन्त में बुद्ध जन्म को ग्रहण करा था, वह साधारण कीट से लेकर देव योनि पर्यन्तमें गये । चन्द्रवंशीय महाराजा नहुष अंतमें इन्द्र पदको प्राप्त हुये, योगोपनिषद् को देखनेसे मालूम होताहै कि भगवान् शुकदेव नानाप्रकार के गर्भों में जन्मधारण करके अन्तमें मुक्ति को प्राप्त हुयेथे, जब पृथिवीके यावन्मात्र प्राणियों के जीवात्माओं में परमात्म सूक्ष्म रूपसे विराजमान

है तौ फिर एक देहमें अन्य अवस्थामे और द्वितीय शरीरमें अन्य अवस्थामे जीवात्मा निवास करताहै ? परम भाग्यशाली राजाको परमेश्वरने जिस उपादान मे रचाहै अन्य अतिदीन दुःखी कोभी उसी उपादानसे रचा है, फिर वह राजा क्यों प्रतिदिन करोड़ों पुरुषों मे सेवा किया जाताहै ? और दूसरा वह दीन दुःखी किस कारणसे एक मुट्ठी अन्नके लिये द्वार२ भिक्षा मांगता फिरता है ? भगवान् निष्पक्षपात हैं, चक्रवर्ती राजामे वह जिसप्रकार स्नेह करते हैं उसीप्रकार दीन दुःखी दरिद्र पुरुषसे भी वह स्नेह करतेहैं, फिर सुख और दुःखके प्राप्त होने का कारण क्या है ? कारण वही कर्मफलहै । मनुष्य जन्म अति दुर्लभहै, क्योंकि इस जन्ममें ही आत्माकी उन्नति के द्वारा सद्गति का मार्ग प्राप्त होता है, अन्य प्राणियों की समान आहार, भय, निद्रा आदि स्वाभाविक वृत्तियों को मनुष्यके हृदयमें विद्यमान होनेपर भी यह अन्य प्राणियों की अपेक्षा श्रेष्ठ है, क्योंकि भगवान् ने हमको बिवेक और बुद्धि शक्ति दीहै, तिस विवेक और बुद्धि शक्तिके द्वारा चलायमान होकर हम पुण्य और पापका संचय करते हैं, जगत्पिता परमेश्वरने परीक्षा के निमित्त हमारे समीप दो मार्ग खोल दियेहैं उनमें एक पाप और दूसरा पुण्यहै, हम अपनी इच्छा के अनुसार चाहे जिस मार्गमें प्रवेश करकै पाप अथवा पुण्य का सञ्चय करते हैं यहही मनुष्य का कर्मफल है । प्रत्येक जीवात्मा को कर्मके अनुसार फल भोगना होगा, कोई चक्रवर्ती राजा होकर संसारमें सवप्रकारके सुखों को भोगता है

और कोई फटे-पुराने वस्त्र पहिनकर मध्याह्न कालके प्रचण्ड सूर्यकी धूपमें जलता हुआ मुट्ठीभर अन्नके लिये चारोंओर मारा २ फिरता है, इसका कारण वही कर्मफल है, जिस प्रकार पुण्य कार्यों से आत्मा की उन्नति होतीहै तिसीप्रकार पाप कार्य्यों के द्वारा अत्यन्त अधोगति होतीहै, कर्मफल सेही महाराजा नहुष ने इन्द्र पद पाया और फिर कर्मफल सेही अजगर का शरीर पाया, ॥

"धर्मेणगमनमूर्ध्वंगमनमधस्ताद्भवत्यधर्मेण"

अर्थात् इस जीवन कालमें धर्माचरण करने से परलोकमें सद्गति की प्राप्ति होतीहै और अधर्माचरण करने से अधोगति की प्राप्ति होती है। जगत्पिता परमेश्वर के पवित्र नियमोंका पालन करने से धर्मोपार्जन और उन नियमों का पालन न करने से पाप संचय होताहै। तिस पुण्य और पापके फलको आत्माही भोगता है, जीवात्माको शुद्धि होनेके लिये बारंबार जन्म धारण करना पड़ता है। गीतामें भगवान् ने कहाहै कि कर्मही कारण है, कर्मके अनुसारही आत्मा सद्गति और असद्गति को प्राप्त होता है, मनुष्य जन्म धारण करकै कर्म अवश्यही करना पड़ता है, जिस कर्मसे अपना और जगत् का मंगल होता है वहही वास्तविक कर्म है और उसंसेही जीवात्मा जीर्ण शरीरको त्यागकर जितनी बार नवीन शरीर धारण करैगा छाया की समान कर्मफल उसके पीछे गमन करैगा, अतएव भक्त श्रेष्ठ महात्मा शिह्लण मिश्रने कहा है ॥

आकाशमुत्पततु गच्छतुवादिगन्त मम्भो निर्धिविशतु तिष्ठतुवा यथेष्टम् । जन्मान्तरार्जित-शुभाशुभ-कृन्नराणांछायेवनत्यजतिकर्म फलानुवन्धि ॥

संसारमें देखते हैं कि—अनेकों पुरुष नानाप्रकार के पाप कर्म करते हैं और धन सम्पदाओं को अर्जन करते हुये पुत्र पौत्रादि के साथ सुखसे कालको टालते हैं और नही कोई परम धर्मात्मा पुरुष नानाप्रकार के आर्थिक शारीरिक और मानसिक कष्टों को भोगते हैं, जरा चित्तको सावधान करकै विचार करने से मालूम करसक्ते हो कि इस रहस्य के भीतर कर्मफल रक्खा हुआहै, जो इस समय अनेकों पाप कर्म करते हुवे सुख भोगते हैं उनके पूर्वजन्म का कर्म अवश्यही श्रेष्ठ था और जो धार्मिक होकर भी अनेकों क्लेश भोगतेहैं उनके पूर्व जन्मका कर्मफल अवश्यही निकृष्ट था, परन्तु इस समय का कर्मफल इस समय भोग न होनेपर भी परकाल में निःसदेह भोगना होगा । कर्मफल के भोगके द्वारा आत्माकी उन्नति होनेपरही मुक्तिके मार्ग की प्राप्ति होतीहै, परन्तु वह आत्मा की उन्नति एक जन्ममें नहीं होतीहै, अनेकों जन्मों में बहुत कुछ तपस्याके फलसे आत्मा की उन्नति होतीहै अतः प्रत्येक प्राणीको शुभाचरण करना चाहिये ॥

॥ मनुष्य शरीर ॥

इस मृत्युलोक को शास्त्रकारों ने कर्मभूमि कहाहै । स्वर्गमें

देवता रहते हैं पर वह कर्म भूमि नहीं। इसका अर्थ यह है कि देवता ऐसा कोई काम नहीं कर सकते जिसके फलमें मोक्ष या मुक्ति उनको मिले। स्वर्गवास के बाद फिर मृत्यु लोकमें जन्म लेकर ब्राह्मण की देह में विशेष विशेष कर्मों के द्वारा विना ज्ञान लाभ मोक्षका दूसरा उपाय नहीं है। मोक्ष और मुक्ति दोनों एकही बातहै। अपने कर्मके फलसे जीवको बार २ जन्म ग्रहण करना पड़ता है। कर्महीके फलमे जीव कभी स्वर्ग कभी नरकमें जाताहै फिर पृथिवीपर कभी मनुष्य देहमें, कभी पक्षी, कभी कीड़ा, कभी पतंग, कभी वृक्ष या पत्थर रूपसे अपने किये हुये कर्मों का फल भोगता रहता है, किसी तरह इससे पार नहीं होसक्ता, यही दशा प्रायः जीवों की है इसीको बन्धन की अवस्था कहते हैं, इस बन्धन से छूट जाने से जीव मुक्त होता है, तब नतो वह कर्म कर-सकता है, न कर्मका फल पाता है, न भोग होता है—कुछभी नहीं होता। स्वर्ग या नरकमें कर्म नहीं होता, केवल भोग होता है। फिर मृत्युलोक में भी मनुष्य देह छोड़ और सब देहमें भोगी होता है, कर्म नहीं होता। यही मनुष्यही की देह कर्म करने की देह है इसीलिये शास्त्रकारों ने मनुष्य जन्म को दुर्लभ जन्म कहाहै क्योंकि इस जन्मको लाभ करके जीव स्वर्गलाभ का उपाय करसकता है यहांतक कि ज्ञान लाभ करके मुक्त भी होसकता है पर मुक्ति लाभ के लिये जो कर्म करना चाहिये उसके करने का सब को अधिकार नहीं है केवल ब्राह्मणही को है इसलिये दुर्लभ मानव जन्ममें ब्राह्मण

देह और भी दुर्लभ बतलाई गई है। यह बात नहीं समझ लेनी चाहिये कि मनुष्यकी देह केवल कर्महो करने की है मृत्युलोक केवल कर्म भूमिही नहीं है। स्वर्ग आदि लोकमें जैसा भोग होता है यहांभी मानव देह में वैसाही होता है। मनुष्य को भोग के अतिरिक्त कर्म का भी अधिकार है यही विशेष है। सुख और दुःख अनुभव कोही भोग कहते हैं। राज्य भोगका जब नाम लिया तौ उसमे यह समझना चाहिये कि राज्य मिलनेपर जो सुखका अनुभव होता है उसी सुख भोगका यह दूसरा नाम है। राज्य भोग किसी अलग वस्तु का नाम नहीं है भोग दोमकार का होता है। एक सुख भोग दूसरा दुःख भोग। वह जैसे और जिस स्थान में क्यों नहो, जब कर्म भोगका नाम लिया गया तों उसका यही अर्थ होता है कि किये हुये कामके फलमे जो सुख या दुःख का अनुभव होता है। भोग कहनेही से सुख, दुःख के सिवा और कुछ नहीं समझा जासकता है। जिस कर्मके फलसे भोग होताहै, जिस कर्ममें केवल मनुष्यही का अधिकार है उसी विशेषकर्म कोही कर्म कहते हैं। नहीं सामान्य अर्थ लेनेसे देवता भी, पशु, पक्षी आदि भी कर्म किया करते हैं पर उस सामान्य कर्म से भाग्य की उत्पत्ति नहीं होती और विना भाग्य की उत्पत्ति हुये भोग नहीं होता। इसीलिये उन सामान्य कर्मों की गिनती कर्म में नहीं कीजाती। सामान्य कर्म उसे कहते हैं कि—जो कुछ पांच कर्मेन्द्रिय और मनके द्वारा जीव करसक्ता है। वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ यही पांच

कर्मेन्द्रिय कहलाती हैं-वाक्, से बातें करते हैं। पाणिसे ग्रहण और त्याग कियाजाता है। पाद्से चलना फिरना होता है। पायु उपस्थसे मलमूत्र बाहर निकाला जाता है। इनकी सहायता से जो कुछ क्रिया जासक्ता है उनके बहुत काम सभी देहधारी करते हैं, अर्थात् देवता से लेकर पशु पक्षी कीडे मकोडे तक करते हैं। ऐसे २ काम वेही करसक्ते हैं कि जिन की इन्द्रियां उन उन कर्मों के करने लायक हैं सारांश यह है कि उनमें सबका समान अधिकार है इसीलिये उन कामों को यहां सामान्य कर्म कहा गयाहै। फिर ऐसे भी काम हैं जो कर्मेन्द्रिय से तो होसक्ते हैं उनका पूरा अधिकार सबको नहीं है-ऐसे कामों को विशेष कर्म कहते हैं जैसे यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान प्रति ग्रह-इन कुछ कर्मों में ब्राह्मण ही का अधिकार है और किसी का नहीं, इसलिये ये विशेष कर्म कहलाते हैं। इसी तरह क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सबके विशेष कर्म हैं जो जाति जो काम करसक्ती है उसीका उसमें अधिकार है, जिसका जिसमें अधिकार नहीं है उसे वह नहीं करसकेगा इसी विशेष कर्मके अनुसार भाग्यकी उत्पत्ति होती है। जो सत्कर्म अथवा पुण्य है उससे भाग्य में शुभ बातों की उत्पत्ति होती है जो असत्कर्म या पाप है उससे अशुभ भाग्य की उत्पत्ति होती है। क्रमसे समय पाकर वही भाग्य भोग्य का कारण होताहै इसी भाग्यके फलसे जीवको सुख या दुःख भोगना पड़ता है। जैसे समझो कि हम इस ब्राह्मण शरीरमें झूठ बोले इससे हमको सायही साथ झूठ बोलने का फल नहीं

भोगना पड़ैगा, पर वह झूठ संस्कार रूपमें मुझमें रह जायेगा। मृत्युके बाद उस झूठ बोलने के लिये नरक भोग करेंगे । फिर जब मर्त्यलोक में हमारा जन्म होगा तब वहां उसके लिये दुःख पावेंगें । इस दुःख का कारण वही होगा जो मेरा पहिले किया हुआ भाग्य अर्थात् जो झूठ बोले थे उसीका फल। इस जन्ममें बहुत आदमी बहुत दुष्कर्म करते हैं और धन जन सब की उनमें बढ़ती भी पाई जाती है। फिर ऐसे भी हैं जो बहुत सत्कर्म करते हैं तौभी व्याधि, शोक मोह आदिके द्वारा नानाप्रकार का दुःख भोग करते हैं। एक जन्ममें कर्म होताहै और दूसरे जन्ममें उसका भोग होता है-इसीसे कौन कर्म असत्कर्म है- इसका निश्चय करना मनुष्यके अधिकारके बाहर है, किस कर्मके फलसे भाग्य अच्छा होगा और किससे अशुभ भाग्य होगा इसका निर्णय वेद और वेदके अनुगामी स्मृति पुराणादि धर्म शास्त्रमें किया हुआ है। विना शास्त्रकी सहायता के और कोई दूसरा उपाय इसके जानने का नहीं है। इसी भाग्यके फलसे मृत्युलोक में हम लोगों को तीन चीजें मिलती हैं, आयु जाति और भोग। आयुसे जीवन परिमाण जातिसे कर्माधिकार का निरूपण और भोगसे सुख दुःखका परिमाण जाना जाताहै। जो जिस जातिका है उसकी वैसीही प्रकृति होती है। सत्वरज और तम, इनतीन गुणोंके भेद से (तारतम्यसे) जीवकी प्रकृतिमें भेद होताहै जिसमें सत्वगुण अधिक है उसकी प्रकृति श्रेष्ठ होती है। रजो जिसमें अधिक है उसकी प्रकृति निष्कृष्ट जिसमें तमोगुण विशेषहै वहआलसी

बेकाम और कुछनहीं है इसीके फिर कमबेश से अधिक भेद है भाग्य, जाति और गुण आदिकी बातें पहिले कही गई हैं वे सूक्ष्म पदार्थ हैं अर्थात् इन्द्रियों से नहीं मालूम होती। जिनको इंद्रियों के द्वारा जानसक्ते हैं वे स्थूल पदार्थ हैं। हम लोगों की इन्द्रियांभी सूक्ष्म पदार्थहैं स्थूल नहीं। जो शरीर देख पड़ता है वह स्थूल है पर इस स्थूल शरीर के अलावे एक सूक्ष्म देह है। उसीको लिङ्ग शरीर या लिङ्ग देह कहते हैं। मृत्यु होनेमें लिङ्गदेह स्थूल देहसे अलग होजाताहै और कुछ नहीं होता। तब स्थूल देह पड़ा रहजाता है और लिङ्ग देह अलग होकर किसी दूसरे शरीर में बैठकर परलोकमें जाताहै उसी दूसरे शरीरको अतिवाहिक देह कहतेहैं। परन्तु किसी अवस्था मेंभी कभी भी लिङ्गदेह नष्ट नहीं होता। मोक्ष न होनेतक किसी न किसी रूप से रहता है। इसी लिङ्गदेह के साथ जीवका जन्मान्तर होता है। इस लिङ्गदेह के सत्तरह अंग हैं। पञ्चप्राण, मनबुद्धि और दश इन्द्रिय--यही सत्तरह अङ्ग हैं प्राण, अपान, समान, उदान, व्यानये पांच प्राण हैं प्राण के द्वारा सांस खींचना और फेकना, अपान के द्वारा निस्सारणादि, समान के द्वारा खाये पीये रसों की समानता की जाती है, उदान के द्वारा कंठध्वनि आदि होतीहै, व्यान के द्वारा सारे शरीर के रस और रक्त आदिके सञ्चालन के लिये (उचित) अवसर की रक्षा आदि होती है। मनके दो भाग हैं एक सन्देह आत्मक और दूसरे को अहंकार कहतेहैं फिर बुद्धिके दोभागहै एक भाग निश्चय आत्मक और दूसरा

चित्त कहलाता है--उसीसे स्मरण शक्ति होती है। पञ्चकर्मेन्द्रिय की बात पहलेही कही जाचुकी है और पांचज्ञानेन्द्रिय लेकर इन्द्रियोंकी संख्या दश है श्रोत्र (कान) त्वचा, चक्षु, (आंख) जीभ (जिह्वा) घ्राण (नाक) ये ज्ञानेन्द्रिय कहलाती हैं जिस इन्द्रिय से जिस वस्तु का ज्ञान होता है इस वस्तुको उस इंद्रियका विषय कहते हैं। जिस विषयका हमलोग सदा व्यवहार करते हैं वह यही पञ्चज्ञानेन्द्रिय के विषय हैं। श्रोत्र का विषय शब्द। त्वचाका विषय स्पर्श। चक्षुका विषय रूप जिह्वा का विषय रस और घ्राण का विषय गंध है। शब्दके आधार को आकाश कहते हैं स्पर्शके आधार को वायु। रूप के आधारको तेज। रसके आधारको जल और गंधके आधार को क्षिति कहतेहैं। ज्ञानेन्द्रिय पांच हैं इसीलिये ज्ञानकेविषय भी पांच हैं। उन्ही पांचोंको पञ्चभूत कहते हैं हमलोग जिस भूतका अनुभव करते हैं वह स्थूल--भूतहै वह शुद्ध नहीं है क्योंकि वह पंचीकृत है। अर्थात् हरएक भूतमें दूसरे चारभूत मिलेहुये हैं पञ्च भूतों की इस आपसकी मिलावटहीका नाम पञ्चीकरण है हमलोग जिसे क्षिति कहते हैं वह केवल क्षिति नहीं है उसमें दूसरे चारभूत भी मिलेहुये हैं। तबहै क्या, कि क्षितिका भाग सबसे अधिक है इसीलिये क्षिति कहकर पुकारते हैं। सबभूतोंका यहीहाल है। हमलोगों की क्षिति पृथ्वी में अर्द्धांश क्षिति और दूसरे चारभूतोंका एक एक अष्टमांश लेकर, बनी है। अर्थात् आठ आना क्षिति दो आना, जल दोआनातेज, दोआना वायु, और दोआना आकाश। इन्ही

सोलह आनों मे यह पृथ्वी (क्षिति) बनी है। यही स्थूल क्षिति है। इसीतरह स्थूल जल, स्थूल वायु, स्थूल, आकाश का हमसब व्यवहार करते हैं। अपञ्चीकृत, अवस्थामें मिलावट नहीं होती। पहले जो लिङ्गदेह के विषय में कहागया है वहभी भौतिक या भूतोंहीमे बना है परवे भूतपंचीकृत नहीं है। इसीसे लिङ्गदेह सूक्ष्म है अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा नहीं देखा जासकता है और वही भोग साधन है अर्थात् सुख दुःखको अनुभव उसी लिंगदेह के द्वारा हुआ करताहै। इसी लिङ्गदेह में जीव रहता है। भौतिक लिङ्गदेहमें चैतन्य प्रति विम्ब पड़कर प्रकृति अर्थात् सत्व, रज, तम, इन त्रिगुणों मे युक्त मायाके वन्धन में जो सुख दुःख अनुभव करता है और अपने को दूसरा समझकर अहंकार करता है, वही जीव कहलाता है॥

॥ क्याब्राह्मणस्वार्थीथे ॥

आजकल अंगरेजी के शिक्षित बहुतेरों के मुखसेही सुनने में आताहै कि ब्राह्मणों ने अपना अधिकार वेखटक रखने के लिये बहुतसा उपाय कर रक्खा था और दूसरी जातियों के प्रति नानाप्रकार के अत्याचार किये थे। बड़ाभारी अपराध ब्राह्मणों पर यह लगाया जाताहै कि उन्हों ने शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं दिया। इस बात का असार और अन्याय होना जरासोचकर देखनेही से सबको झलकजायगा। आर्य्योंमें सबसे ऊंचे वर्णके मनुष्य ब्राह्मणही हैं। इन ब्राह्मणों

ने अपने लिये क्या २ रखछोड़ा ? पढ़ना, पढ़ाना यज्ञ करना और कराना, दान देना और लेना राजकाज और धूमधाम कुल उन्होंने क्षत्रियों को दिये । कृषि, शिल्प, वाणिज्य आदि सब प्रकार के धन आने के और भोग सुखके उपाय उन्होंने वैश्यों को दिये और इन सब कामों की सहकारितादि शूद्रों को, क्रमशः शूद्रों की आकृति और बुद्धि जैसी जैसी उत्तम होने लगी उसी भांति अधिकार भी उनका बढ़ाया जानेलगा पुराण और गीतामें शूद्रों को अधिकार देनेपर केवल एकमात्र वेद्पाठ, यज्ञ करना होमकराना और पढ़ना छोड़ बाकीसभी अधिकार दियेगये । ये सब बातें हिन्दुओंही के राज्य में हुई अब विदेशी राजाओं के आनेसे वेद तकभी शूद्र पढ़ने पाते हैं । पर प्रश्न यह कि अबतक कितने शूद्रों ने वेद पाठ किया और उसका परम पवित्र भाव उनमें से किसीने समझा है या नहीं ? वेद्पाठ सफल होनेके लिये अति उत्कृष्ट मस्तिष्ककी आवश्यकता है वंश परम्परा से शील संसार सुख को तुच्छ करने में अभ्यस्त और ध्यान परायण (अर्थात् उत्कृष्ट ब्राह्मण वंशीय) मनुष्य भिन्न उसके पाठमें दूसरे कोई प्रकृत अधिकारी नहीं है दूसरों के पाठ करने से उससे यथार्थ शिक्षा के बदले नास्तिकताकी शिक्षा होजातीहै जैसे अनाड़ीके हाथमें तीक्ष्ण धारका अस्त्र पड़ने से उसका अपनाहीं हाथ कट जाता है । यह वेद पाठमें निषेध क्या ऐसा अपराध है ? यदि शूद्र उसके पढ़ने के लिये ऐसेही उत्सुकथे तो उन्होने संन्यास आश्रमका अवलम्बन क्यों न किया ? यदि यह होता तो किसीको कुछ

भी पढ़ने की मनाही नहोती । और जब आजकल वह नियम नहीं है तो क्यों नहीं झुण्ड के झुण्ड लोग वेदपाठ करते हैं ? अथवा जो पाठ करते हैं उनमें भक्ति और पतिव्रता क्योंनही देखपड़ती ? भारतवर्ष की ऊंची जाति ब्राह्मणों ने, अपनी इच्छासे कुल संसारिक सुख और समृद्धि का उपाय त्याग किया है क्या उनकी महिमा जगत् से अतुल्य नहीं है ? यूरोपियन लोग जिस देशको जीतते हैं वहां जाकर अपने मुखपर दृष्टि रखकर प्रबल प्रतापी नीलयाचाय चीनीकी खेती करने वाले प्लैन्टर और जमीदार होतेहैं आर्य्य जाति में सबसे उच्च ब्राह्मण केवल सामान्य भोजन फल मूलही से सन्तुष्ट अध्यापक या याचक हुए ! प्लैन्टर और अध्यापक इन दोनोंका चित्र पासही मिलाकर देखने में क्या दोष है ? कैसे परिताप का विषय है कि ब्राह्मणों का यह महात्म्य—अपनी इच्छा पूर्वक संसारिक समृद्धिका त्याग--आजकल अबकोई शोचकर नहीं देखते । ब्राह्मण दुर्बल या भीरु नथे । और और विद्याकी नाई अस्त्रविद्याकी शिक्षाभी ब्राह्मणही देते थे । युद्धमें ब्राह्मण सदासे अस्त्रके व्यवसायी क्षत्रिय कोभी जीत सक्ते थे । पर ब्राह्मणों के आदर्श वशिष्ठ हैं परशुराम नहीं । ब्राह्मण संयम और पवित्रता के कारण आपही सन्मान पाते थे । बलविक्रम के द्वारा सन्मान पानेके इच्छुक न थे । तब वशिष्ठ, द्रोण, परशुराम आदिको शोचने से यही मनमें आताहै कि "अनृशंस्यात्‌ब्राह्मणस्य भुंजतेहीतरेजनाः" ब्राह्मण दया परवशही नहीं लेते इसीसे दूसरे भोग करते हैं । मनुष्यने उधर प्रवृत्ति नहोने

के कारण संसारिक सुखका उपाय त्याग कियाथा । यदि वह इच्छा से त्यागन करते तो दूसरों को कुछभी नहीं मिलता कोई २ कहते हैं कि ब्राह्मण अधिकार के लोभी थे वह भोग सुख नहीं चाहते थे । पर संयम और पवित्रता से जो सामर्थ्य होती है वह सब आपही आप आकर उपस्थित होजाती है। मुसल्मान फकीर और कैथलिक पादरियों में जिनका यथार्थ में पवित्र चरित्र होताहै वे अपने समाजमें विशेष करके ब्राह्मणों ही की तरह सन्मान लाभ किया करते हैं जो मनुष्य नियम का प्रतिपालन करते हैं और पवित्रतासे रहतेहैं उससे उनका अपना पारलौकिक मंगल होता है । संसारिक सामर्थ्य उनके निकट आपही आप चली आती और लोग भक्तिके सहित उनकी बातों को सुनते हैं ॥

॥ नित्यकृत्य ॥

साधारणतः दिनरात्रि आठ भागमें बटी हुई है, इसके एक भागका नाम प्रहर वा याम है, उसके अर्द्धभाग को प्रहरार्द्ध वा अर्द्धयाम को लेकर ही धर्मशास्त्रमें नित्य क्रियाओंका वर्णन करा है, प्रत्येक यामार्द्ध डेढ़ घण्टे को होता है, रात्रिका अन्तिम यामार्द्ध ४॥ बजेसे ६ बजे पर्यन्त है, दिनका प्रथम यमार्द्ध ६ से ७॥ बजेतक होता है, इस प्रकार के १६ यामार्द्ध दिनरात्रि में बीतते हैं, सोलहवाँ यमार्द्धही रात्रिके ४॥ बजे से ६ बजेतक होताहै, उन सोलहों यामार्द्धं में सनातनधर्मावलम्बियों को शास्त्रानुकूल क्या २ कार्य करना चाहिये सो

स्थूल रूपसे लिखते हैं नित्य कृत्यके ६भाग हैं, (१) प्रातः कृत्य (२) पूर्वाह्ण कृत्य (३) मध्यान्ह कृत्य (४) अपराह्ण कृत्य (५) सायाह्न कृत्य (६) और रात्रि कृत्य उनमें से शय्या से उठकर पञ्चदेव आदिका स्मरण, दैनिकधर्म और उसके अविरोधि अर्थादिक चिन्तवन, पृथिवी को नमस्कार मलमूत्र त्याग, शौचाचार, आचमन, दन्त धावन, प्रातःस्नान तिलक धारण, प्रातः संध्या, तर्पण, यह कितनीहि क्रिया प्रातः कृत्य कहाती हैं अर्थात् रात्रि का अन्तिम यामाद्र्ध (४॥ बजे से ६ पर्यन्त) ऊपरोक्त कृत्य में बितावै। इसके अनन्तर दिनके कृत्यका आरम्भ होता है--देवमन्दिर की सफाई करना गुरु और मांगलिक पदार्थों का दर्शन करना, केशोंका सँभालना, दर्पण में मुख देखना, पुष्पादि लाना, इन सम्पूर्ण कार्यों को दिनके प्रथम यामाद्र्ध अर्थात् ६ बजेसे ७॥ बजेतक करै। द्वितीय यामाद्र्ध में अर्थात् ७॥ बजे से ९ पर्यन्त वेदाभ्यास और शास्त्र विचार करै। तृतीय यामाद्र्ध अर्थात् ९ बजे से १०॥ पर्यन्त अर्थ साधन (गृहके पुरुषों के निमित्त प्रयोजनकी वस्तु इकट्ठा करना) करै। चतुर्थ यामाद्र्ध (१०॥ बजेसे १२ बजेतक) मध्याह्नस्नान, तर्पण, और मध्याह्न संध्या देवपूजनादि करै, यहही पूर्वाह्ण कृत्यहै तदनन्तर मध्याह्न कृत्य अर्थात् पञ्चम यामाद्र्ध (१२ बजेसे १॥ बजे पर्यन्त) हवन, वैश्वदेव, अतिथि सत्कार, नित्यश्राद्ध, गोग्रासदान और भोजन यह सम्पूर्ण कार्य करै। फिर अपराह्ण कृत्य अर्थात् छटा यामाद्र्ध (१॥ से ३ बजेपर्यन्त) सातवां यामाद्र्ध (३ से ४॥ बजे पर्यन्त)

और आठवां यामार्द्ध (४॥ से ६ बजे पर्यन्त) में निरुद्वेग होकर चित्तको प्रसन्न करनेवाले और धर्म तथा ज्ञानको बढ़ाने वाले कार्यों में चित्त लगावै अर्थात् निद्रा-क्रीड़ादि को त्याग कर धर्म शास्त्रादि का विचार करै और दिन का शेष अंश भ्रमण (टहलना) तथा सज्जन पुरुषों की संगतिमें वितावै । तदनन्तर सायाह्न कृत्य अर्थात् सूर्यास्त से एक घड़ी पहिले सायं संध्योपासनादि करै । तदनन्तर रात्रि कृत्य प्रथमयाम अर्थात् ६ बजेसे ९ पर्यन्त दिनमें करे हुये कार्यों को विचारै, तथा जो कार्य रहगया होय उसको करै । तदनन्तर रात्रिके दूसरे प्रहर में अतिथि सत्कार और स्वयं भोजन आदि करकै शयन और यथा विधि स्त्री समागम आदिके द्वारा रात्रि को व्यतीत करै ॥

॥ ओंकार व्याख्या ॥

"अ" कार "उ" कार और "म" कार इतने वर्णों के मिलने से "ओम्" शब्द सिद्ध होताहै "अकारका अर्थ विष्णु अर्थात् जगत् को पालन करनेवाला अथवा स्थिति का कारण "उ" कार का अर्थ शिव अर्थात् संहार करनेवाला अथवा प्रलयका कारण, "म्" कार का अर्थ ब्रह्मा अर्थात् सृष्टि की रचना करनेवाला अथवा उत्पत्ति का कारण है, इसकारणही "ओम्" शब्दका अर्थ ब्रह्मा-विष्णु-शिव अर्थात् सृष्टि-स्थिति और प्रलयका बीज स्वरूप परब्रह्म कहाता है, यही श्रीमद्भगवद्गीता के विषैं कहा है कि—

"अकारो विष्णुरुद्दिष्ट उकारस्तु महेश्वरः।
मकारेणोच्यते ब्रह्मा प्रणवेन त्रयोमताः" ॥

अर्थात्—अकार शब्दसे विष्णु, उकार शब्दसे शिव और मकार शब्दसे ब्रह्मा का ग्रहण होता है, इस कारणही प्रणव (ओंकार) से ब्रह्मा विष्णु महेश यह तीनों लिये जाते हैं। ज्ञान संकलिना तन्त्रमें कहा है कि—

"एकमूर्त्तिस्त्रयोदेवा ब्रह्मविष्णु महेश्वराः"।
"ध्रुवमेकाक्षरंब्रह्म ओमित्येवंव्यवस्थितम्" ॥

अर्थात्—ब्रह्मा विष्णु महेश यह तीनों देवता एक मूर्त्ति हैं निःसन्देह इस कारणही एकाक्षर ब्रह्म, "ओम्" इस शब्द के विषैं व्यवस्थित। महा निर्वाण तन्त्रमें भी कहा है कि—

"अकारेण जगत्पाता संहर्त्तास्या दुकारतः।
मकारेणोच्यतेब्रह्मा प्रणवार्थ उदाहृतः" ॥

अर्थात्—अकारसे जगत्का पालन करनेवाला, उकारसे संहार करनेवाला, तथा मकारसे रचना करनेवाला कहाता है यही ओंकार का अर्थ है। मनुजीने और वृहद्विष्णुने भी कहाहैकि

"अकारञ्चाप्युकारञ्च मकारञ्च प्रजापतिः।
देवत्रया न्निरदुहद् भूर्भुवः स्वरितीतिच" ॥

अर्थात्—अकार-उकार-मकार-भूर्भुवःस्वः, इसको ब्रह्मा जीने तीनों वेदों से दुहा है, इस कारण ओंकार शब्द सृष्टि स्थिति और प्रलयके कारणरूप परब्रह्म वाचक है, कठोपनिषद् के विषैं भी "यमराजने निकेताके प्रति कहा है कि—

"सर्वेवेदायत्पदमामनन्तितपांसिसर्वाणिच यद्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्तितत्ते पद ँ संग्रहेणब्रवीम्योमित्येतत्" ॥

अर्थात्—सम्पूर्ण वेद जिसका प्रतिपादन करते हैं, और सम्पूर्ण तपस्या जिसकी प्राप्तिके निमित्त हैं, और जिसकी प्राप्तिकी इच्छा से ब्रह्मचर्य्य करते हैं, उसको मैं संक्षेप से वर्णन करताहूँ कि वह ओंकार है ॥

॥ केदारकी कथा ॥

केदार एकदिन प्रातःकालके समय वायु सेवन (टहलने) को जारहे थे कि-अचानक मार्ग में एक नग्न केश शून्य परम हंसको देखा, हमारे देशके अनेकों पुरुषों को विश्वास है कि प्रातःकाल के समय शिर मुंडे पुरुषका दर्शन करना अशुभ कारी होताहै परन्तु केदारके मनमें इस विषयका कोई विचार नहीं हुआ, वह तत्काल उनके समीप जाकर बातचीत करने लगा, परमहंस ने हँसते २ कहा कि-"हमको पांच रुपया दे सक्ते हो ? केदार ने इसको स्वीकार करा और महात्मा को अपने घर लिवालाया तहां उनको पांच रुपये दिये, यह परम हंस रुपये पाकर बडे प्रसन्न हुये और क्रीड़ा करते हुये "बाबू ने दियाहै" "बाबूने खुशी से दियाहै" इसप्रकार बारम्बार कहने लगे, उनके सरल स्वभाववालों की समान व्यवहार और नग्न अवस्था देखने के लिये तहां पुरुषों का समूह इकट्ठा होगया, परन्तु परमहंसने उन मनुष्यों की ओर कुछ ध्यान न

देकर केदार बाबू से मिष्टान्न लाने के लिये कहा, केदार ने तत्काल सामने की हलवाई की दुकान से एकसेर पेडे लादिये उन सेरभर पेड़ों मेंसे परमहंस जीने सम्पूर्ण मनुष्यों को भोजन कराया और सबके पीछेसे चार २ और देदिये. आश्चर्य का विषय है कि-तौभी पेड़ों का पात्र ज्योंका त्योंही भरारहा, इतने समय तक परमहंस केवल "बाबू ने दिया है" इत्यादि वचन कोही बारम्बार कहते रहे, अन्तमे सब पेड़ों का एक गोला बनाकर स्वयं भोजन करलिया तब सब पेडे निबडे सब पुरुष चुपचाप खडे हुये देखते रहे, तदनन्तर "बाबूने दिया है" इत्यादि वचन कहते हुये उठकर चलदिये और शीघ्रही दृष्टिसे दूर होगये। इस घटना के कुछ दिनों के अनन्तर जब केदार उज्जयिनी से बदलकर राजपूताने के और किसी नगर को जाने को थे, उस समय एकदिन अति प्रभातकालमें केवल शय्यासे उठकर नेत्र मलते २ केदार दहलीज में गये उसी समय अचानक किसीने आकर द्वारपर धक्का मारा, केदार ने शीघ्रही द्वार खोलकर आश्चर्य में होकर देखा कि-स्वयं महा राजा हुलकर द्वारपर खडे हुये हैं, इस बातका विश्वास न करकै केदार बाबूने कुछ समयतक नेत्र मूँद रक्खे, और फिर देखा तौ वही महाराज हुलकर की समान मूर्त्तिहै, वही मणि मुक्तामय वेषहै, किसीप्रकार सन्देह नहीं है, यह देख केदार मौनहै, तबतौं वह मुसकुराये, और उनके कथनसे केदार का मोह दूर हुआ, कहने लगे कि- तू मुझको पहिचानता है? मैं वही नग्न संन्यासीहूँ, एक महाशय ने अनुग्रह करकै मुझको

यह आभूषण दिये हैं, इतना कहने परभी केदार को मौन देखकर उन्होंने कहा कि-"वृथा कालक्षेप करनेका समय नहीं है, एकान्तमें तुमसे कई एक आवश्यक बार्ता कहूँगा, जो कोई यहां हो उन सबको अलग चले जानेको कहदे" केदारने ऐसाही किया, उस समय योगी परमहंस, केदारको संबोधन करके गम्भीर स्वरसे कहने लगे—

॥ गुरुकी आवश्यकता ॥

जिसप्रकार भूले हुये बटोही को मार्ग बतलाने के लिये बतानेवाले की आवश्यकता है तिसीप्रकार जो पुरुष सांसारिक माया और प्रेमके गोरख धंधेमें अपने परलोकके मार्गको भूलगया है उसको सुमार्ग में लेजाने के लिये किसी विशेष पुरुषकी आवश्यकता है, उसको "गुरु" कहते हैं, इस विषय में एक वृत्तान्त सुनो-एक धनुषधारी व्याधा किसी शीघ्रही प्रसूत होनेवाली व्याघ्री के पीछे दौड़ा और उसके ऊपर बाणका प्रहार करा, सो वह गर्जकर एकखाई के परली पार गई उस समय उसका गर्भ खाई के तटपर गिर पड़ा, खाईके एक तटपर जीवित गर्भथा और दूसरे तटपर उसकी प्राणहीन माता पड़ी थी, तहां एक शृगाली (गीदड़ी) आई और इस तत्काल उत्पन्न हुये व्याघ्र बालक को अपने स्थानपै लेजाकर माता की समान यत्नके साथ अपने दुग्धसे पालने लगी, शृगाल के यहां व्याघ्र शिशु प्रतिदिन बढ़ने लगा, अकस्मात् एकदिन एक व्याघ्रने देखा कि-समीप स्थानमें एक

व्याघ्र शिशु शृगाल के बालकों में क्रीड़ा कररहा है, जहां अग्नि और तृणपुञ्ज की समान खाद्य खादक का सम्बन्ध तहां ऐसी शान्ति और मित्रभाव देखकर वह व्याघ्र यत्परो नास्ति (अत्यन्त) आश्चर्य में पड़गया, और एक समय उस को एकान्त में बुलाकर, उन साथियों से पृथक् होने के लिये और अपने समान उसकी जाति और आकृति समझाने में बहुतपरिश्रम करा परन्तु कार्य नहीं बना तब वह व्याघ्र उस बालक को एक नदी के तटपर लिवागया और तहां प्रकृति के दर्पण रूप स्वच्छ जलमें उसको अपने और उसके शरीर का प्रतिबिम्ब दिखाया तब वह व्याघ्रका बालक अपने कुल शीलको अच्छेप्रकार से समझगया इस दृष्टान्त के उपदेशसे स्वयंप्रकाशित होता कि-गुरूके बिना कोई पुरुष स्वयं अपने स्वरूपको नहीं पहिचान सक्ता॥

॥ गुरुके प्राप्त करनेका उपाय ॥

जिस प्रकार प्रत्येक पुरुषके लिये गुरुके उपदेशकी आव श्यकता है तिसी प्रकार वास्तविक गुरुके ढूंढ़नेकी भी आव-श्यकता है क्योंकि-विनाक्लेश और परिश्रम को स्वीकार करे तथा विना आत्मसंयम करे सहज में नहीं यथार्थ गुरुका मिलना अति कठिन है, इस विषय में एक दृष्टान्त कहते हैं उसको ध्यान देकर सुनो-एक पुरुष यथार्थ गुरुके मिलने की आशा से बहुत कुछ चेष्टा और परिश्रम करके भी सफल मनोरथ नहीं हुआ, अन्तमें वह पर्वत २ में जङ्गल २ अपने अभीष्ट

गुरु को अन्वेषण करने के निमित्त फिरने लगा, एक समय भ्रमण करते २ भक्ति भाजन समाधिस्थ एक तपस्वीका दर्शन हुआ, उनको देख अत्यन्त प्रसन्न हो साष्टाङ्ग प्रणाम करके कहनेलगा कि-"मुझ मन्दभाग्यने अतिकष्ट से आपको पाया है आपही मेरे गुरुदेव हैं" उस तपस्वीने कहा कि--"नहीं तुम्हारा मैं गुरु नहीं हूं, तुम्हारे गुरुदेव अमुक पर्वत पर तपस्या कर रहे हैं" यह सुनकर वह कहनेलगा कि-"जो कुछभी हो, जब आपने मुझे यथार्थ गुरुको बताया, तब तौ आपही मेरे प्रथम गुरु हैं" ऐसा कहकर उसने तपस्वी को प्रणाम करा और बत लाए हुए पर्वत की ओरको चलदिया, बहुतसा मार्ग बिताने के अनन्तर वह बताए हुए स्थानपर जाकर पहुंचगया और तहां एक अतिकुत्सित रोग और वृद्धावस्थामे ग्रस्त पुरुषको देखा, देखाकि-वह पुरुष अत्यन्त पीड़ा ओर सर्व शरीर में विष्टासे लिप्त पड़ाहुआ फड़फड़ा रहा है, प्रथम दर्शन यद्यपि प्रीति कारक नहीं हुआ तथापि निराश न होकर वह मन मन में तर्कना करनेलगा कि-"जब इस स्थान परही मुझे गुरुकी प्राप्ति होगी तबतौ यह पुरुषही मेरे गुरुदेवहैं, ऐसा बिचारकार उस कुत्सित पुरुषकोही उसने अपना गुरु निश्चय करलिया और संकोच त्यागकर इस व्याधि ग्रस्त पुरुषकेसमीप जाकर झरने के जलसे सकल शरीर को धोदिया, परन्तु वह पुरुष कातर और रुष्ट स्वरसे उसको निषेध करनेलगा, परन्तु उसके क्रोध होनेकी ओर ध्यान न देकर यह सेवा शुश्रूषा करनेलगा, एक समय इसने अचानक देखा कि-उसके दोनों चरण एक शिव

लिङ्ग के ऊपर पडेहुए हैं, घबड़ाकर दोनों चरण तहां से हटा दिये, कुछ समय के अनन्तर देखा कि--फिर दोनों चरण शिवलिङ्ग के ऊपर पडेहुए हैं तब फिर वहांसे हटादिये, इस प्रकार जितनीबार शिवलिङ्ग के ऊपर चरण देखे उतनीही बार हटादिये और बडे आश्चर्यमें हुआ, कुछ समयके अनन्तर क्या देखाकि–वह व्याधि ग्रस्त पुरुष बहुत थोडे समय मेंही पूर्ण आरोग्य होगया और उन्होंने प्रसन्न होकर एकदिन उस सेवक पुरुषसे बूझाकि--तू क्या चाहताहै ? उसने प्रसन्न होकर अपना प्रयोजन कहा तब उन्होंने उत्तर दियाकि--प्रथम तौ तू हमारा शिष्य होनेके योग्यहै या नहीं ? इस बातका परिचय दे, फिर शिष्य करने न करने का मैं विचार करूंगा, पहिले तौ तू मुझे पृथिवी की सबसे अधम वस्तु लाकर दे, ऐसा कह कर उसको बिदाकरा, तबतौ वह अनेकों स्थानोंपर घूमा परन्तु उसको सबसे अधम वस्तु नहीं मिली अतः हृदय में। अत्यन्त दुःखितहो लौटा चला आताथा सोमार्गमें अचानक एक विष्टा का पर्वत देखा और ज्यों ज्यों कृमि और कीटों के स्थानरूप उस नरक की ओर को जानेलगा त्यों त्यों अधिक दुर्गन्धि आनेलगी, नजाने क्या मनमें विचारकर वह इस विषय की परम चिन्तामें निमग्न हुआ और मनही मनमें अनेकों प्रश्न करकै उसने अन्तमें सिद्धान्तकरा कि–इस जगत् में "अहम्" की अपेक्षा और कौन अधम होसकताहै ? तदनन्तर लौटकर अपने गुरुदेव के समीप गया और सब वृतान्त कह सुनाया, तब गुरुदेव अति प्रसन्न होकर कहनेलगे कि–तू हमारा शिष्य होने

के योग्य है, तूने वास्तव में यथार्थ और गुप्तसारको जानलिया इसको सदा स्मरण रख कि--"अहम्" सर्वापेक्षा अधम है क्यों कि--इस "अहम्" अहंकार के कारणही अनेकों प्राणी तैनें कृमि कीट हुए विष्टाके पर्वत में पड़े हुए देखे हैं अतः "अहम्" को सदा वशमें रख, यहही राजयोग की पहली सीढ़ी है। यह दृष्टान्त कहकर योगी केदार से कहनेलगे कि--कदापि विस्मरण न करना, यह "अहम्"को वशमें रखना रूप आत्म ज्ञान ही योग्य का मूल मन्त्र है ॥

॥ हमाराउपाय क्याहै ? ॥

तेज और पराक्रमको हरनेवाले दुर्दमनीय कलिकी छायाने प्राचीन आर्य्यमण्डली के विराट् शरीरपर धीरे २ फैलने का जिस समय आरंभ कियाथा उस समय शौनकादि ऋषियों ने पुराणतत्व वेत्ता सूतजीसे प्रश्न कराथा कि-"साधो ? हमारा उपाय क्याहै ? उससमय भारतवर्षकी आर्य्यमण्डलीमें कलिका अवश्यभावी अनर्थ धीरे २ प्रवेश करता था, धर्म का क्रम से क्षय और अधर्म समूह गुप्तभाव से वृद्धि को प्राप्त होता था, अभिमान, स्वार्थपरता कपटता और विश्वास घातकता आदि कुछ २ आश्रम पातेथे, अतएव उन त्रिकालदर्शी ऋषियों ने भारत का भयानक भावी परिणाम विचारकर कातर चित्तसे प्रश्न कियाथा कि–"साधो ! हमारा उपाय क्याहै ? आज उस दुर्जय कलिका पूर्ण प्रभाव भारतवर्षमें प्रकटहै, आजवह क्षीय मान धर्मकी ज्योति अधर्म के अन्धकार में निमग्न होनेको उद्यत

है, आजवह भयदायी अहंकार शतगुणा भयदायी होकर हमारे बुद्धिबल को जड़ से उखाड़कर फेंक देने को उद्यत है, कालकी करालगतिसे प्रकाशवान् मध्यान्हकाल आजघोर अन्धकारमय रात्रिकी गोदमें लीन होरहाहै, इसकारण हम सैकड़ों कण्ठोंको एकत्र मिलाकर सहस्रों हताश हृदयों को एक सूत्रमें बांधकर जिज्ञासा करते हैं कि-"साधो? हमारा उपाय क्याहै कौन हमारे इस प्रश्नका उत्तर देगा! कौनसा महापुरुष आज उन पुराणतत्व वेत्ता सूतजी के स्थानपर अधिकार करैगा? चारोंदिशाओं में महाश्मशान है, आज भृगु, परशुराम, वशिष्ठ पराशर आदि महर्षि नहीं हैं, शतशः नरकङ्काल कर्तव्यभ्रष्ट और उद्देशहीन होकर इधर उधर फिरते हैं, इस महाभयदायी विपत्ति कालमें भ्रान्ति विरोध और स्वार्थपरता के परम आवेशमय मुहूर्त में आजकौन हमें बतावेगा कि--"हमारा" उपाय क्याहै? हम सब देखते हैं, देखसुनकर मौन रहजातेहैं कुछ समझमें नहीं आता है, कौन हमे समझावेगा? कौन हमे बतावेगा कि-हमारा उपाय क्याहै?" हमारा दुर्भाग्य है कि-जो हमें समझानेकी चेष्टा करते हैं वह पुरस्कारके बदले उलटा तिरस्कार पाते हैं, सहस्रवर्ष पहिले हमारे प्राचीन शास्त्रकार अपनी अद्भुत दूर दर्शिताके प्रभाव से हमारी इस वर्तमान भयदायी दुर्दशा को लिखगए हैं, कि कलिके प्रभाव से मनुष्यों को नीच दृष्टि, अल्प भाग्य और धनहीनता प्राप्तहोगी सकल नगरदस्युओंसे सम्पूर्ण और पाखण्डियों से कलंकित होंगे शूद्र तपस्वी का वेष धारण करकै प्रतिग्रह लेंगे, धर्मको न जाननेवाले

पुरुष धार्मिक पुरुषों के आसन पै बैठकर धर्मोपदेश करेंगे, ब्राह्मण धर्मकर्म को त्यागकर केवल पेट भरनेमेंही तत्पर रहेंगे इत्यादि और बहुतसी अधोगतियों के होने का वह अनुमान करगए हैं, आज वह सब दुर्दशा हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं, आज धर्मकामर्म गुप्तसा होरहा है, हिन्दू न उसको जानते हैं, नजानने की चेष्टा करते हैं, ब्राह्मण इस समय शूद्रोंके आसन पर बैठे हुये हैं, और शूद्र ब्राह्मणों के आसनपै बैठने को उद्यत हैं, धर्मध्वजपना इस समय साधु का चिन्ह है, आडम्बर सर्वज्ञता सूचक है, धन, धर्म कर्मका चिन्ह है, युवति विवाह और विधवा विवाह उचित विवाह कहाजाताहै, श्राद्ध तर्पण आदि इस समय वैज्ञानिक व्याख्याकी तीक्ष्ण नख धारासे क्षत विक्षत है, कैसे यह दशा होगई ? कहसक्ते हो हिन्दू धर्मकी जड़ में किसने यह अग्नि प्रज्वलित करदी ? किसने यह हिन्दुओं के सन्मुख सर्वनाश का द्वार खोल दिया ? कौन पिशाच हिन्दुओंकी बल बुद्धि को हरकर लेगया ? जिन ऋषिकुमार हिन्दुओं का शास्त्र भण्डार आजभी जगत् में अतुलनीय है, जिनके व्यतीत और वीरत्व धर्म निष्ठत्व और महत्व का दृष्टान्त आजभी जगत् में विस्मय उत्पन्न करता है, आज उनकी ऐसी दुर्दशा क्यों है ? सामाजिक तत्वज्ञ पुरुषों का कथन है कि समाज एक दिनमें गठित नहीं होताहै, वृक्ष अंकुरसे जिस प्रकार क्रम २ से परिणत अवस्था को प्राप्त होता है, तिसी प्रकार समाज भी धीरे २ पुष्टि पाताहै, मृत्तिका जल वायु आदि सामग्री जिसप्रकार वृक्षके पोषणमें सहायता वा प्रति-

कूलता करती है तिसी प्रकार अनुकूल और प्रतिकूल अवस्थाओं मे समाजकी उन्नति वा अवनति होती है, हमारा ऋषि समाज न एकदिनमें उन्नति को प्राप्त हुआ था और न एक दिनमें इस दुर्दशा को प्राप्त हुआ है, इसकी उन्नति और अधोगति में युग बीत गये हैं अगण्य महापुरुष उतने समयमें प्रगट और अन्तर्हित होगये, वह विराट् धार्मिक समाज में अपनी कीर्त्ति को अङ्कित करगये हैं, आज दुर्दशाग्रस्त समाज में उनके पवित्र नामके स्मरण मात्र से भी हमको कुछ एक शान्ति प्राप्त होती है, आज धार्मिक हिन्दूसमाज पुरातन उन्नति दशाको स्मरण करके नेत्रों से अश्रुप्रवाह चलने लगता है परन्तु अब अश्रुधारा बहाने से अधिक दुःख प्राप्त होने के सिवाय और कोई लाभ नहीं होयगा, इसलिये अब वह चेष्टा करना चाहिये जिसमें अश्रुजल पुँछै, प्रिय भ्रातृगण ! कबतक उदासीन रहोगे ? दुःखको कब दुःख समझोगे ? बहुत दिनों से तुम्हारे धार्मिक समाज की दुर्दशा चली आती है आज दुर्भाग्य प्रगाढ़ता से उसकी मात्रा वृद्धिको प्राप्त होगई है इतिहासों को खोलकर देखो तब जानोगे कि-तुम्हारा धार्मिक समाज कबसे अधोगति को प्राप्त हुआ है, पुराणों में लिखाहै कि-कलिके सङ्ग२ ही धार्मिक हिन्दू समाज की अधोगति का आरम्भ हुआ है, पुराणों का यह महावाक्य अवश्यही हम को स्वीकार करना होगा, जिस दिन कुरुक्षेत्र की महाश्मशान भूमिमें आर्य वीरता ने समाधि लगाई उसके अनन्तर जिसदिन भगवान् श्रीकृष्ण इसलोक को त्यागकर गये उस

दिनमेंही हम लोगों की दुर्दशा हुई है, उस शोकप्रद दुर्दिन में जिस दुर्दशा की नीव पड़ी उसकी फिर निवृत्ति नहीं हुई वैदिक धर्मावलम्बियों का जो गौरवरवि भारतवर्ष की शूरता वीरता और गौरव की गरिमा हरण करके कुरु पाण्डवों के विशाल शोणित-सरमें निमग्न हुआ था वह फिर उदय नहीं हुआ, पञ्चपाण्डवों के महाप्रस्थान के साथ आर्यमण्डली की आद्या शक्ति भारतको त्यागकर हिमालय में अन्तर्ध्यान हो गई, जो शक्ति एक समय पुण्य सलिला सरस्वती और दृषद्वतिके, वेदगान से गूंजते हुये तटपर ब्राह्मी श्रीरूपसे विराजमानथी, जिसने वशिष्ठ के पवित्र शरीर में प्रगट होकर गुप्त क्षत्रिय वीर विश्वामित्र के ज्ञान नेत्र उनमीलित करदिये थे, परशुराम के तीक्ष्ण कुठारपर, सगर राजाके और्वाग्निवाणपर श्रीरामचन्द्र जीके शैव शरासनपै स्थित होकर जिसने सनातन वैदिकधर्म की रक्षा करी थी, जिसने श्रीशङ्कराचार्य जी की जिह्वापै स्थित होकर बौद्धों के चुङ्गल से वैदिकधर्म को बचाया था वह बहुत दिनों से भारतको त्यागकर चलीगई उस महाशक्तिने ही हमारे धार्मिक समाजको दृढ़ रूपसे बांध रक्खा था, फिर उसही महाशक्ति की उपासना प्रार्थना करो शरीर मनोवाक्य से माता के चरणों में आत्म समर्पण करकै निष्कपट भावसे प्रार्थना करो, जिससे इस दुर्दशा से मुक्त होगे, राज राजेश्वरी महाराणी विक्टोरिया के समयपर कार्य में आकर प्रियपात्र बनोगे, अतः वार २ जगदम्बा की प्रार्थना करो, अपने पूर्ववत् बल बुद्धि आदिको प्राप्त करो, ईश्वरवत्

पूजनीय राज राजेश्वरी महाराणी विक्टोरिया की पूर्ण सेवा करकै स्वर्गके भागी बनो, अपने सनातन वैदिकधर्म में पूर्ण प्रेम करकै मुक्तिके अधिकारी बनो, सार यह है कि-यदि धर्ममें प्रेम करोगे और सत्य चित्तसे माता (आद्याशक्ति) को पुकारोगे तौ सन्तान के दुःख को देखकर माता कदापि निश्चिन्त नहीं रह सकैगी, अवश्य कृपाकटाक्ष से तुम्हारे मनोरथों को पूर्ण करैंगी, तब फिर वीरता धीरता धार्मिकता और सर्वोपरि बुद्धिमता का परिचय देसकोगे ॥

॥ राम रावणका युद्ध ॥

नवीन सम्प्रदायी लोग और आजकलके ऊषा प्रकाशके अनुगामी जन इस बात को मिथ्या मानते हैं कि महर्षि (वाल्मीकि) जीन रामचन्द्र महाराजके जन्मके उपदेश सहस्र वर्ष पूर्व रामायण रची है। परन्तु किञ्चित् विचार चक्षु उन्मीलन करके देखनेसे ज्ञात होगा कि रामायण जिसप्रकार अवतार विशेष के कार्य्य कलाप की वर्णना में रची हुईजान पड़ती है, वैसाही उसमें नित्य आध्यात्मिक सत्यता भी परिपूर्ण है। विचार दृष्टिसे देखनेपर ज्ञात होगा कि जीव मात्र सबही दशानन होते हैं। काम १ क्रोध २ लोभ ३ मद ४ मात्सर्य्य ५ मोह ६ दम्भ ७ द्वेष ८ हिंसा ९ पैशुन्य १० (खलता) इन दश मुखों को प्रसारकर विश्व संसारको ग्रास करने को सर्वदा जीवमात्र व्याकुल रहता है। जीवके केवल

दशमुख नहीं है परञ्च बीस भुजा भी हैं अर्थात् कामक्रोधादि सत्य असत्य उभय व्यवहार के विचार से ज्ञात होता है कि धर्म्मा विरुद्ध, काम जगत् को मङ्गल दायक, और धर्माविरुद्ध कामादि विशेष अमङ्गल का कारण होता है। इन्हीं काम क्रोधादि प्रत्येक के न्याय अन्याय व्यवहारही जीवकी बीस भुजा हैं। अज्ञान जीवका भ्राता तमोरूपी कुम्भकर्ण है, तमः प्रधान जीवको अहंज्ञान वा अहङ्कार अधिक होता है, अहङ्कार वृहदाकार है इसीकारण कुम्भकर्ण वृहदाकार है अहङ्कार सदा सर्वदा विश्व संसार को ग्रास करने के लिये सचेष्ट रहता है इसकारण पशु नरादि भक्षण कुम्भकर्ण की उदर पूर्णाप्रधान कार्य लिखा है और निद्रा आलस्यादि तमोगुण का कार्य्यहै कुम्भकर्ण काभी अधिककाल निद्रामें रहनाही लिखा है। जीव देहमें परमात्मा की विरोधनी एक शक्ति होती है यह ही शक्ति कलह कारिणी निकृतिरूपा सूर्पनखा है यहही राम तथा रावण अर्थात् परब्रह्म और जीवमें कलह उपस्थित करानेवाली है। और खलता तथा मलीनता, खर, दूषण उसके सहायक भ्राता हैं निकृति जैसे जीव और ब्रह्म में विवाद का कारण है वैसेही जीव देहमें विवेक ब्रह्म और जीवके मित्रता संस्थापन की चेष्टा करता है, जब रावण कभी अन्याय कार्य्य करनेका संकल्प करता है विवेकरूपी विभी-षण उसको रोकता है। जीव मोह वश होकर उपदेश ग्रहण न करके विपद् सागर में पतित होता है, जब रावण की यह दशा होतीहै अविशष विवेक मोहान्ध जीव कर्तृक द्रवीभूत

होकर रामरूप परमात्मा की शरण लेता है। यह सुशोभित और सुवर्णकान्ति देहही सोनेकी लङ्का है, जीव मात्रमेंही देवता और दनुज का भाव पायाजाता है ब्रह्म और मायासे ही जीव सम्भूत है, मायाही राक्षसी स्वरूप है निकषा (राक्षसों की माता) मायारूपिणी है, विश्वश्रवा विश्वस ही परमात्मा है। देहस्थित इन्द्रियगण स्थानीय देवता हैं इन्द्रिय सदा सर्वदा जीवकी सेवामें रहती है देखो, पवन निश्वास प्रश्वास रूपसे देहकी विशुद्धता सम्पादन करता है। वरुण देह मोर्ज्जन करते हैं। मनही देहमें चन्द्रस्वरूप है और मनका मस्तक के द्विदळ के मध्यमें वास है चन्द्र रावण के मस्तकपर छत्र धारण करनेवाला लिखा है। चक्षुही देहमें सूर्यस्वरूप दर्शन कार्य्य निर्वाह करता है। इसकारण लङ्का पुरी दर्शक द्वारपाल सूर्यही हैं। जीवको सबसे पहिले ब्रह्मा जीके निकट से वेदका ज्ञान प्राप्त हुआ है इस कारण लङ्का के गुरुदेव ब्रह्माजी हैं। ऐसेही भिन्न २ देवता पृथक् २ कार्यों पर नियुक्त पाये जाते हैं। यह सब वृत्तान्त अध्यात्मिक रहस्य में निहित है कपोल कल्पित नहीं है जिससे यह सिद्ध होता है कि (जीव) रावणके देवता समूह सेवामें रहते हैं। ब्रह्मकी चार अवस्था हैं जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया। जैसे कि श्रीकृष्णावतार वासुदेवाख्य तुरीय आत्मा हैं श्रीराम तद्रूप तुरीय आत्मा हैं, ऐसे जाग्रदवस्था संकर्षणाख्य आत्मा श्रीलक्ष्मण हैं, और स्वप्नावस्था प्रद्युम्नाख्य आत्मा शत्रुघ्न एवं सुषुप्त्यवस्था अनरुद्धाख्य आत्मा श्रीभरत जी हैं। श्री

कृष्णावतार में रुक्मिणी जिस रूप मूल प्रकृति मानी गई हैं, तद्रूप श्रीरामावतार में श्रीसीता जी मूल प्रकृति हैं-यह केवल कल्पनाही नहीं है, रामोत्तर तापनी श्रुतिमें लिखाहै॥

॥ प्रमाण ॥

अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः ।
उकाराक्षर सम्भूतः शत्रुघ्न स्तैजसात्मकः ॥
प्राज्ञसंज्ञको भरतो मकाराक्षर सम्भवः ।
अर्द्धमात्रात्मकोरामो ब्रह्मानन्दैक विग्रहः ॥
श्रीरामसान्निध्यवशा ज्जगदानन्ददायिनी ।
उत्पत्ति, स्थिति, संहारकारिणीसर्वदेहिनाम् ॥
सासीता भगवतिज्ञेया मूल प्रकृति संज्ञया ।
प्रवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः ।
भाषाकारमहात्मा नारायणस्वामिनेउक्तः ॥

श्रुति की व्याख्या इस प्रकार से की है प्रणव षड़ाक्षर सम्भूत है, यथा, अ, उ, म्, अर्द्ध, मात्राविन्दु और नाद । इन छः अक्षरों में प्रथम अ, जाग्रदभिमानी संकर्षण लक्ष्मण । द्वितीय उ, तैजसात्मक स्वप्नाभिमानी प्रद्युम्न शत्रुघ्न । तृतीयाक्षर मकार, प्राज्ञात्मक सुषुप्त्यात्मक अनिरुद्धाख्य भरत । तुरीयावस्था में ब्रह्म कृष्णाख्य राम ? बिन्दु और नादही मूल प्रकृति परमा विद्या है । रामायणमें कथित है कि सीता भूमि से उत्थित हुई हैं इसका तात्पर्य यहहै कि पृथिवी समस्त धर्म की अधार स्वरूप है । शुद्धिके विना विद्यालाभ नहीं होसक्ती

इस कारण यज्ञ भूमि कर्षण से सीता सम्भूत हुई हैं। परम योगी जनक राजर्षि को यज्ञादि बिहित कर्म अनुष्ठान के बल से ज्ञान स्वरूपा सीता प्राप्त हुई और उस ज्ञान के सहाय से परमात्मा श्रीराम उनको प्राप्त हुए। श्री रामचन्द्र वनमें पधार कर पंचवटी में रहे थे, यामल ऋषि के वचन से जाना जाता है कि आमलक, श्रीफल, वट, अश्वत्थ निम्ब यह पञ्चवट हैं। कि जो योगीजनों के योग सिद्धि प्रदान करने वाले हैं। उसी स्थान में योगियों क धन श्री भगवान् विराजमान रहते हैं। श्री रामचन्द्र के पञ्चवटी से अन्यस्थान पर गमन करने से तत्त्व बिरोधी मोह ग्रस्त रावण कर्तृक सीता अपहृत हुई। अर्थात् योगी योगमार्ग सिद्धि प्राप्त करने पर भी परमात्मा के साथ उसका सामान्य बिच्छिन्न भाव उत्पन्न होने सेही ज्ञान अप हृत होजाता है। रावण ने सन्यासी के वेषमें सीता अपहरण की इसका तात्पर्य यह है कि जिसके हृदय में विषय वासना की प्रबलता होती है वह सन्यासी वेष धारण करके ज्ञान अपहरण करताहै। योगके प्रधान छः अंग हैं। यथा आसन १ प्रत्याहार २ प्राणायाम् ३ ध्यान ४ धारण ५ समाधि ६ यह ही ज्ञान प्राप्ति के सहायक हुआ करते हैं सुग्रीवादि प्रधान छः कपि षडङ्ग योग हैं। इनही के द्वारा ज्ञान रूपा सीता के उद्धार में सहायता हुई है। सुग्रीव श्री रामचन्द्र के मित्र जो श्री रामके अभेदात्मा हैं, और समाधि अवस्था ही जीव और ब्रह्म की अभेदावस्था है इस कारण सुग्रीवही समाधि योग है। आसन आयत (आधीन) न करने से योग साधन

करने में मनस्थिर नहीं करसक्ता, मन: स्थैर्य साधकत्व हेतु और योगी जनों के भवसागर उत्तीर्ण का सेतु स्वरूप वही आसन है। और नल नाम कपि आसन स्थानीय सेतु कारक है। प्रत्याहार के द्वारा मोहादि रिपु दमन किये जाते हैं, इसी कारण प्रत्याहार स्थानीय नील है, क्योंकि दशानन के (अर्थात् काम, क्रोध, लोभ मोहादि) दशों शिरपर पदाघात (दमन) करने वाला है। प्राणायाम के द्वारा जन्म मृत्यु रूप भवसागर को पार होकर मानव ज्ञान पदवी दर्शक होजाता है। महावीर हनुमान शत योजन परिमाण समुद्र उलङ्घन करके ज्ञान रूपा सीता के दर्शन लाभ में समर्थ हुये। प्रणवाकार (अङ्गुरीय के न्याय) जो परमात्मा ज्ञान दर्शक है और जो मनुष्य प्राणायाम द्वारा प्रणव के जपका साधन करै वही ईश्वर निज जनक होता है, क्योंकि ईश्वर ज्ञानं प्रापिका वह सोपान है, इस कारण सीता देवी (ज्ञानरूपा) ने हनुमान से अङ्गुरीय प्राप्तकर, उनको श्री रामचन्द्र का निज जन जाना और वायु साधन का फल प्राणायाम तत्व है इसी से हनुमान पवन नन्दन कहेजाते हैं। अङ्गद धारण स्थानी है जिसको धारण शक्ति प्राप्त होजाती है काम क्रोध मोहादि उसके निकट से सर्वदा तिरस्कृत और अपमानित होते हैं इसी कारण अङ्गद कर्तृक रावण के दशों मुकुट ताड़ित हुये। सुखेन ध्यान स्वरूप था ध्यान परायण योगी किसी काल में रोगी नहीं होता इसी कारण सुषेण लंकापुरी देहके वैद्य हैं ध्यान और योगही भवरोग की महौषधि है। सोच और

समझ के देखने पर मालूम होता है कि रामायण में सर्वत्र आध्यात्म तत्वही व्याख्यात है। हम पहिले ही लिख चुके हैं कि विभीषण विवेकस्थानीय है, लङ्कापुरी देह में जैसे मोहादि वास करते हैं वैसेही विवेक भी उसमें रहता है परन्तु एक स्थान में वास करके भी उनमें सदा सर्वदा विवक्षता और शत्रुता भाव रहता है। मोहादि का लक्ष्य केवल विषय है। विवेक का लक्ष्य परमात्मा है। इस कारण प्रबल विपक्षियों के द्वारा विवेक सर्वदा ही पीड़ित रहता है और दुःख भोग करता है, परन्तु जब विवेक द्वारा जीव परमात्मा का आश्रय ग्रहण करलेता है तो मोहादि उसका कुछ अनिष्ट नहीं कर-सक्ते हैं रावण सर्वदाही पाप कार्य में लिप्त रहा विभीषण ने सर्वदा सत् परामर्श उसको दी रावण उनके सत्य भाषणपर कान भी नहीं धरता था। अन्तपर विभीषण रावण के अत्याचार को सहन न करके रामरूपी परमात्मा का आश्रय ग्रहण करके दुःख से निष्कृति को पहुंचा है। सुमति विवेक की पत्नी विवेक द्वारा परिचालित होकर सर्वदा ज्ञान की सेवा में रहती है। विभीषण की पत्नी सुमति सरमा भी अशोकवन में सीता जीकी परिचर्य्या कार्य में नियुक्त रही। सुमति जिस प्रकार ज्ञान की परिचर्य्या कार्य्य में रहती है। वैसे कुमति ज्ञान के विमुख परिचर्य्या करती है। कुमति ईर्षा असूया, (द्वेष) ज्ञान को कुमार्गाभिमुख परिचालित करने की चेष्टा में रहती है। यथा अशोक वनमें राक्षसी चेटियां सीता जीको रावण के वशमें लाने के लिये अनेक प्रकार की

चेष्टा करती थीं ज्ञान सदा शोक रहित है सो सीता जीका बास अशोक विटप के नीचे था। योग साधन सेही मोहादि शत्रुओंका नाश होता है इसी कारण बानरों के द्वारा मोहान्ध राक्षसों का विनाश लिखा है। जीव सर्वदा ही मोहादि द्वारा आक्रान्त होकर, अत्यन्त क्लेश अनुभव करता है, संकर्षणाख्य जीव स्वरूप लक्ष्मण ने रावण के शक्ति शैल से विद्ध होकर अत्यन्त कष्ट भोग किया। मोहादि दुष्ट संगति से ज्ञान में मलीनता उत्पन्न होना सम्भव है। किन्तु योगाग्नि प्रज्वलित करने से वह मलीनता विनष्ट होजाती है। सीता जी ज्ञान स्वरूपा होने पर भी मोह रूप रावण के ग्रह बास करने के कारण उनकी उद्धार के पश्चात् श्री रामचन्द्र ने अग्नि परीक्षा कराई थी। देह रूप लङ्का में मोहादि के प्रबल पराक्रान्त होने पर भी जीव विवेक बुद्धि द्वारा परमात्मा की शरण ग्रहण करलेने पर मोहादिकों का ध्वंस साधन करके शान्ति और सुखमें मग्न रहसक्ता है। जैसा विभीषण रावणादि के विनाश के पीछे लंकापुरी में शान्ति से राज्यशासन करते रहे हैं। जीवलोभ मोहादिद्वारा कितनाही क्यों न दबा हुआ हो परन्तु विवेक कभी जड़मूल से विनिष्ट नहीं होता कभी नो कभी समय पाकर विवेक बुद्धि प्रबल होकर मोहादिकों को नाश करदेता है ऐसेही रावण प्रबल पराक्रान्त होने पर भी नाश को प्राप्त हुआ और दुर्वल विभीषण अमर पद लाभ करके शान्ति से राज्य करता हुआ। जीव सात्विक भावापन्न भगवद्दर्शन लाभ करता है कृष्णावतार में बसुदेव सात्विक भावा

पन्न जीव थे इसी कारण परमात्मा श्री कृष्णचन्द्र ने उनके यहां जन्म ग्रहण किया। शास्त्रदिष्ट धर्मादिकार्य करने से जीव सात्विक भावापन्न होजाता है। धृति १ क्षमा २ दम ३ अस्तेय ४ शौच ५ इन्द्रिय निग्रह ६ धी ७ विद्या ८ सत्य ९ अक्रोध १० यह दश धर्म्म के लक्षण हैं। इन दश विधि लक्षणाक्रान्त जन सात्विक भावापन्न जीव होता है जो लोग इन दश विध धर्म मार्ग में चलते हैं वेही सात्विकता को प्राप्त होते हैं और सात्विकता प्राप्ति से भगवत्साक्षात्कार प्राप्त होता है। दश-रथ जी दश विध धर्म्माचरण द्वारा परमात्म स्वरूप पुत्र को प्राप्त हुए थे। वे दश धर्म्म रथारूढ़ होकर कभी सत्य मार्ग से बिचलित नहीं हुये इस कारण श्री रामचन्द्र को पुत्र स्वरूप पाया रामायण जिस प्रकार ऐतिहासिक बृत्तान्त मे निवद्ध है तद्रूप आध्यात्मिक तत्व से भी परिपूर्ण है, तत्व ज्ञानीजनों के लिये निकट रामायण योगशास्त्र का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। छा-न्दोग्य उपनिषद में देवासुर संग्राम भी ऐसे तत्व से परिपूर्ण है। प्रति देह में प्रति मुहूर्त्त में राम रावण युद्ध का व्यापार संघटित होता रहता है भव समुद्र में भासमान देहही लंकाद्वीप काम क्रोध असत्प्रकृति इन्द्रिय समूह को प्रबलता से बांधेहुये है कि जिस्से जीव परमात्मा से बिच्युत होरहा है। परन्तु जीव बिबेक बुद्धि और योगके सहायता से असत् प्रकृतियों को दमन करके परमात्मा मिलने का लाभ करसक्ता है रावण बधके पश्चात् सीता उद्धार होसक्ती है अर्थात् मोहादि बिनाश

भिन्न तत्व ज्ञानोद्धार असम्भव है । यहही रामायण में ऐति-हासिक अन्तःस्थित आध्यात्मिक उपदेश है ॥

॥ पंच मकार ॥

मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन, तंत्रोक्त, पञ्च विधि उपासना का यथार्थ भाव साधारण लोग न जानकर मदिरा पान से उन्मत्त और मांस भक्षण में प्रवृत्त पाये जाते हैं और इस अत्याचार से मोक्ष के इच्छुक होते हैं यह उनका पूर्ण भ्रम है । जो लोग पञ्च मकारका यथार्थ भाव जानना चाहते हैं उनको उचित है कि यथार्थ शास्त्रों में अवलोकन करके सत्गुरु की शरण लेकर आनंद की प्राप्ति से सुख लाभ करें आगम सार तन्त्र के पाठ करने से पंच मकारों का यथार्थ मर्म्म विदित होता है । शिव पार्वती सम्वाद में निम्न लिखित श्लोक देखिये ॥

सोमधाराक्षरेद्यातु ब्रह्मरन्ध्रात्वरानने ।
पीत्वानन्दमयस्तांयः सएवमद्यसाधकः ॥

शिवजी कहते हैं कि हे वरानने (पार्वती) ब्रह्मरन्ध्र से जो अमृत धारा गिरती है जो उसको पीकर आनन्द मय होता है वही मद्य साधक है योग शास्त्र के देखने से ज्ञात होगा कि वह अमृत धारा जो ब्रह्मरन्ध्र से निर्गत होती है उसमें कलार की भट्ठी की मदिरा से कुछभी सम्बन्ध नहीं है इसी प्रकार अन्य मकार भी योगाङ्ग हैं ॥

माशब्दात् रसनाज्ञेया तदंशात् रसनाप्रिये।
सदायो भक्षयेद्देवी सएव मांस साधकः॥

मा, नाम रसना (जीभ) का है उसका अंश वाक्य,जो उस वाक्य को भक्षण करता है अर्थात् मौनावलम्बन करसक्ता है वही मांस साधक है॥

गङ्गायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौद्वौचरतः सदा।
तौमत्स्यौभक्षयेत्यस्तु सभवेन्मत्स्यसाधकः॥

गङ्गा यमुना के मध्य में सदा दो मत्स्य विचरते हैं जो उनको भक्षण करे वही मत्स्य साधक है। गङ्गा और यमुनाके शब्दों से इड़ा और पिङ्गला शरीर की नाड़ियां लीजाती हैं इड़ा नाड़ी शरीर के दक्षिण भागमें और पिङ्गला नाड़ी वाम भाग में है। इन दोनों नाड़ियों के मध्यमें निःश्वास और प्रश्वास गमनागमन करते हैं उनको मत्स्य (दोमच्छी) कहते हैं। रेचक, पूरक गति निःश्वास, प्रश्वास को निरोध करके (जिसको कुम्भकावस्था कहते हैं) सुषुम्नान्तर्गत प्राणायाम साधन करलेता है वही मत्स्योपासक है॥

सहस्रारेमहापद्मे कर्णिका मुद्रिताचया।
आत्मातत्रैव देवेशि केवलं पारदोपमः॥
सूर्यकोटि प्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलं।
अतीव कमनीयञ्च महाकुण्डलिनीयुतं॥
यस्यज्ञानो दयस्तत्र मुद्रासाधकउच्यते॥

कर्णिकान्तर्गत पारदन्याय विशुद्ध आत्मा अवस्थित है जो कोटि सूर्य समान प्रकाशमान और कोटि चन्द्र सम सुशीतल अत्यन्त कमनीय (मनोहर) कुण्डलिनी शक्ति, संयुत है। जिसको आत्मा विषय का यह पूर्ण ज्ञान होजाता है, वही मुद्रा साधक है, योग शास्त्रमें जिसको किंचिन्मात्र अधिकारहै वह अल्प परिश्रम से इसको समझ सक्ता है परन्तु जो योग को नहीं जानता वह अन्धवत् टटोलता है ॥

मैथुनंपरमंतत्वं सृष्टिस्थित्यन्त कारणं ।
मैथुनाज्जायतेसिद्धि र्ब्रह्मज्ञानंसुदुर्लभम् ॥
रेफस्तुकुम्कुमाभासेकुण्डमध्येव्यवस्थितः ।
मकारश्चविन्दुरूपो महायोनौस्थितःप्रिये ॥
अकारोहं समारुह्य एकताच यदाभवेत् ।
तदाजातं महानन्दं ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम् ॥
आत्मनिरमतेयस्मादात्मारामस्तदुच्चते ।
अतएवरामनाम तारकं ब्रह्मनिश्चितम् ॥
मृत्युकाले महेशानि स्मरेद्रामाक्षरद्वयं ।
सर्वकर्माणिसत्यंज्यस्वयंब्रह्म मयोभवेत् ॥
इदन्तु मैथुनं तत्वं तवस्नेहात्प्रकाशितं ।
मैथुनं परमंतत्वं तत्वज्ञानस्य कारणम् ॥
सर्वपूजामयं तत्वं जपादीनां फलप्रदं ।
षडङ्ग पूजयेद्देवी सर्वमन्त्रं प्रसीदति ॥

आलिङ्गनंभवेन्न्यासंचुम्बकंध्यानमीरितं।
आवाहनं शीतकारं नैवेद्यमनु लेपनम् ॥
जपनं रमणं प्रोक्तं रेतःपातञ्च दक्षिणां।
सर्वमेव त्वयागोप्यं ममप्राणाधिकंप्रिये ॥

अर्थात् मैथुन, सृष्टि स्थिति और प्रलय को कारणस्वरूप परमतत्त्व है। इससेही दुर्लभ ब्रह्मज्ञानकी उत्पत्ति होती है। जिसप्रकार स्त्री पुरुष संयोग साधन मैथुन क्रिया होती है। तद्रूप जीवात्मा और परमात्मा के संयोग से योग रूपी मैथुन से दुर्लभ ब्रह्मज्ञान का जन्म होता है जीवात्मा में रमण करने वाले ब्रह्म को आत्माराम वा राम इसी कारण कहते हैं राम अर्थात् र, अ, म, तीन अक्षर विशिष्ट हैं स्त्री और पुरुष का जिसप्रकार पुरुष की सहायता से मिलन होता है वैसेही हंस रूप अ, कारके सहायता से र, और म, का योग होता है, मृत्युकाल में जो रामनाम स्मरण करता है वह सर्व कर्म परित्याग पूर्वक ब्रह्ममय होजाता है हे पार्वती तुम्हारे स्नेह वश मैथुन तत्त्व का वर्णन किया षडंग द्वारा पूजन से सर्व मंत्र प्रसन्न होते हैं। आलिङ्गन न्यास, चुम्बक ध्यान, शीत्कार आवाहन, अङ्ग बिलेपन नैवेद्य, रमण जप एवं रेतः पातको दक्षिणा कहा है। जैसा कि योग मार्ग अवलम्बन करनेवाले जनों को प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारण, और समाधि है, वैसेही वैष्णव सम्प्रदाय में, शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर, हैं तैसेही शाक्तों में मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा मैथुन हैं। धन, स्त्री मदिरा मांस और मत्स्य इत्यादि जिसको

अज्ञ समझ रहे हैं और अत्यन्त प्रिय पदार्थ मान रहे हैं तन्त्र शास्त्र उनको नहीं कहता, यह सब पदार्थ भोग और तामसिक विषय के उत्पादक हैं, जिससे यथार्थ दुःख ही की प्राप्ति होती है ॥

॥ ग्रहण ॥

हिन्दुओं की बहुत सी बातें अभीतक अनेकों नई रोशनी वालों की समझ में नहीं आई हैं, वह नहीं जानते कि उन चमत्कारों का मूल क्याहै, जब ग्रहण पड़ता है तब अनेकों पुरुष कुरुक्षेत्र हरिद्वार में जाकर दान पुण्य करते हैं, हरएक शहर में ग्रहण समय में हिन्दू दान करते हैं, और दान लेने वाले पुकारते फिरते हैं कि–"दानका समय है दान करो दान करो" ऐसी दशा देखकर मुसलमान, ईसाई, पारसी, बौद्ध, ब्राह्म और दयानन्दी आदि सब हँसते हैं कि–इन हिन्दुओं की क्या मत मारी गई है जो ऐसा शोर मचारक्खा है, क्या यह लोग ऐसा करने से ग्रहण को रोक देंगे ? इनके इस दान का सूर्य चन्द्रमा वा भूमण्डल पर क्या असर पड़ैगा ! ऐसे मौकों पर दयानन्दियों की तौ खूबही चढ़ बनती है वह ऐसे समय अनेकों साधारण पुरुषों को बहका लेते हैं, और हरएक अनजान पुरुष के ऊपर इस बात का असर तुरन्त पड़जाता है, परन्तु नहीं सब हिन्दू कम समझ नहीं हैं जो ग्रहण काल में इतना बेकार झगड़ा करते हैं, हमारे पूर्व पुरुष बड़े प्रवीण थे, जिस बातका उन्होंने प्रचार कियाहै बड़ी बुद्धिमता और

अन्वेषण (खोज) के साथ किया है, जो आजकल के नव-शिक्षित उनकी प्रचारित बातोंपर हँसते हैं वह अपने घरके खजाने को बिलकुल नहीं जानते, वह क्या जाने कि-ग्रहण क्या वस्तु है, और हिन्दू लोग ग्रहण के समय क्यों त्राहि २ करते हैं और घबड़ा जाते हैं एवं यथा शक्ति दान करते हैं पुरानी नीति रीति के जानने वाले लोग जानते हैं कि राहु और केतु दो ग्रह जो सूर्य वा चन्द्रमा को ग्रस लेते हैं, उसके छुड़ाने के लिये यह दान किया जाता है, नव युवक इस बात पर हँसते हैं, क्योंकि उनको स्कूलों में सिखाया गया है कि-सूर्य और पृथिवी के बीचमें जब चन्द्रमा आजाता है तब सूर्य ग्रहण होता है, राहु केतु आदि कोई सूर्य को नहीं पकड़ता है, और न दान देनेसे ग्रहण रुकसक्ताहै, इसप्रकार प्राचीन प्रथावलम्बी और नवशिक्षित पुरुषों के कथनमें भेद है परन्तु दोनों का उद्देश्य यहही है कि सूर्य और पृथिवी के बीचमें कोई सितारा आजाता है जो सूर्य को पृथिवी पर निवास करने वालों के नेत्रोंका अगोचर करदेताहै कभी २ ऐसा भी होजाता है कि एक साथ कै एक सितारे पृथिवी और सूर्यक बीचमें आजाते हैं, परन्तु चन्द्रमा पृथिवी कई बहुत समीप है इसलिये हरएक सूर्य ग्रहण के समय चन्द्रमा का बीच में आजाना जरूरी है, अब इन सितारों के सूर्य और पृथिवी के बीचमें आजाने से क्या होसक्ता है इस बात का जानना आवश्यकहै जो लोग ज्योतिष विद्याके जानकारहैं वह जानते हैं कि-यदि ग्रहण के समय सिवाय चन्द्रमा के और सितारे

इकट्ठे सूर्य और पृथिवी के बीचमें कुछ समय तक रहैं तो पृथिवी पर जो सूर्य की कशिश पड़ती रहती है उसमें न्यूनाधिक भाव और थोड़ी सी रुकावट तक का होना संभव है और ऐसा होने से पृथिवी को ऐसा झटका लगने का भी सन्देह होसक्ता है कि–जिससे बड़ाभारी भूकम्प होजाय और समुद्र उछल पड़ैया और कोई अतर्कित आपत्ति आजाय यद्यपि बहुत कालसे ऐसा मौका सुनने में नहीं आया और ईश्वर करे आगेकोभी कभी ऐसा समय नआवै, परन्तु संभव है कि शायद किसी ग्रहण के समय ऐसी आपत्ति आजाय, बस जिन अनुभवी बिद्वानोंने प्राचीन विद्याके द्वारा इसबातों को जानकर सर्व साधारण में प्रकट किया उन्होंही ने यहभी उपदेश दिया है कि यदि कोई महती बिपत्ति आनेका सन्देह होतो उसका उपाय सिवाय इसके और कोई नहीं है कि तीर्थ आदि पवित्र स्थानोंमें ईश्वर की प्रार्थनाकरै अपने पापों की क्षमा मांगे, यथा शक्ति दान करै क्योंकि–आपत्तियों को टालने के लिये दान भी एक अनोखी वस्तु है बस यह ही कारण है कि हिन्दू लोग ग्रहण के समय बहुत भयभीत होते हैं, दान करते हैं तथा त्राहि त्राहि करते हुए परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं ॥

(२)

हिन्दुओं की प्रायः जितनी क्रिया, आचार, नित्य कर्मादि पुरानी बातैं हैं नई रोशनी वालों के उथले दिमाग में क्यों

कर जमसक्ती हैं ! गत जुलाई मास की छठी संख्या में जो व्याख्यान ग्रहण स्नानादि का श्रीयुक्त श्री माष्टर सूर्यनारायण मुरादाबाद निवासी जीने प्रकाश किया उसमें पूर्ण रीति से स्वीकारकर उन नई रोशनी वालों के मतानुसार अपने पूर्व ऋषि मुनियों के गुप्त भेदको प्रकट किया चाहताहूं कि जिसमें उथले से भी उथले दिमाग वालों के मग्ज में फौरन जगह पकड़ लेवे और दूसरे २ कारणान्वेषियों का भी भ्रम दूर हो जिन्हें इन सब आचरणों पर विश्वास नहीं, जो इसे देख हँसते है. और अपने पूर्व पुरुषों को निर्बोध समझ लेते हैं उन्हें केवल ग्रहण दानही क्यों वरंच तन्त्र मन्त्र यन्त्र रमल तिल स्मादि सब विषयों पर वल्कि हिन्दुओं की बात २ पर हँसी आती है। इतनी तो कुशल है कि वे हँसते हैं रोते नहीं। यन्त्र क्याहै ! आप वैद्यक शास्त्र देखें अथवा पदार्थ विद्यादी देखें कि तावें का गुण क्या है। जिसके दस्त बंद नहीं फौरन उसके बाजू पर एक तांबे का पैसा कपडे में रखकर बांध दो दस्त बंद होजायँगे। तांबे में तड़ित शक्ति अधिक रहती है और दस्त संसर्ग से शीघ्र प्रकट होती है। तांबे में आकर्षण शक्ति भी अधिक है इसी कारण बिजली के लोहे जो इमार तों के कंगूरों पर लगाए जाते हैं उनमें तांवे हीके पत्र पृथिवी के भीतर डाले जाते हैं बैटरियों में इसके तार रहने हैं, हिन्दु ओं के देव ऋष्यादि कर्म्मो में भी इसका अधिक व्यवहार है यथा अर्घ पंचपात्र आचमणि आदि। यन्त्र जो शरीर के रक्षाके निमित्त अथवा नाना प्रकार के दैविक भौतिकादि उप

द्रवों की शान्ति के लिये व्यवहार किया जाता है, धातु के पत्र में मढ़ाजाता है विशेषकर सोने वो तांबे का तावीज ही शुद्ध माना जाता है। अष्टगन्ध से लिखने से भी मतलब यही है, उन आठ प्रकारके सुगन्ध वस्तुओं के मिलावट से जो एक प्रकार की रसायनिक क्रिया उत्पन्न होती है वो जिसे भोज पत्र पर लिखकर चिरस्थायी करने के हेतु तांबे आदि के तावीजमें बन्दकर दिया जाता है, जिसमें स्वयं तड़ित् शक्ति उत्पन्न करने की क्षमता है। मैं उक्त विषय में अधिक और कुछ कहा नहीं चाहता हूं क्योंकि मैं कुछ और ही कहने को था पर बात पर बात आने से उक्त विषय में कुछ कह देनाभी वृथा न समझा। दूसरा सवाल हमारा यह है कि तिलस्म किसे कहते हैं और क्यों बनाया जाता है? बहुतेरों ने खासकर हातिमताई नामक पुस्तक के सातवें सवाल में तिलिस्म के विषय में बहुत कुछ पढ़ सुनकर उसे जादूकी क्रिया समझा है पर नहीं तिलिस्म में वे बातें नही हैं। तिलिस्म वही शख्स तैयार करता है जिसके पास बहुत माल खजाना हो और कोई वारस नहो, तब वह अच्छे २ ज्योतिषि और नजूमियों से दर्याफ्त करता है कि उसके या उसके भाइयोंके खानदान में कभी भारी प्रतापी वो लायक पैदा होगा या नहीं जब वे लोग इस बात का पता देते हैं कि इतने दिनके वाद अमुक लड़का होगा वल्कि उसकी जन्मपत्री वो तस्वीर भी लिखकर तैयार कर देते हैं, उसीके नाम से खजाने को पृथिवी में सौंप कर उसपर तिलिस्म बांधा जाताहै। तिलिस्मबांधने के पहिले

बड़े २ ज्योतिषि, नजूमी, वैद्य, कारीगर, आदि इकट्ठे किये जाते हैं उन्हीं लोगों के कहे मुताबिक तिलिस्म बांधने की जमीन तलाशी जाती है, उसी जमीन के अन्दर खजाना रख कर ऊपर तिलिस्मी इमारत बनाई जाती है उसमें वे विद्वान अपने २ इल्म वो हुनर के मुताबिक उस खजाने के छिपाने वो रक्षाके लिये बन्दिश करते हैं। मगर साथही इसके उसके नक्षत्र और ग्रहों का भी ख्याल रखते हैं जिसके लिये वह खजाना रक्खा जाता है। अधिक कहना वृथा समझ, मैं रमल की ओर झुकता हूँ। रमल जिस२ धातु से बनाया जाता है और रमल के साथी ग्रह, राशि नक्षत्र तारों के असर पड़ने वाली जितनी धातुएं हैं दोनों के संबन्ध से रमल विद्या उत्पन्न हुई है उसीके सहारे पृथिवी के सब प्रकार के पदार्थों के विषय रमल बता सक्ता है। अब रहा ग्रहण जिसके कारण के विषय में कुछभी मैं लिखा नहीं चाहता क्योंकि वह बात साधारण है और उसे सब जानते हैं कि वह छाया कर्तृक घटना है, खैर आकर्षण शक्ति सब वस्तुओं में एक दूसरे के साथ सदाबनी रहती हैं सितारों नक्षत्रों और ग्रहों की कशिश पृथिवी पर तथा पृथिवी के सब स्थावरजङ्गमादि पदार्थों पर भी वित्तानुसार बनी रहती है कि जिसकी गणना ज्योतिष के जरिये कीजाती है इस गणना का फल सब समय एक नहीं रहता है कालस्थानादि के परिवर्तन से तबदील होता रहता है, और विशेष कर ग्रहण के समय में जो कहा जाता है कि फलाने राशि वालों के लिये शुभ

और अमुक के लिये अशुभ है उसका भी यही कारण है कि यह ग्रहण फलाने तारे वा नक्षत्र कर्तृक होगा वो उस समय फलाने २ ग्रह वा नक्षत्र अमुक २ स्थान पर या पृथिवी वो सूर्यसे इतने २ दूरपर रहेंगे तो ऐसी अवस्थामें सूर्यकी कशिश में रुकावट पड़जाने से और सब ग्रहों की कशिश पृथिवी के सब पदार्थों पर तो बनीही रही केवल सूर्य्य की कशिश ह्रास होगई इस से गणना के हिसाब से अमुक २ राशिवालों पर उन ग्रहों की कशिश इस ढंग की होगी और कशिश प्राणियों की सञ्चालन शक्ति की गति मात्रपर अधिकार रखती है इसी कारण उसका फल भी हरेक के लिये भिन्न २ होता है पदार्थ विद्या से आपको यह भी विदित होगा कि नोखीले वस्तुओं में बिजली खेंचने वो निकालने की ताकत रहती है जिस सबब से मकानोंपर बिजली का तार लगाया जाता है यह नई बात नहीं है हमारे पूर्व ऋषियों को भी खूब मालूम थी तभी तो तीनों सन्ध्या के समय सूर्य को प्रणाम करनेकी जुदा तीन मुद्रा रक्खी गई हैं अर्थात् सूर्यही के ओर अपने शरीर के नोखीले अंश को (याने अँगुलियों को) उद्देश करके नमस्कार करते हैं ताकि अपने शरीर का रोगरूपी विकार उन्होंके द्वारा निकलकर सूर्य की ओर आकर्षित होवे वो नवीन सूर्य स्थित उत्तेजक तड़ित् शरीर में प्रवेश करे। अब मैं फिरभी अपनी पूर्वोक्त बातों पर ध्यान दिलाता हूं कि तांबे में आर्षकण शक्ति है क्या केवल तांबेही में है सो नहीं मुक्ता माणिक सोने चांदी आदि सबहीमें है इसीसे डाक्टरोंने भी

कहा है कि पैसे को धोकर हाथमें लेना चाहिये क्योंकि उसे सब छूते हैं कुष्ट रोग वालों के हाथमें भी जाता है इस वजह से उसमें बुरी तासीर पैदा करने वाली खासियत रहने से छूने वालों को अनिष्ट करसक्ता है और करता भी है जिसके संकेत में मैं यह कहता हूँ कि आप लोगों ने अक्सर सर्राफों के हाथ में अपरस (जोकि एक प्रकार की कुष्ट है) देखा होगा हां खूब याद आया आप ज्योतिषी से पूछैं वह कहसक्ते हैं कि फलाने नक्षत्र की तासीर धातु वा मणि मुक्तादि पर इस प्रकार की होती है। खैर जोहो आपतो अब यह समझही गये होंगे कि हमारे बुद्धिमान् दूरदर्शी पूर्व ऋषि मुनियों ने क्यों ग्रहण के समय दान करना कहा है यदि अवभी नहीं समझे होतो मैं दोहराकर कहेदेताहूं कि ग्रहण के समय जबकि सभों की तड़ित् शक्तिमें न्यूनाधिक होने के कारण दोष होने की सम्भावना रहती है अतः लोगों को अपने २ शरीरके दोषों को सोने तांबे रूपे आदि पदार्थों में प्रवेश कराकर (अर्थात् छूकर) अपने शरीर के नोखीले भागों द्वारा (अर्थात् करके अंगुलियों से औरों को दान देवे ताकि शरीर बिकार रहित होवे और इसी कारण ब्राह्मण लोग उस समय का दान नहीं ग्रहण करते सिवाय नीच पुरुषों के ॥

॥ गर्भाधान ॥

गर्भाधान अत्यन्त सावधानी से करनेयोग्य गुरुतर कार्य है जो निकृष्ट पशु स्वभाव की तृप्ति करने के लिये समय कुस

मय का विचार न करके, परस्पर की शारीरिक और मान सिक अवस्था की ओर ध्यान न रखकर यथा तथा और जिस तिस समय स्त्री सहवास करते हैं, उनके लिये यह विचारणीय कार्य नहीं है, क्योंकि उनका स्वभाव अत्यन्त दूषित है, परन्तु जो निज वंश निज जाति और निज देशके भविष्यत् में मंगल की ओर दृष्टि रखकर, हमको एक प्रकृति का पवित्र कार्य यथोचित रीतिसे सम्पादन करना है ऐसा मनमें विचारकर स्त्री सहवास करते हैं, उनके लिये गर्भाधान बड़ा गुरुतर कार्य है, वैज्ञानिकोंका कथन है कि-गर्भाधान के समय स्त्री पुरुष की शारीरिक और मानसिक अवस्था जैसी होगी, गर्भसे उत्पन्न हुए बालक की भी शारीरिक और मानसिक अवस्था ठीक वैसीही होगी. यह कथन वास्तवमें स्वीकार करने योग्य है, इसी कारण हमारे पुराने शास्त्रकार, शुभदिन में शुभक्षण में स्वस्थ शरीर और प्रसन्न चित होनेपर गर्भाधान की बिधि लिख गए हैं, । परन्तु उस मंगल मय बिधिको कितने पुरुष मानते हैं ! कितने पुरुष पुत्रोत्पादन के अभिलाषी होकर पवित्र हृदय से स्त्रीका सहबास करते हैं ! बिचारकर देखने से ध्यान में आसक्ता है कि-सम्पूर्ण मनुष्य समाज कितना पतित होगया है ! मनुष्यों का स्वभाव कितना पशुओंकी समान होगया है ! पशुभी अनेकों बिषयोंमें मनुष्यों की अपेक्षा श्रेष्ठहैं, पशुभी यथा समयपर स्त्री सहवास करते हैं, परन्तु मनुष्यों को समय कुसमय का कुछ विचार नहीं है, पात्र अपात्र का कुछ बिचार नहीं है, मनुष्यों

के उद्देश्य निन्दित हैं, अभिप्राय कुत्सित हैं, और आचरण अत्यन्त कलंकित हैं। यह जो प्रतिवर्ष असंख्य बालक कालके गालमें चले जाते हैं, अगणित गर्भस्थ बालक गर्भ मेंही नष्ट होजातेहैं सैकड़ों स्त्री पुरुष अकाल मेंही इस लोकको त्यागते चले जाते हैं, इसका कारण क्याहै? जिस देशमें पहिले प्रायः प्रत्येक ग्रहमें धार्मिक और परम बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न होते थे भीम और प्रतापसिंह की समान वीर पुत्र उत्पन्न होते थे उसी देशमें आज हीन मेध, क्षीणबुद्धि, धर्मज्ञान हीन दुर्बल और पुत्र नामके अयोग्य बालक उत्पन्न होतेहैं, इसका कारण क्याहै? क्या वह सब उनके अपने २ कर्मकाही फलहै? क्या इसमें माता पिता का दोष नहीं है? पिता माता यदि विचार कर यथोचित् समय पर स्वस्थ शरीर और प्रसन्न चितसे पर स्पर सहवास करते यदि उनका पुत्रोत्पादन रूप पवित्र अभिप्राय होता तो उनकी सन्तति इसप्रकार अगणित रोग शोकों से ग्रस्त नहीं होती। गर्भाधान के समय स्त्री पुरुषका शरीर स्वस्थ एवं मन प्रसन्न तथा पवित्र होनेपर और गर्भाधान को अत्यन्त सावधानता के साथ करने योग्य कार्य स्मरण रखने पर गर्भ से बलिष्ट और बुद्धिमान सन्तति उत्पन्न होती है। भ्रूणके क्रमसे स्फुरण कालको गर्भकाल वा गर्भावस्था कहतेहैं यह अवस्था गर्भिणी के लिये अतीव सङ्कटमय होती है, उस समय उसके शरीर में नानाप्रकार की अवस्था होती हैं उस समय उसको हर समय बड़ीही सावधानी से रहना होता है क्योंकि उसके शारीरिक और मानसिक मङ्गल के ऊपरही

गर्भस्थ भ्रूणका समस्त मङ्गल है, उसका शरीर स्वस्थ होनेपर भ्रूण का मङ्गल होता है और उसका शरीर अस्वस्थ होनेपर भ्रूण भी अस्वस्थ होता है और नष्टतक होजाता है। उसका रुधिर दूषित होनेपर भ्रूण का रुधिर दूषित होजाता है, और यदि उस गर्भणी का रुधिर विशुद्ध और शरीर निराम होय तो भ्रूणभी विशुद्ध भावसे परिपुष्ट होता है, जबकि गर्भस्थ शिशुके मङ्गलके ऊपर पिता माता का ही नहीं किन्तु विशाल मनुष्य मण्डली काभी सुख और उन्नति निर्भय है तब ऐसे सङ्कटमय समयमें बड़ीही सावधानी से गर्भणी की रक्षा करना चाहिये। प्राचीन हिन्दू और ग्रीक निवासी गर्भणी की जिसप्रकार यत्नके साथ रक्षा करते थे, पृथिवी की अन्य किसी जाति कोभी उसप्रकार रक्षा करते हुये नहीं देखतेहैं हिन्दुओं का कथन है कि गर्भिणी को सदा प्रसन्न रखना चाहिये उसको हरसमय सुनीति और सत्कथा सुनाना चाहिये अर्थात् जिस प्रकार उसका मन स्वस्थ और आनन्दित होय एवं चित्तकी सकल सद्वृत्तियें स्फुरित हों, ऐसे उपायों को विशेष ध्यान देकर करता रहै जिससे भय शोक और दुःख का उदय न होने पावै जिससे मनमें कलुषित भावका विकाश न होने पावै "ऐसी बात चीत हाव भाव आदि करै, इस विषय में प्राचीन ग्रीकजातिका भी विशेष ध्यान था, जिससे गर्भिणी की शारीरिक और मानसिक वृत्तियों की उन्नति हो ऐसेही उपायों को वह करते थे, इसही अभिप्राय से वह गर्भिणी को सुमधुर सङ्गीत सुनाते थे, सुन्दर २ चित्र दि-

खाते थे एवं सुदृश्य अनेकप्रकार की बडे २ कारीगरों की बनाई वस्तुयें गर्भिणी के नेत्रों के सामने रखते थे। चिकित्सा के तत्वको जाननेवाले विद्वानों का कथन है कि-गर्भावस्थामें गर्भिणी का अन्तःकरण सर्वदाही उद्विग्न दशामें रहता है, सहजमें ही उसके दुःख अभिमान एवं रोष का उदय होजाता है, एकवार इन वृत्तियों का उदय होनेपर यह दमन नहीं करसक्ती है तब इसका परिणाम अतिभयङ्कर होता है,इससे गर्भस्थ भ्रूण और माता दोनों कोही महती विपत्ति प्राप्त होने को अवसर आजाता है, इसलिये सदा गर्भिणी को मधुर वचनों से सन्तुष्ट रक्खै और मिष्ट वार्त्तालापसे उसके चित्तकी मलीनता को दूर करै। गर्भाधान के समय स्त्री पुरुष को जिस प्रकार सावधानी से रहना होता है-गर्भावस्था में उससे भी अधिक सावधानी से रहै, ऐसा करने में गर्भावस्था में स्त्री सहवास का त्याग करना ही होगा, इसविषय में अन्य प्राणियों की ओर दृष्टि देना चाहिये, किस २ समय स्त्री सहवास करना चाहिये इस वार्त्ता को मनुष्यों की अपेक्षा पशु अधिक समझते हैं, गर्भावस्था में वह कभी संसर्ग नहीं करते हैं, इसका फल कैसा मङ्गल कारक होता है सो सहजमें ही बुद्धिस्थ होसक्ता है, परन्तु आश्चर्य यह कि-पशु जिस कार्य को दूषित और अनिष्ट कारक जानकर त्याग देते हैं, अपने अभिमान से मत्त हुये मनुष्य, जगत् में अपने श्रेष्ठ जीव होने की स्पर्धा करकै भी प्रसन्न मुख और निःसङ्कोच उस कार्यके करने में प्रवृत्त होते हैं, गर्भावस्था में स्त्री संसर्ग अत्यन्त दूष-

णीय और त्याज्य है, इसको कोई एकबार भी विचार कर नहीं देखता है। जघन्य इन्द्रिय पिपास्य की शान्ति करने के लिये अनेकों मनुष्य अपना और गर्भिणी का सर्वनाश करते हैं, तथा होनहार सन्तान के सुख और उन्नति के मार्ग में अपने हाथों से कांटे बोते हैं। सकल जगत् को तन्न २ करके खोजने पर यही निश्चय होगा कि-मनुष्य के सिवाय और कोई प्राणी भी गर्भिणी के ऊपर ऐसा पाशवव्यवहार नहीं करता है। इससे मनुष्य का मनुष्यत्व कहां रहा ? हा ! ऐसी दशामें मनुष्य पशु पक्षियों से भी अधम है। आज जो असंख्य सन्तान को मृगी मूर्च्छा आदि नानाप्रकार के रोगों से पीड़ित देखते हैं, लक्षों पुत्र एवं कन्या मूर्ख-विक्षिप्त और उन्मत्त होते हैं उनमें कोई विकलाङ्ग और कोई विकृत बुद्धि होते हैं, इसका कारण क्या है इसका कारण और कुछ नहीं है, केवल मनुष्य की उत्कट सम्भोग पिपासा ही है। इस अधम कार्य के द्वारा केवल होनहार सन्तान का अमङ्गल होता है इतनाही नहीं है, किन्तु गर्भिणी को भी अतीव पीड़ा होती है, किसी समय गर्भस्राव-जरायुका प्रदाह और धातक होजाता है, किसी समय और अनेकप्रकार की पीड़ायें भी प्राप्त होजाती हैं, इन सब विषयों का विचार करके मनुष्य मात्रको गर्भावस्था में स्त्री संसर्ग से बचे रहना चाहियें गर्भावस्था गर्भिणी के लिये बडेही सङ्कट का समय होता है, स्वास्थ्य रक्षा में साधारण त्रुटि वा अनियम से अथवा अल्प मात्र अत्याचार से भी गर्भिणी का एवं उसके साथ गर्भस्थ

शिशु का स्वास्थ्य नष्ट होजाता है, इसीलिये उस समय गर्भिणी का स्वास्थ्य जिससे अक्षुराण (यथोचित) रहे इस विषय की ओर विशेष दृष्टि रखना आवश्यक है, इससे केवल गर्भिणी काही हित होगा, ऐसा नहीं है किन्तु, गर्भस्थ शिशु का भी स्वास्थ्य ठीक रहैगा। बालक जितने दिनों गर्भ में रहता है उतने दिनों पर्यन्त माता के रुधिर के द्वारा ही उसका पोषण होता है। वह रुधिर माता के शरीर से सन्तान के शरीरमें प्रवाहित होकर उसके जीवन की रक्षा करता है, अतः सिद्ध हुआ कि–माता का रुधिरही सन्तान की जीवन शक्ति का एकमात्र आधार है। उस आधार के दूषित होनेपर सन्तान का स्वास्थ्य (तन्दुरुस्ती) नष्ट होजाताहै, इतनाही नहीं किन्तु प्राणान्ततक होजाता है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि–गर्भावस्था में गर्भिणी का स्वास्थ्य ठीक रहनेपर गर्भस्थ शिशुका भी स्वास्थ्य ठीक रहैगा और उसके क्रम स्फुरणमें किसीप्रकार की बाधा नहीं होगी। गर्भिणी के स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये, पथ्य, परिश्रम विश्राम, निद्रा आदि कई एक विषयों की ओर दृष्टि रखने की आवश्यकता है॥ गर्भिणी का पथ्य जितना सुपाच्य (हलका) और पुष्टि कारक हो उतनाही हितकारीहै। मांसाशियो कोभी मांस की अपेक्षा सुपक्व ताजी फलमूलसे विशेष उपकार होताहै। मांस का तो सर्वथाही त्यागकरना चाहिये क्योंकि–मांस भोजन से गर्भिणी का स्वास्थ्य नष्ट होता है। गर्भावस्था में अनेकों स्त्रियों की अधिक अम्ल (आचार

आदि) सेवनमें विशेष रुचि होती है परन्तु उसको सर्वथा त्यागना चाहिये, आहार जितना परिमित किया जायगा उतनाही हित होगा। पान करने योग्य पदार्थों में विशुद्ध जल और दुग्धका सेवन करना चाहिये। सबप्रकार के तीक्ष्ण पेय पदार्थों से बचे रहना चाहिये यहांतक कि यदि किसी को चाह के सेवन का अभ्यास हो तौ ऐसे समय में वहभी त्याग देना चाहिये। लघु और परिमित आहार जिसप्रकार स्वास्थ्य रक्षा की सहायता करता है तिसी प्रकार लघु और परिमित परिश्रम भी सहायता करता रहता है। जिसप्रकार किसीप्रकार का परिश्रम न करकै घरके कोणमें चुप बैठे रहना अस्वास्थ्य करनेवाला है तिसीप्रकार अपरिमिति परिश्रम करके श्रान्त और क्लान्त होजाने से भी स्वास्थ्य में हानि होतीहै। इसकारण थोड़ा २ परिश्रम जिससे श्रान्ति वा क्लान्ति नहो करना चाहिये। इससे रुधिर के शरीरमें सञ्चालन का कार्य ठीक २ होताहै और गर्भिणी एवं गर्भस्थ सन्तान के स्वास्थ्य की रक्षा होती है। किन्ही २ का कथन है कि-दोनों हाथों की अपेक्षा दोनों चरणों का परिमित चालन हितकारी होता है। ग्रामों (देहात) में कुलीन स्त्रियें भी शौचादि क्रिया के लिये जङ्गल में जासक्ती हैं, उससे उनका आवश्यकतानुसार व्यायाम और उसी के साथ विशुद्ध वायु का सेवन भी हो जाता है। परन्तु शहरों में ऐसा होना असम्भव है क्योंकि शहर की स्त्रियें तौ गृह के बाहर भी नहीं आसक्तीं, ऐसी दशामें अपने २ स्थानों की छत्तोंपर जो कुछ विशुद्ध वायु का

सेवन होसकै और जो कुछ पादचरण (टहलना) होसके उतना अवश्यकही करना चाहिये ॥ एकदेश हितैषी

॥ पितृलोक और पार्वणश्राद्ध ॥

शास्त्रीय सकल विधि आज्ञा सिद्ध है, वह तर्क और युक्तिका विषय नहीं है, शास्त्रीय आज्ञासे ही सबकी शिरोधार्य है, ऐसे शास्त्रकी आज्ञा होने के कारण मनुष्य की स्वाभाविक ज्ञान पिपासा होनेपर भी प्रायः शास्त्र विधिके गूढ़ तत्त्वका अनुसन्धान करने की रीति सर्वसाधारण में प्रचलित नहीं थी, कालका परिवर्त्तन होनेपर इस समय अनेकों पुरुषों को शास्त्रीय निगूढ़ तत्वको जानने की प्रवृत्ति बलवती होने पर भी आशाके अनुसार फल मिलने की सम्भावना प्रायः नहीं होती है। इस समय हम एक शास्त्रके गूढ़ तत्व को, जिसके जानने की अनेकों पुरुषों को उत्कण्ठा थी प्रकाशित करते हैं--चन्द्रलोक वा चन्द्रमण्डल, अन्यग्रह उपग्रहों की अपेक्षा पृथ्वी के अधिकतर समीपहै इसको औपत्तिक ज्योतिः शास्त्रने विशद रूपसे सिद्धकर दिया है, चन्द्रमण्डल केवल पृथिवी के समीप ही है ऐसा नहीं है किन्तु उसको पृथ्वी का अंश विशेष भी कहते हैं। विस्तृतसागर के मध्यमें बसे हुए किसी महा द्वीपका समीपवर्त्ती छोटा द्वीप जिस प्रकार उस महा द्वीपके अधिकांश स्वभाव को धारण करताहै तिसी प्रकार अनन्त आकाश आकाश की गर्भस्थ पृथिवी का चन्द्र

मण्डल में अधिकतर अंश है (कोई २ यूरूपियन् ज्योतिर्विद तो यहांतक कहते हैं कि चन्द्र मण्डल पहिले पृथिवी के पृथक् अंशरूप से पृथिवी के साथ में लगाहुआ था अनन्तर पृथिवी के घूमने के वेगसे पृथक् होगयाहै परन्तु इस कथनका विश्वास करने के लिये कोई प्रमाण नहीं है) पृथिवी में मृत्तिका का भाग अधिक होने के कारण जिस प्रकार वह मृण्मयी कहाती है तिसी प्रकार चन्द्रमण्डल में जल का भाग अधिक होने के कारण वह जल मय कहाजाता है। चन्द्र मण्डल के जलमय होने का प्रमाण सिद्धांन्त शिरोमणि के गोलाध्याय में मिलाता है यथा॥

"उपचितिमुपयान्ति शौक्लमिन्दो
त्यजत इनं व्रजतश्च मेचकत्वम्।
जलमय जलजस्य गोलकत्वात्
प्रभवति तीक्ष्ण विषाणरूपतास्य"॥

जलमय होनेपर भी चन्द्र मण्डल में एक प्रकार के प्राणियोंका वसो वास है, विशेषतः चन्द्र मण्डल के ऊर्ध्व भाग में पितृ लोक के अवस्थान का प्रमाण पाया जाता है। जैसा कि गोलाध्याय में लिखा है॥

"विधूर्ध्व भागे पितरो वसन्ति
स्वाधःसुधादी धितिमामनन्ति"॥

चन्द्रमण्डल का गोलार्द्ध मनुष्यों के दृष्टि गोचर होता है दूसरा गोलार्द्ध कदापि दृष्टिगोचर नहीं होता है, अदृश्य

भागही ऊर्ध्वभाग है, और वहही पितृलोक है, सूर्यका दर्शन और दर्शन और अदर्शन जिस प्रकार पृथिवी पर दिनरात्रि का कारण है तिसी प्रकार पितृलोक में भी यह सूर्यही दिन रात्रि का कारण है यथा ॥

"कुपृष्ठगानां द्युनिशंयथानृणाम्
तथापितृणांशशिपृष्ठवासिनाम्" (गोलाध्याये)

परन्तु पृथिवी पर जिस प्रकार साठ घटिका दिनरात्र होता है चन्द्रलोक में ऐसा नहीं होता है, कृष्णपक्षकी अष्टमी के उत्तर अर्द्धांश से शुक्लपक्षकी अष्टमीके प्रथम अर्द्धांश पर्यन्त पितृलोक का दिन और शुक्लपक्ष की अष्टमी के उत्तर अर्द्धांश से लेकर कृष्णपक्ष की अष्टमी के प्रथम अर्द्धांश (मध्यान्हकाल) पर्यन्त पितृ लोककी रात्रि होती है। इस प्रकार अमावस्या पितृ लोकका मध्यान्ह और पूर्णिमा मध्य रात्रि है। कृष्णाष्टमी प्रातःकाल और शुक्लाष्टमी सायंकाल है अतएव मनुष्यों का जो एक चन्द्रमास है, वह पितरों के एक दिनरात्रि का परिमाण है। चन्द्रमण्डल में पितरों के सिवाय अन्य किन्हीं प्राणियों का बसो वास है वा नहीं, इस विषय का विचार इस प्रबन्ध में नहीं किया जायगा, यहां विशेषतः केवल पितरों काही परिचय दिया जायगा, क्योंकि–यहां पितरों काही विचार करना है॥ हमारे शास्त्रों में अनावृत्ति और पुनरावृत्ति यह दो प्रकार की मनुष्यों की पारलौकिक गति कही है, जो मनुष्य ज्ञान और भक्ति योगके द्वारा पुण्य पाप

के विनाश के अनन्तर मुक्ति के योग्य होते हैं शरीर त्याग के अनन्तर उनका आत्मा सूर्य की किरणों के अवलम्बन से सूर्य मण्डल में पहुंच कर वह आत्मा सविता देव के भर्गस्वरूप ब्रह्म तेजमें विलीन होजाता है, इस प्रकार विलीन हुए आत्मा की पुनरावृत्ति (पुनर्जन्म) नहीं होती है। ज्ञानी पुरुष ब्रह्म निर्वाण और भक्त पुरुष सच्चिदानन्द मय अप्राकृत मुक्ति को पाकर कृतार्थ होते हैं। परन्तु जो ज्ञान और भक्ति हीन मनुष्य सत् असत् कर्मो के द्वारा पुण्य पाप का सञ्चय करते हैं, उनका आत्मा पुण्य पाप का यथोचित् फल भोगने के निमित्त मृत्यु के अनन्तर चन्द्रमा की किरणों के द्वारा चन्द्रलोक में पहुंचता है, उस चन्द्रलोक में गएहुए सकल आत्मा चन्द्रलोक में अथवा पितृगण कहाते हैं, चन्द्रलोक में गएहुए आत्मा की पुनरावृत्ति होती है अर्थात् शुभाशुभ फल भोगने के लिये उसका पुनर्जन्म होता है। मृत्यु के अनन्तर जीवका पुनर्जन्म होताहै—हिन्दू समाज के आबालवृद्ध वनिता इस विषय में पूर्ण विश्वास रखते हैं, परन्तु किस प्रकार जीव का पुनर्जन्म होता है, वा किस प्रकार जीव माता के गर्भ में प्रवेश करता है यह बातें अनेकों को अविदित हैं, विदेशीय और अविजातीय कृत विद्य पुरुष हमारे शास्त्रकी इस जन्मान्तर वादकी कथा को सुनकर कोई तो हास्य करते हैं और कोई इस अद्भुत विश्वास की कथा को सुनकर विस्मय सागर में निमग्न होजाते हैं। वह जो कुछ भी हो, जन्मान्तर वाद अभ्रान्त है वा भ्रान्तिमूलक है, इस विषयका विचार करना

यहां शोभित नहीं होगा, अतः आर्य शास्त्रों के अनुसार जीवका जन्मान्तर किस प्रकार होता है, यह विचारही करेंगे केशके अग्रभाग को चीरकर सौभाग करने पर वह जितना सूक्ष्म होता है, जीवात्मा उससे भी सूक्ष्म पदार्थ है अर्थात् जड़ पदार्थों में जैसे परमाणु है वैसेही चेतन जीवात्मा भी सूक्ष्म है वह जीवात्मा पूर्वोक्त नियम के अनुसार शुभ अशुभ कर्म फल भोगने के लिये, चन्द्रमण्डल मेंजाकर नियमितिकाल के अनन्तर, नीहार संयुक्त होता है, और पृथिवीके शस्यादि भोजन के पदार्थों में पतित होकर कुछ कालतक उसमें स्थित रहता है, तदनन्तर मनुष्यादि का भोजन रूप होकर वीर्य रूपसे स्त्री गर्भमें प्रवेश करके कर्मानुसार शरीर होकर जन्म धारण करता है, कर्म के अनुसारही मनुष्य पशु और पक्षी आदि का शरीर प्राप्त होता है। प्रसङ्ग वश जीवके जन्मान्तर का विषय शास्त्रानुसार कहा, अब प्रकृतानुसरण करकै प्रबन्ध का उप संहार (समाप्ति)करतेहैं। हमारेशास्त्रोंमें जो पितरों का पार्वण श्राद्ध करने का विधान है इस समय अनेकों हिन्दू सन्तान उसको भूलगए हैं इस पार्वण श्राद्ध को अमावस्या तिथि में करने का विधान है। श्राद्ध में जो पिण्डदान किया जाता है, वह पितरों का भोज्य अन्न रूपही कल्पना किया गया है मनुष्यादि का मध्यान्ह ही भोजन का मुख्य काल होता है, तिसीके अनुसार यह, पितरों का पिण्ड रूप भोज्या न्न पितरों के मध्यान्ह अमावास्या तिथि में देते हैं। अमा वास्या के दिन पितृ श्राद्ध करने का यहही युक्ति युक्त कारण

है, कदाचित् पितरों के प्रातःकाल कृष्णाष्टमी के दिन भी श्राद्ध करने का विधान है, पूर्वकाल ने ऋषि समाज में प्रात भोजन की रीति भी प्रचालित थी, अतः वह यदि पितरों कोभी प्रातर्भोजन करावैं तौ इसमें आश्चर्यही क्या ? परन्तु भोजन का मुख्य काल मध्यान्ह ही है शास्त्र विचार से अमावास्या के दिन पितृ श्राद्ध का जो कारण हमारे बुद्धिस्थ हुआ वह प्रकट किया यदि कोई महाशय इस विषय में और युक्तियें लिखेंगे तौ मुझको अति हर्ष होगा, क्योंकि शास्त्रों के गूढ़तात्पर्यों को प्रकाशित करना ही हमारी आन्तरिक इच्छा तथा कर्तव्य है ।

॥ सुशीला ॥

पातिव्रत्य दुराचारका फल दिखलाने वाला मनोहर एक छोटा सा

॥ उपन्यास ॥

आश्विन मासमें मध्यान्ह समय गगन मण्डल में शरत्का लीन चन्द्रमा उदय हुआ है, शरत्काल के गगन मण्डल की नीलिमा के मध्यमें शारदीय चन्द्रमा का प्रथम हास्य देखने में बड़ाही सुन्दर प्रतीत होता है श्यामपुर ग्राममें एक मृण्मय

कच्चे मकान के चौक में बैठी हुई सुशीला अपने पुत्र और कन्या को सुलारही है। जिस मकान में सुशीला रहती है, उसमें कोई और नहीं है, स्वामी नौकरी के कारण परदेश में हैं, वर्षके अनन्तर में छुट्टी में एक बार आकर दो महीने मकान पर रहजाते हैं. धनकी प्राप्ति कुछ अधिक नहीं है, इस कारण सुशीला के मकान पर कोई नौकर वा टहलनी भी नहीं रहती, केवल रात्रि में इकले रहना पड़ैगा, इस कारण मकान के समीप रहने वाली पड़ोसिन दुर्गादेवी मौसी आकर रात्रि में सुशीला के पास सोती है, इस कारण वह सालमें दो बार नवीन वस्त्र पाती है, यह सुशीला के स्वामी का किया हुआ बन्दोबस्त है। आज पहर भर रात्रि बीत गई कन्या चंद्रमा को देखती २ माताकी गोदमेंही निद्रा के वशीभूत होकर सोरही, परन्तु दुर्गादेवी मौसी अभीतक नहीं आई, सुशीला दुर्गादेवी की प्रतीक्षामें बैठीहुई गिनने लगी कि स्वामी के बर्षके अंतकी छुट्टी लेकर आने में अब कितने दिन बाकी हैं इतनेही में एक साथ बाहर के दरवाजे पर खट २ शब्द हुआ, सुशीला ने आवाज दिया कि—क्या दुर्गादेवी मौसी है? एक स्त्रीने मकान में आकर उत्तर दिया कि—नहीं तो सुशीला मैं लीलाहूँ। सुशीला ने पहिचान लिया कि—दुर्गादेवी की पोती लीला है। लीला बिधवा, अवस्था में २५।२६ वर्ष की प्रायः सुशीला की सम वयस्का है। चाल चलन, अच्छा नहीं है, अतः सुशीला उसके पास बैठना क्या उसको देखना भी नहीं चाहती है, उसको देख

कर सुशीला ने कहा–तू कैसे आई, दुर्गादेवी मौसी कहां है लीलाने कुछ हँसकर उत्तर दिया कि–उसकी तवियत अच्छी नहीं है, इससे मुझे भेजदिया है, इकली आरही थी रस्ते में मनोहरलाल मिलगए, वह मुझे दरवाजे तक पहुंचा गए हैं, वह बडे भलेमानुस हैं। ऐसे कहते २ लीला बैठगई, सुशीला ने और कुछ उत्तर नदेकर घरके भीतर जा पलङ्गपर कन्या और पुत्रको शयन करादिया, तथा घरके और जो दो एक काम बाकी थे उनको निवटाकर अपने आपभी सोनेका उद्योग करते २ लीला से बोली कि--तूभी दरवाजा बन्दकर आ, और, आकर सोरो, लीला बोली कि--हां सोऊंगी तौंसही परन्तु तू जरा बैठती तौं दो एक बातें कहनी थीं वह कहती सुशीला ने कहा–कहै क्यों नहीं, मैं यहां पलँगपर लेटी २ सुन लूंगी। लीला बोली--ऐसे कहनेकी बात नहीं है एकान्त में धीरे से कहने कीहै। सुशीला बाहर आगई। लीलाबोली मनोहरलाल बडे भलेमानस हैं, वह प्रतिदिन तेरा जिकर करते हैं, वह किस दृष्टि से कहते हैं, सो मुझे मालूम नहीं आजभी कहते थे कि–सुशीला का कुछ काम होय तौं कहना मैं उसी समय करदूँगा सुशीला बोली–उनका कहना ठीक ही है बडे आदमी और हमारे ग्रामके जिमीदार हैं, हमारी विपत्ति आपत्ति में वह सहायता नहीं करेंगे तौ कौन करैगा लीला बोली–सुशीला वह तुझै बहुत चाहते हैं सुशीला बोली–तैंने यह सब कैसे जाना ? लीला बोली–हरएक बात से मालूम होता है, और वह ऐसे लज्जावान् हैं कि–तेरे लिये

एक चीज लाये थे, सो लज्जा के कारण तुझे दे नहीं सके, सो आज मेरे हाथ भेजी है, यदि बुरा न माने तौ खोलकर दिखाऊं। सुशीला के उत्तर की प्रतीक्षा न करकै लीलाने एक जोड़ी सोने के खँडुए खोलकर सुशीला के सामने रख दिये। सुशीला के दोनों नेत्र क्रोधसे जल उठे, पांवसे दबी हुई नागिनी की समान गर्जकर होठों को कंपाती हुई कहने लगी–जा जा लीला मेरे घरसे निकलजा, नहीं तौ मैं अभी सिपाही को पुकारती हूँ वह बडे आदमी, हम गरीब आदमी क्या उनको ऐसा चाहिये? लीला अपने ऊपर आफत आई समझकर जल्दी से घरसे निकल गई। सुशीला को उसरात्रि में फिर निद्रा नहीं आई। नेत्रों से आंसुओं की धारा नहीं थमी रोते २ अपने स्वामी को पुकारा कि–"हे दुःखनी के हृदयके सर्वस्व धन! तुम कब आओगे, हे नाथ! मेरा हृदय फटा जाता है॥

(२)

लीला घरके बाहर निकलकर उत्तर की तरफ को चली मार्गमें एक पीपलका पेड़ था, पेड़की छायामें एक मनुष्य खड़ा था, लीला उसके पास जाकर खड़ी होगई, धीरे स्वरसे बोली–मनोहरलाल यह तौ बड़ा कठिन कामहै। मनोहरलाल उस श्यामपुर ग्रामके जिमींदार शङ्करलाल का बड़ा पुत्र है, अशिक्षित, उद्धत स्वभाव दुश्चरित्र है, छल बलसे अनेकों सती स्त्रियों का रत्नहरण किया है, सुशीला का स्वामी घर

नहीं है, वह अकेली रहती है,, इसके सिवाय वह परमरूप वती होकर मृत्तिका के कच्चे साधरण घरमें रहती है, विशेषतः उसके अन्तःस्थित सतीत्वरूप प्रकाशसे उसका मुख मण्डल सर्वदा उज्ज्वल रहता है, दुश्चरित्र मनोहरलाल उसके परम रूपको देखकर उद्भ्रान्त पतङ्ग की समान मोहित होगया है सुशीला के अमूल्य सतीत्व रत्नको हरण करने की इच्छा से नरक की दूती दुश्चरित्रा लीलाके अञ्चल का आश्रय लियाहै इसकारणही लीला का यह पाप कार्य है । मनोहरलाल–क्या लीला खँडुए नहीं लिये ? लीला–उसका जो दिमाग है, उस से क्या वह सहजमें तुम्हारे खँडुए लेलेगी ? मनोहरलाल क्या दिमाग देखा, मालूम होताहै अधिक नहीं चाहती है । लीला चाहती है या नहीं यहतौ वहही जाने, वात तौ कहनेही नहीं दी, मुखसे शब्द निकालतेही क्रोधसे आग भभूका होगई मनो हरलाल–ऐसा तौ सबही करती हैं, लीला तूभी तौ एकदिन ऐसीही क्रोधसे लाल भभूका होगई थी, और एक दो वार कहती तौ कदाचित् वह राजी होजाती है, लीला–कहना तौ चाहा था परन्तु उसके पास बैठना कौन ? खँडुए देखतेही जल उठी, घरसे वाहर निकाल दिया, अच्छा नहीं हुआ, मनोहरलाल अब वह अपने स्वामी के पासभी खबर भेजेगी। इतना सुनतेही मनोहरलाल बड़े भयभीत हुये । लीला बोली तुम मनोहरलाल काहे को भय करते हो मैं गरीब हूं, मुझको भय है । मनोहरलाल अच्छा यह मार्गभी रोके देताहूँ तू मेरे साथ आ, एक चिट्ठी लिखे देता हूँ तू जाकर उसको

लेटरवक्स में डाल आना । ऐसा कहकर मनोहरलाल आगे२ होलिये और लीला उनके पीछे २ चलीगई ॥

(३)

सुशीला के स्वामी तुलसीदास किसी जिले के जमीदार के यहां गुमास्तागीरी के कामपर नौकर हैं । आश्विन मासके पहिलेही घर जाने के लिये उद्विग्न होरहे हैं । आगे कुछ हिसाब किताब ऐसा उपस्थित है कि--उसको ठीक करकेही अवकाश पावैंगे । सुशीला के चन्द्रहार और कन्या पुत्रके खँडुओं के लिये सुनार के ऊपर तकादेपर तकादा करते हैं, दो चादर, दो गलीचे के आसन, एक मयूर पुच्छ का पङ्खा, एक शङ्ख तथा और कितनीही वस्तु पहिलेही से इकट्ठी कररक्खी हैं, तुलसीदास एक वर्षके अनन्तर घर जायँगे स्त्री पुत्रादि से अलगहो अधिक दिनोंतक परदेशमें रहने से उत्कण्ठित विरही प्राणों की क्या दशा होती है, इसका तुलसीदासको विशेष रूपसे अनुभवहै । सन्ध्या के समय तुलसीदास सबदिनभर का काम निवटाकर रुपयों का जमा खर्च मिलाने के लिये बैठे हैं, हिसाव में वड़ा गोलमाल है, एक रुपया घटता है, किसीप्रकार ठीक नहीं होता, इतनेही में डाकखाना का सिपाही एक चिट्ठी उनके हाथमें देगया जमीदार के दफ्तर के पते से एक सुशीला की चिट्ठी के सिवाय दूसरी किसी की चिट्ठी प्रायः तुलसीदास के पास नहीं आतीथी घरकी चिट्ठी जानकर उन्होंने झटपट लिफाफा फाड़कर चिट्ठी निकालली, उस चिट्ठी में इस प्रकार लिखा हुआ

था-"श्रीचरणेषु-मनमें अत्यन्त कष्ट होनेसे यह पत्र आपको लिखा है, आप शीघ्रही एकबार घर आवें, आपकी स्त्री यहां जैसे आचरण करती है, उससे आदमियों में मुख दिखलाना हमको भार मालूम होता है, उसको लेकर यदि आप गृहस्थी का निर्वाह करैंगे तो निश्चय आपको एक अपने घरमेंही रहना पड़ैगा। आप विशेष साध रहैं, क्योंकि--दुश्चरित्रा स्त्रियों को कुछभी असाध्य नहीं है इति। आपका दासानुदास"गुप्तनाम" चिट्ठी को पढ़ते पढ़तेही तुलसीदास का सब शरीर पसीने में भीजगया। क्षणभरके लिये मानो मूर्छित से होगये सन्मुख दीपक जलरहा है, तौभी मानो चारोंओर अन्धकार है, हृदय में मानो किसीने बड़ाभारी प्रहार किया है, हथेलीपर कपोल को रखकर मौनही मौन कुछदेर शोच विचार किया। फिर लम्बा श्वास छोड़कर दूसरेका काम समझकर जमा खर्च मिलाने लगे। पहिले एक रुपये की गड़बड़ थी अब एकसौ रुपये घटने लगे, उनके नेत्रों के जलसे जमा खर्च का वही खाता भीज गया॥

(४)

नवरात्रि के और तीनि दिन बाकी हैं, नवरात्रिमें जिनके यहां भगवती दुर्गा के पूजन का उत्सव होता है, उनके यहां आनन्द के साथ अनेकों प्रकार के बाजे बजरहेहैं। आज दो दिन हुये तुलसीदास छुट्टी पाकर अपने घर आगये हैं स्वामी घर आवैंगे ऐसा विचाकर जो सुशीला के आनन्द का समुद्र धीरे २ उमड़ता आताथा, आज दो दिनसे स्वामी के

मुखको देख २ कर उसका वह आनन्द का समुद्र सूखगयाहै। एकवर्ष के अनन्तर तुलसीदास घरपर आये हैं। परन्तु उनका वह पूर्वकाल कासा स्नेहमय भाव कहां है? वह उदास हास्य कहीं है? वह गार्हस्थ्य की प्रीति कहां है? कुछभी नहीं है इस समय वह प्रतिक्षण चिन्ताग्रस्थ रहते हैं—उनकी दृष्टि तीक्ष्ण और उद्वेग पूर्णहै, ललाट में चिन्ता की गम्भीर रेखा पड़ीहुई है। एक अभूत पूर्व विभीषणता मुख मण्डलपर कांप रही है। वर्षके मिलने वह आनन्द नहीं है, अतीत सुख दुःख की वातचीत नहीं है, सुशीला के साथ वह आंतरिक आ-लाप नहीं है, सुशीला स्वामी के मुखकी ओर देख २ कर, उनके स्वप्न और कल्पना में न आनेवाले चित्तके बदलने को देखकर, वडे आनन्द के दिन दुखसागर में डूब रही है। पञ्चमी के दिन प्रातःकाल के समय नापित की नवीन वौ सु-शीला के चरणों में लाक्षा लगाने को तथा केश वन्धन करने के लिये आई। और दिनों की समान आज सुशीला को प्रफुल्ल न देखकर नाइन ने बूझा कि "वौजी आज तुमारा मुख उतरा २ सा कैसे होरहा है? सुशीला मनही मनमें रोती और दुःखित होती थी इस समय मनकी बात प्रकाशित करनेका मौका पाया, एक लम्बा श्वास लेकर कहने लगी "वातचीत तो कुछ नहीं है, परन्तु उनका चित्त मुझे फिरा हुआ मालूम होता है, और यहतो वता तू मन्त्र तन्त्र जाने है ना? "नाइन ने हँसकर कहा—क्या बात है जो उनका चित ऐसा होगया, उनका तेरा तो बड़ा प्रेम भाव रहता था?

सुशीला ने सब स्वामी की अवस्था खोलकर कही तब नाइन बोली कि—इस विषय के मन्त्र तन्त्र तौ मैंने बहुत सीखे हैं, परन्तु देखूं तेरा काम होजाय तबही है, सांझके बाद एकजड़ी तुझे देजाऊंगी, उसे खूंटी में बांधकर पासही सोरहियो तौ वह शान्त होजायँगे। सुशीला बोली। मेरी कसमखा कि—मैं सांझके बाद आकर देजाऊंगी। तौ तुझसे ठीकही कहदूं—मेरे लाकर देने में कुछ नहीं होगा, नौं घड़ी रातगये के समय तुझेही दक्षिण मुखकर बूंटी उखाड़नी पड़ैगी। सुशीला बोली मैं यह कैसे करसकूंगी, मैं तो किसी बूटी कोभी नहीं पहिचानती हूँ सो मैं रात्रिमें कैसे लासकूंगी। नाइन बोली कि भय काहे का है ? बहुत दूर नहीं जाना पड़ैगा, तुम्हारे घर के द्वारपरही वह बूटी है। मैं आकर दरवाजा खट खटाऊंगी तू उठकर चली आयो, मैं बूटी बतलादूंगी ॥

(५)

नाइन नारायण नापित की अतीव प्रेमपात्र है, प्रेमपात्र कहने से नवीन विवाहित नहीं है, किन्तु तीस वर्षकी है बूढ़ा नापित उससे प्रेम अधिक करता है, इससे यत्न करके अपनी अनुभव करीहुई मन्त्र तन्त्र विद्या और औषिधियें स्त्रीको सिखादी है, अन्दाजन चार घड़ी रात्रि वीतनेपर नाइन ने नापितसे कहा कि—आज एक काम करना होगा। नापित बोला कि--जो हुकुम महाराज, नाइन बोली—तुम्हैं हरसमय हँसी लगी रहती है, वशमें करने की जो औषधि तुमने बताई थी, वह आज मैं तुलसीदास की स्त्री को दूंगी

मैं बूटी देख आई हूं तुम एकवार मेरे संग चलो, ठीक वहीहै या नहीं है सो जरा देखदो। नापित बोला तुलसीदास की वौ बशमें करने की औषधि लेकर क्या करैगी ? तुही तौं कहती थी-उन दोनों में बड़ा प्रेमहै। नाइन बोली कि-अव वह प्रेम भाव नहीं है, घर आने के बादसे बड़ी खटपट है। नापित बोला आहा! ऐसी सती लक्ष्मी वो हरएक नहीं होगी, सो मैं उसके लिये काम के अवश्य चलूंगापरन्तु अभीतौं उसका समय नहीं है, प्रहरभर रात्रि बीतेके सियार बोले तुम मुझे पुकार लेना। मनमें प्रसन्न होकर नाइन अपने घरका और काम काज करने को चली गई। इन दोनों में इस प्रकार बातचीत हो रहीथी ठीक उसी समय सुशीला अपने स्वामी की शय्या के पास खड़ी होकर नेत्रों में जल भरके कहनेलगी "कहोतो सही मेरा क्या अपराध है! ॥ तुलसीदास तकिये के ऊपर एक लम्बा श्वास लेकर बोले कुछ नहीं"। सुशीला बोली-जब कुछ नहीं तौं यह नई २ बातैं कैसी हैं ? सबही बात नई है, तुम्हारे मुखपर हास्य नहीं है, हर समय चिन्तित रहते हो, रात्रिमें जब उठती हूं तभी देखती हूं तुम जग रहे हो, तुम्हारे पय्यां पडूं बताओ तौं सही किस कारण तुम ऐसे होरहे हो ? तुलसीदास बोले-कहूंगा २ यदि ऐसा समयपाऊंगा तौं कहूंगा, इस समय मेरे सामने से चलीजा। सुशीला हटकर कहीं नहीं गई, स्वामी के चरणों के पास लोटकर मौनही मौन रोनेलगी॥

(६)

उस दिन प्रहरभर रात्रि के बीतनेके समय मनोहरलाल ने लीलाको बुलाकर कहा-देखो लीला मनोहरलाल की बुद्धि जो बाणमारताहूं, उसी बाणसे काम फते करताहूं ? अब जायगी कहां लीला बोली-बाबूजी । तभी सुनने में आया है कि-उन दोनों की परस्पर बात चीत एकसाथ बन्द होगई है, बताओ तो सही ! किस प्रकार क्या किया, कहूं क्या, बहुत शीघ्रही सब मालूम होजायगा, परन्तु आज एक काम करना होगा । लीला बोली क्याहै कहो, मैंतो हाजिर हूं हि । मनोहरलाल बोले-कोई बड़ा काम नहीं है, उस के शयन करने के घरके पूर्व की ओर जो झरोखा है उसके पास खडे होकर उन दोनों में क्या बात चीत होती है, सो सुनना होगा, ऐसा होने से सब हाल मालूम होजायगा, करसकोगीना इस काम को ! । लीला बोली-नहीं बाबूजी, मुझे बड़ा भय लागता है, क्यों कि-इस पीपल के पेड़पर चुडैल रहती है, उसी दिनभी लाल कपडे पहिने खड़ी थी । मनोहरलाल बोले अरे जाभी चुडैल चुडैल करती है, मैंतो चुडैल से नहीं डरताहूं मालूम होगया यह काम तुझसे नहीं होगा, मुझको आपही जाना पडैगा । लीला बोली-बस २ यह बात ठीकहै, तुम आप जाकर बात चीत को जितना समझोगे, मैं कहीं उतना समझ सक्ती हूँ ? हजार क्योंन हो, आखिर को तो स्त्री ही हूं । मनोहरलाल बोले-अच्छा ऐसाही होगा, कलको सुनलेगी कि मनोहरलाल का काम फते होगया, रुपये के लाभसे मरा हुआ मनुष्य भी

बातचीत करने लगता है, यहतो कौन चीज है ! । विधाता का हाथ अदृश्यहै जीवके अदृष्ट चक्रको किस समय किस मार्गमें चलाता, यह मनुष्य की बुद्धिमें नहीं आसक्ता, रात्रिके अन्धकारमें दुबककर दुर्बुद्धि मनोहरलाल मन्द भाग दोनोंस्त्री पुरुषों के एकान्त के वार्तालाप के सुनने की आशा से तुलसीदास के शयनस्थान के पूर्वदिशा के झरोखे के पास खड़ा होगया ॥

(७)

नौ घड़ी रात्रि के बीत जानेपर सुशीला के बाहर के दरवाजपर खट २ शब्द हुआ उस शब्द से तुलसीदास की उछटी हुई निद्रा दूर होगई, सुशीला जाग रही थी, शय्या के ऊपर उठकर बैठगई, विचारनेलगी कि–जाने स्वामी जाग रहेहैं या सोरहेहैं कहीं जागयायँ तो काममें विघ्न नहोजाय ऐसा होने से नाइन के पास से वह काम सिद्ध करनेवाली औषधि नहीं लासकूंगी, घरमें अन्धकार होरहाथा, सुशीला ने तुलसीदास की नासिका पै हाथ रखकर अनुभव किया कि–सोते हुये मनुष्य केसा श्वास है या नहीं, तुलसीदास के सब शरीरमें अग्निसी लगगयी, उनका सब शरीर मानो निश्चेष्ट होगया, सन्दिग्ध तुलदसीदास की कपट निद्रा को सुशीला ने भ्रान्ति से वास्तविक निद्रा समझा. वह अति धीरे से जिससे कि शब्द नहो इस प्रकार दरवाजे को खोल कर घरके बाहर आई, तुलसीदास के हृदय में दावालन सी सुलग रही थी, अब वह बल उठी, अब उनको अपना संदेह सत्य प्रतीत होने लगा, शय्यापैसे उठकर सबसे छुपाकर जा

अस्त्र तेज करके रक्खाथा उसको लेकर चुपचाप बे मालूम घर में से निकल आये । सुशीला ने बाहर का दरवाजा खोलकर देखा कि–नाइन खड़ी हुई है, बोली–आगई ! समय होगया नाइन बोली–यह समय ठीक है। बूढ़ा नाई उस समय कुछ दूर खड़ा था बातचीत के शब्द की तुलसीदास के कानों में भनक पड़ी। मानो आकाश चूर्ण होगया पृथ्वी विदीर्ण होगई तुलसीदास पागलसे होकर बिचारनेलगे कि–पहिले स्त्री के उपपति (जार) को यमपुर पहुंचाकर पीछे से स्त्री के टुकड़े २ करूंगा, सन्मुख जाकर प्रहार करने से दुष्ट भागसक्ता है, अतः घरके पूर्व की खिड़की के मार्ग से निकलकर जाऊं ऐसा संकल्प करतेही उनको मानो किसी वैद्युतिक शक्ति ने चलादिया, बडेबेग से पूर्व की खिड़की को खोलकर उस झरोखे के पास आये, सो सामनेही एक पुरुष दिखाई दिया रुधिर के प्यासे अस्त्रको हाथते लिये हुए तुलसीदास सेर की समान कुलांच मारकर आये और उस दुष्ट के शिरपर तलवार मारी, हत भाग्य मनोहरलाल के पापका प्रायश्चित्त होगया, एक भयङ्कर चीख मारकर पृथ्वीपर गिरा उसी समय उसका अन्तिम श्वास प्रयाण करगया, तुलसीदास उधर को कुछ ध्यान न देकर जहां पति गत प्राणा सुशीला खड़ी हुई थी, तहां भयङ्कर मूर्ति से आकर खडे हुए, और ललकार कर बोले कि अरी दुष्टे ! जिसके प्रेम में लवलीन थी, उसके साथ इस समय तूभी यमलोक को जा तारागणों की किरणों से चमकती हुई तलवार उठी, बाण से विंधि हुई हिरनीकी

समान रुधिर भीजी हुई सुशीला भूमिपर गिरपड़ी, तुलसी दास रात्रिके अन्धकार में गुप्त होगए। नाइन बूढे नाई के साथ तत्काल लम्बा श्वास लेकर भागी और दोनों ने अपने घरके भीतर घुसकर दरवाजा बन्दकर लिया ॥

(८)

दूसरे दिन प्रातःकाल के समय श्यामपुर की पुलिश के तहकीकात करने को आने के कारण बड़ाभारी हुल्लड़ मचा दारोगा ने आकर पहिले मनोहरलाल की लाशका चालान किया, सुशीला के ऊपर ऐसा प्रहार नहीं हुआ था, कि-जिससे प्राण निकलजांय, वह इस समय भी जीवित थी, परन्तु बिलकुल बेहोश और बातचीत करने की शक्तिसे हीन थी, दो तीन बार प्रश्न करनेपर एकबार बड़ी कठिनता से धीरे स्वरसे कहा कि-लीला और मनोहरलाल का अपराध है-स्वामी का कोई दोष नहीं है" दारोगा ने उसके मरण काल का इजहार लिखानेके लिये उसको जिला मजिष्ट्रेट साहब के पास को चालान करदिया उसके बाद तुलसीदास की खोज हुई ग्रामके समीप के श्मशान पर तुलसीदास ध्यानावस्थित से बैठे हुए थे, पुलिस ने वहां जाकर तुलसीदास को गिरफ्तार करलिया। दारोगा जीने बड़ी प्रवीणता के साथ उस मामलेकी तहकीकात करना प्रारम्भ करी, तुलसीदास के विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं मिला, परन्तु बहुत से रुपये देकर मनोहरलाल के पिता शङ्करलालने दारोगाजीकी पाकट भर

दी थी, अतः मुकद्दमा बनाने के लिये अपनी चतुरतासे दो एक प्रमाण बनाकर तुलसीदास को फांसी में लटकवाने के लिये चालान करदिया, उस विपत्तिके दिन सुशीला की दुर्गा देवी मौसीने सुशीला के पुत्र कन्या को अपनी गोदीका आश्रय दिया । एकमासके अनन्तर सेशनकी अदालतमें तुलसीदास का मुकद्दमा पेश हुआ, लीलाके इजहार से सब रहस्य प्रकाशित होगया, अन्य गवाहों के इजहार होजानेपर सुशीला को इजहार लेनेके लिये बुलायागया, इससमय सुशीला के सब घाव अच्छे होगये थे, निरन्तर नेत्रों से अश्रुधारा बहाती हुई सुशीलाने परदे में होकर स्वामी के मुखकी ओर को देखते हुये, इजहार दिया कि–"मेरा स्वामी निर्दोष है" इस समय तुलसीदास को जैसा घोर पश्चात्ताप और शोक हुआ, उसका वर्णन करना कठिन है । जूरियों ने एकसाथ सम्मति दी कि–आसामी निर्दोष है, जज साहब ने हुकुम दिया कि--आसामी की रिहाई, अग्नि परीक्षिता सीता की समान पतिव्रता सुशीला को साथ लेकर तुलसीदास अपने घरको आये, पतिव्रता के पातिव्रत्य धर्मकी परमेश्वरने रक्षा की, और पापात्मा मनोहरलाल को पाप का फल दिया, सुशीला स्थानपै आकर अपने पुत्र कन्या को हृदयसे लगाकर बहुत रोई और परमेश्वर को धन्यवाद दिया, तुलसीदासने उस ग्रामका निवास त्यागदिया । "यतोधर्मस्ततोजयः"

॥ कुमारिल भट्ट ॥

कलियुगके दोहजार वर्ष व्यतीत होनेपर बुद्धावतार हुआ उसके अनन्तर न्यूनाधिक १५०० सौवर्षतक भारतवर्षमें क्रमशः बौद्ध धर्मकी खूब उन्नति हुई भारतवर्ष में जिससमय शूद्र राजाओं का शासन काल उपस्थित था, उस समयही बौद्ध धर्मने अधिकतर उन्नति पाई थी, और उस समय में ही भारत वर्षसे बाहर नानादेश और द्वीप द्वीपान्तरों में फैला था, उस समय भारतवर्ष के शूद्र राजाओं की सभामें ब्राह्मण मंत्रियों के साथ बौद्ध मन्त्रीभी राजकार्य की पर्यालोचना करते थे उस समय बौद्ध धर्म के प्रचारक पुरुष बडे उत्साह के साथ वैदिक कर्मकाण्ड का तीव्र प्रतिवाद और "अहिंसा परमोधर्मः" इस मतका प्रचार करते थे बौद्ध धर्मके मनोहर उपदेशों के श्रवण करनेसे एवं बौद्ध उपदेशकों के जितेन्द्रियतादि असाधारण गुणों से आकृष्ट होकर अनेकों पुरुषों ने बौद्धधर्म को स्वीकार करलिया था उससमय बौद्धधर्म के प्रतापसे वैदिक क्रिया कलाप एकप्रकार विलुप्त दशाको प्राप्त होगया था, वैदिक कर्मकाण्ड के इसप्रकार शोचनीय दुःख अवस्था को प्राप्त होने पर "कुमारिलभट्ट" नामक एक असाधारण प्रवीण पण्डित ने आर्य्यावर्त्त में जन्म धारण करा, जिनको "तूतात" "भट्ट" और भट्टपादभी कहते थे, यह बौद्ध धर्मके प्रतापसे वैदिक क्रिया कलापकी शोचनीय दशाको देखनेसे मर्माहत होकर बौद्धाचार्यों के साथ शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त हुये। परन्तु बौद्धों के तर्क शास्त्रमें विशेष अभिज्ञता न होनेके कारण पराजित होकर

अन्तमें बौद्ध धर्मशास्त्र अध्ययन और बौद्ध धर्ममें प्रवीणता प्राप्त करनेके निमित्त उस समय के प्रधान बौद्धाचार्यों के शिष्य होकर रहने लगे। एकदिन कुमारिलभट्ट बौद्ध सभामें बौद्धाचार्य्य के समीप बैठेहुये थे, उसी समय में एक प्रतिभाशाली बौद्ध पंडित कथा प्रसङ्ग से वैदिक मतमें नानाप्रकार के दोषारोप करने लगा, उसको सुनकर कुमारिल भट्ट अत्यन्त व्यथित हुये एकसाथ नेत्रभर आये और अश्रुपात होने लगा। समीप में बैठे हुये बौद्ध भट्टपाद की यह दशा देखकर उनको कपटी समझे और उन्होंने इस अपराधके दण्ड देनेका निश्चय करकैं भट्टपाद को अति ऊंचे महल के शिखरसे गिराकर मार डालने की सम्मति करी यह जानकर कुमारिलभट्टने कहा कि "यदि वेद सत्यहै" तो इस गिरने से मेरी मृत्यु कदापि नहीं होयगी। तदनन्तर बौद्धोंने भट्टपाद को महलके शिखरसे गिराया परन्तु भट्टपाद का मरण नहीं हुआ, केवल एननेत्र फूटगया। इसके अनन्तर कुमारिलभट्ट वेदमार्गकी रक्षा करने के लिये सबप्रकार से सन्नद्ध होकर बौद्धधर्म का पराजय करने के लिये मलयत्तर में गये और तुमुल शास्त्रार्थ में उस समय के जैन महा पण्डित अपने गुरुको परास्त करकै पूर्ण मनोरथ हुए बौद्धों की इस पराजय से बौद्धधर्म की अप्रतिहत उन्नति रुक गई और वेद मार्गकी उन्नति होने लगी। कुमारिल भट्टके समनन्तरही भगवान् शङ्कराचार्य्यने बौद्धों को परास्तकिया। भगवान् शङ्कराचार्य्य जीके द्वारा बौद्धधर्म की जितनी क्षति हुई उसकी पूर्ति आजतक नहीं होसकी है, क्षतिकी पूर्त्ति

तो दूर है किन्तु इस समय बौद्धधर्म भारतवर्ष में नाम मात्र का शेष रहकर पश्चिम प्रान्त मारवाड़ देश में आश्रय कियेहुये पड़ा है । हां कुछ पुरुष पश्चिमोत्तर देशमें भी उन्नतिकी युक्ति में लगे हुये हैं यह बौद्धों मेंसे केवल जैन सम्प्रदाय केही अनुयाही हैं--जो बुद्ध देवके "अहिंसा परमोधर्मः" इस वाक्य का यथा तथा रूप से पालन करते हैं । महात्मा कुमारिलभट्ट ने पूर्वोक्त प्रकारसे अपने गुरु जैनाचार्य्य को शास्त्रार्थ में परास्त करने के अनन्तर अपने को गुरु हत्या के पापसे लिप्त समझा वास्तवमें साक्षात् वध नहीं किया था तथापि उन्होंने गुरुके तेजका नाश किया था अतः यहभी एकप्रकार का बधही है । इस कारण मीमांसक प्रवर भट्टपादने--गुरु वधके पापका उचित प्रायश्चित्त करने के निमित्त पुरुषानल (भूसीकी अग्नि) में जीवन विसर्जन करने का संकल्प किया । शङ्कर दिग्विजयके मतानुसार पुण्य क्षेत्र प्रयागमें यह प्रायश्चित्तका अनुष्ठान हुआ था, भट्टपाद के इस शोचनीय प्रायश्चित्त से उस समय का वैदिक समाज अतिशोक और दुःख और मोहको प्राप्तहुआ । धर्म विश्वासके आश्चर्यकारी प्रभावसे भट्टपादने तुषानल सरीखी कष्टकारी मृत्यु कोभी लीलापूर्वक आलिङ्गन किया । उसीसमय में भगवान् शङ्कराचार्य्य जीने निज रचित, वेदांत दर्शन का शारीरिक भाष्य भट्टपाद को दिखाने के निमित्त प्रयागधाम में जाकर उनको तुषानल में स्थित देखा भट्टपादके प्रभाकरादि प्रिय शिष्य नेत्रों से अश्रुप्रवाह करते हुये उस समय उनके चारोंओर घिरेहुये खडे थे, श्रीशङ्कराचार्य्य जी

उस अवस्था को प्राप्त भट्टपादसे यथोचित सम्भाषण करके कहने लगे, कि-"मैं आपको अपना रचित वेदान्त भाष्य दिखाताहूं, आप इसका एक वार्त्तिक (टीका) बना दीजिये" यह सुन भट्टपादने उत्तरदिया कि--मैं बहुत दिनों से पञ्चतत्व (पांच तत्वों के तात्पर्यार्थ सम्पूर्ण इन्द्रियों के व्यापार से विरति) को प्राप्त होगया हूं, अतः आप मेरे भगिनी पति विश्वरूप मण्डन मिश्र के समीप जाइये, वह आपके भाष्य के ऊपर वार्तिक की रचना करेंगे। संक्षेप शङ्कर दिग्विजय के अष्टमोध्यायमें माधवाचार्यने कुमारिलभट्ट की जो प्रशंसा लिखी है उसको यहां उद्धृत करदेते हैं-

गिरेर वप्लुत्य गतिं सतांयः।
प्रामाण्य माम्नाय गिरामवासीत् ॥
यस्यप्रसादात् त्रिदिवौ कसोऽपि।
प्रयेदिरे प्राक्त नयज्ञ भागान् ॥
अपं ह्यधीता खिल वेद मन्त्रः।
कुलङ्कषा लोडित सर्व तन्त्रः ॥
नितान्त दूरी कृत दुष्टतन्त्र।
स्त्रैलोक्य विभ्रामित-कीर्त्तियन्त्रः ॥

अर्थात्—साधुओं के गतिस्थ स्वरूप जिन्होंने पर्वत से पतन करकै सकल वेद वचनों का प्रामाण्य प्रकाशित किया और जिनके प्रसादसे देवताओं ने भी प्राक्तन यज्ञ भागको पाया, त्रिलोकी में फिराया है कीर्त्तिरूप यन्त्र जिन्होंने ऐसे

उन कुमारिलभट्टने सकल शास्त्रों का आलोडन करके वेद वि-रुद्ध बौद्धों के शास्त्रका खण्डन किया । वास्तविक भारतवर्ष में बौद्ध मत धर्म के अत्यन्त प्रादुर्भाव के समय वैदिक क्रिया कलाप लुप्त प्राय होगया था, सबसे प्रथम कुमारिलभट्टने ही बौद्धधर्म के विरुद्ध उद्यत होकर वैदिक धर्मके प्रचार में प्राणों की बाजी लगाकर यत्न किया था । कुमारिलभट्टने किसप्रकार बौद्धधर्मका खण्डन किया उनके रचेतन्त्र वार्त्तिक के पढ़ने से इसविषय में बहुत कुछ प्रतीत होता है । भट्टपादके द्वारा बौद्ध मतका पराजय होनेपर उनकी जीव दशामेंही बहुतसे बौद्धोंने वेदमार्ग को स्वीकार करलिया था । यह दृश्य भट्टपादको परम आनन्ददायी हुआ था । जिसके लिये प्राणों की बाजी ल-गाई थी उसकी सफलता देखकर उन्होंने मृत्यु कोभी अमृत रूप जाना । वास्तवमें बौद्धधर्म से विजय पानाही भट्टपादको अमरत्व प्राप्ति का प्रधान कारण हुआ ॥

॥ धर्म प्रशंसा ॥

प्रिय पाठक वर्ग ! मनुष्य जाति मात्रमें ऐसा कोई व्यक्ति न होगा जो अपने सुख का साधन न करताहो। मनुष्य मात्र का असाधारण कर्तव्य है कि ऐसे कार्य का अनुष्ठान करे जिससे इस लोकमें सुख और परलोक में सद्गति प्राप्त हो, अतएव निखिल धार्मिक पुरुषों को उचित है कि-वास्तविक सुख देनेवाली वस्तुका अन्वेषण करै । प्रायः जिन्होंने सुखके

साधन देखेजाते हैं उस सबमें मुख्य धर्महीहै ऐसी कोई वस्तु नहीं जो धर्मसे प्राप्त न होसक्ती हो–लिखाहै कि ॥

धर्मात्संजायतेह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते।
धर्मादेवपरब्रह्म तस्माद्धर्मंसमाचरेत् ॥
कामार्थौलिप्समानस्तु धर्ममेवादितश्चरेत् ।
नहिधर्मादृतेतोर्थः कामोवापिकदाचन ॥
विद्यारूपंधनंसौख्यं कुलीनत्वमरोगिता ।
राज्यंस्वर्गश्चमोक्षश्च सर्वंधर्मादवाप्यते ॥

अर्थात्–धर्म का सदनुष्ठान करने से धन सम्पति मनोरथ सिद्धि और परब्रह्म की प्राप्ति यह सब कार्य सिद्ध होते हैं, जिन पुरुषों का धन प्राप्ति अथवा मनोरथ सिद्धि की कामना है उन्हें धर्मका आचरण अवश्यही कर्तव्य है क्योंकि–धर्मका आचरण न करने से धन प्राप्ति आदि कार्य्योंका सिद्ध होना कठिन ही है यह बात नहीं बल्कि बिलकुल असम्भव है, केवल एक धर्महीका आचरण करने से विद्यार्थी को विद्या प्राप्ति, सुन्दररूप, धनकी कामना करने वालों को विपुलधन सम्पत्ति, सब प्रकारसे सुख, कुल श्रेष्ठता और निरोग रहना राज्य प्राप्ति स्वर्गका अनुपम सुख एवं मोक्ष पदभी प्राप्त हो सक्ता है। धर्मके अतिरिक्त अन्य जितने सुख साधन दीखते हैं वे सब परलोक में कुछ सहायता नहीं करसक्ते हैं अतएव उनका सुख अनित्य है। जिस दिन प्यारा और सपुत्र अपने हाथमें एक बांस लेके कपाल क्रिया करने के लिये खड़ाहोगा

अर्धाङ्गिनी प्यारी नारी जिस दिन चिताके निकट खड़ीहो केवल विलाप करने के अतिरिक्त अनकुछ सहाय करने में बिलकुल असमर्थ होगी जिस दिन अपने प्यारे मित्र और बान्धवगण केवल श्मशान तकही जाके लौट आवैंगे उस दिन केवल एक धर्महो सबके साथ जाके सद्गति देगा जिस दिन यह मनुष्य गर्भ में आता है उस दिन यह प्राणी परमेश्वर से इस बातकी पूर्ण प्रतिज्ञा करके आता है कि-मैं धर्म का आचरण और ईश्वराराधन अवश्यमेव करूंगा, परन्तु यहां आतेही कुछ का कुछ होजाता है, जो धर्मका आचरण नहीं करते वे मूढ़ पुरुष मानो स्वयं नरक में जाने के लिये मार्ग निर्माण करते हैं। इस नरदेह को पाकर यदि नरक प्राप्ति रूप कठिन रोग की औषधि न करी तौ ध्यान रक्खो। उसे फिर चौरासी लक्ष योनियों में जन्म धारणकर असंख्य दुखः उठाने पड़ेंगे ॥

इहैवनरकव्याधे श्चिकित्सांनकरोतियः ।
मत्वानिरौषधंस्थानं सनरःकिंकरिष्यति ॥

नरक रूप महारोग की धर्म रूप औषधि केवल मनुष्य देहमें ही प्राप्त होसक्ती है जो इसी जन्ममें धर्मका आचरण न करसका वह कुयोनियों में जाकर कि जहां धर्माचरण होही नहीं सक्ता क्या करेगा ? अतएव समस्त धर्मानुरागियों की सेवा में यही प्रार्थना है कि धर्मका आचरण कर सद्गतिकी प्राप्ति के लिये उपाय करना चाहिये। स्मरण रहै कि-जब

केश पक जांयगे, समस्त इन्द्रियें शिथिल पड़ जायँगी, और शिरके ऊपर मौतका दनादन डंका बजाने लगेगा उस समय कुछभी नहीं बन पडैगा अतएव धर्मानुष्ठान के तांई देशकाल बिचारने की आवश्यकता नहीं है जो बनपडै तुरन्त करलेना उचित है। धर्मका स्वरूप और उसके भेद आदि कतिपय लाभदायक विषय समयानुसार फिर कभी सुनावेंगे ॥

॥ मनुष्यत्व ॥

"मनुष्यत्व" शब्दका हम सब आपस में प्रयोग करते हैं परन्तु मनुष्यत्व का वास्तविक तत्व हम लोगों को ज्ञात नहीं है, हम अनेकों बार कहते हैं कि–अमुक पुरुष में अधिक मनुष्यत्व (आदमियत) है, अथवा अमुक पुरुष में किंचिन्मात्र भी मनुष्यत्व नहीं है। इससे अत्यन्त स्पष्ट रूपसे यह प्रतीत होता है कि–अमुक पुरुष के हृदय में दया सज्जनता आदि सद्गुणों का कुछ न कुछ अंश जागरित है और दूसरो पुरुष अति निष्ठुर और दुर्जन है। मनुष्यत्व का इस प्रकार एक मोटा २ भाव समझकर हम निश्चिन्त हैं। इसके सिवाय अन्य सूक्ष्म भाव न जानते हैं और नजानने का यत्न करते हैं यत्न करने पर मनुष्यत्व के अवश्य जानने योग्य और भी अनेक तत्व पासक्तेहैं,। देखना चाहिये कि कौन असाधारण भाव होने से मनुष्यत्व है, इस मनुष्यत्व के जानने की इच्छा होने में इस बातको जानने की भी आवश्यकताहै कि मनुष्य

में ऐसा कौनसा असाधारण गुण है कि जिसके कारण इसको अन्य प्राणियों में भेद है ? अन्य प्राणी जिस प्रकार जीवहै, मनुष्य भी वैसाही एक भिन्न श्रेणीका जीवहै, अन्य प्राणियों का जिस प्रकार गमनादि दैहिक कार्य है, मनुष्यका भी वैसाही कार्य है, अन्य प्राणियों का देखना सुनना आदि अनुभव की क्रिया जिस प्रकार होती है मनुष्य की भी तिसी प्रकार होती है। इन सब साधारण जैव व्यापारों में अन्य प्राणियों से मनुष्य का अत्यन्त ही अल्प भेद है और यहभी कहसक्ते हैं कि भेद नहीं है। तब अन्य प्राणियों के साथ मनुष्य का भेद कहां है ! भेद है ज्ञान मार्ग में। ज्ञानकी एक सुविस्तृत सुदीर्घ विशाल परिखाने मनुष्य और अन्य प्राणियों में प्रबल प्रभेद के प्रवाह का सञ्चार कर रक्खाहै, और किसी विषय में भी मनुष्य का अन्य प्राणियों से भेद नहीं और न होसक्ता है, देहमें कर्मेन्द्रियों में ज्ञानेन्द्रियों में अधिक क्या चित्तकी वृत्तिमें भी अधिक भेद नहीं है, चित्तवृत्ति मनुष्यकी समान पशुको भी है, पशु को भी स्नेह है ममता है प्रेम है, सहानुभूति है, मनुष्य की समान पशु में एक पदार्थ नहीं है वह पदार्थहै केवल ज्ञान। इस ज्ञानको साधारण ज्ञानCOGNITION ACCORDINGTO SYCHOTOGICALDIVISION से अत्यन्त भिन्न मानना और समझना होगा, इस ज्ञान को अध्यात्मज्ञान समझने और मानने पर वास्तविक भानका भान होसक्ता है अर्थात् इन्द्रिय जन्य साधारण ज्ञानसे उच्चचिन्तवन जनितज्ञान REVOLUTION ORINSLIRATION नाम

से जिसको आजकल के शिक्षित समझते हैं) वह उच्च ज्ञानही अध्यात्म ज्ञानका स्थूल नामहै यह ज्ञान केवल मनुष्य कोही प्राप्तहो सक्ता है, अन्य प्राणियों को इस ज्ञानका प्राप्तहोना असम्भव है। अध्यात्म ज्ञानके कारण ही मनुष्यका मनुष्यत्व है। मनुष्य त्व का दूसरा नाम अध्यात्म ज्ञान है, मनुष्यत्व के कहने से दया, नम्रता, सज्जनता आदि नहीं समझना चाहिये, वह सब अध्यात्म ज्ञान के अनुषङ्गिक सहचर मात्र हैं। मनुष्यत्व शब्द से अध्यात्म ज्ञानका आभास प्रकट होता है। मनुष्य कहने से जीवत्व के ज्ञापक एक नामकी प्रतीति मात्र होती है, परन्तु मनुष्य शब्दका प्रयोग करने पर, ऐसे एक भावकी प्रतीत जीवत्व के साथ प्रतीत होती है, कि स्थूल जीव भावत्रा जड़ भावकी अपेक्षा और भी कोई एक सूक्ष्म तत्व प्रच्छन्न भावसे सम्मिलित है विशेष पर्य्यालोचना करने पर उस सूक्ष्म तत्व को अध्यात्म ज्ञान के सिवाय अन्य कोई मानवीय अंश नहीं कहसक्के हैं। अध्यात्म ज्ञान केवल एक मनुष्य कोही सम्पत्ति है, अध्यात्म ज्ञान मनुष्य को विशेष शक्ति है, यह शक्ति अन्य सकल प्रकार की शक्तियों से सर्वथा भिन्न है, भिन्न किस प्रकार है! इसमें विशेषता क्याहै? यह जानना आव श्यक है और यहभी जानना आवश्यक है कि-अध्यात्मज्ञान का विशेष स्वरूप क्याहै? इस समय मनोविज्ञान का प्रसङ्ग स्वयंही उठता है, प्रथम मनोविज्ञान की सहायता से समझना होगा कि साधारण ज्ञानका स्वरूप क्याहै? और उस ज्ञानको उपादान क्याहै! साधारण ज्ञानका स्वरूप समझ लेनेपर अ-

ध्यात्म ज्ञानके तत्वका समझना बहुत सरल और सहज होजा यगो, उस समय साधारण ज्ञानसे अध्यात्म ज्ञानकी भिन्नता पूर्ण रूपसे प्रकट होजायगी, मनुष्य की समान पशु, कोभी साधारण ज्ञानहै, पशुको अध्यात्म ज्ञान नहीं है, नेत्रोंके द्वारा देखना, कर्णों के द्वारा सुनना, नासिका के द्वारा गन्धलेना, जिह्वा के द्वारा स्वाद लेना, और त्वचाके द्वारा स्पर्श ज्ञानको प्राप्त होना। यह जो पांच प्रकार की इन्द्रियों के द्वारा पांच प्रकारके अनुभव की क्रिया सर्व क्षण होता है, यह अनुभवही साधारण ज्ञान का स्वरूप है, अतः कोई साधारण ज्ञान और अनुभूति को एकही पदार्थ मानते हैं। उत्तरोतर उन्नतिकेसाथ साधारण ज्ञान की अवस्था बदलती चली जाती है, इस उन्नति की वृद्धि होते २ एक समय मानवात्मा में एक अपार्थिव प्रकाश की रेखा प्रभासित होती है, मनुष्य उस समय चकितसा होजाता है, घन घटाच्छन्न अमावश्या को अंधियारी रात्रिमें बिजली का क्षणिक प्रकाश जिस प्रकार मूहूर्त्त भरके लिये विश्व ग्रासी विकट अन्धकारको दूर करकै जगत् की प्रकृत प्रति मूर्तिको फिर दृष्टिगोचर करता है तिसीप्रकार मानवात्मा की वह अपार्थिव (दिव्य) प्रकाश की रेखा जड़त्व भुलाकर स्थूलत्व को विदूरित करकै मानवात्मा को अपने में खैंचकर लय और अपने वास्तविक प्रतिबिम्ब को दिखाने के लिये स्वर्गीय ज्योति की दीप शलाका हृदय के सन्मुख स्थापित करती है, इस महत् ज्योतिका नाम "विवेक ज्योति" है इस ज्योतिके अन्धकार मय हृदय में प्रकाशित होने पर मनुष्य

अपने को आप पहिचानना चाहता है, मनुष्य उस समय सम झना चाहता है, कि मेरायह "मैं मेरा" इत्यादि अहन्ता (अभि मान) वास्तव में क्या बस्तु है, ? इसकी सत्ता वास्तवमें कहां तक है। इस देहभाव, इस जड़भाव और इस स्थूल भाव से परे कोई भाव अहंता मेंहै या नहीं, उस समय इसके विचार ने और समझने की इच्छा होती है। यह भाव, यह भावना वास्तवमें अपार्थिव है। यह साधारण बुद्धिकी तर्कनासे बहुत दूरहै, यहही विवेक है, इसकाही नाम "मनुष्यत्व है। केवल इस एक विवेक ज्ञानकी प्राप्ति होजानेपर ही मनुष्यका पशुत्व छूट जाता है, अन्यथा मनुष्य का पशुत्व नहीं छूटता है और मनुष्यत्व की प्राप्ति नहीं होती है। खूब समझ बिचार कर देखो यह आर्य निर्धारित "विवेक बुद्धि" पश्चिमीय वैज्ञानि कोंकी विवेक वृत्ति से अतीवोत्तम और उपादेय पदार्थ है या नहीं ? यह अमूल्य दुर्लभ पदार्थ केवलमात्र एक मनुष्य योनि कीही सम्पति है। अतः इस एक विवेक का आविर्भाव होने परही मनुष्य में मनुष्यत्व होसक्ता है॥

॥ नरकका स्थान निर्णय और वर्णन ॥

सर्वान्तरयामी सर्व नियन्ता जगदीश्वरने पुण्यवान पुरुषों को सत्कर्मों का फल देने के लिये जिसप्रकार सबप्रकार की सुख सम्भोग की वस्तुओंसे पूर्ण स्वर्गलोक को रचाहै, तिसी प्रकार पापियों को दण्ड देने के निमित्त नानाप्रकार की पीड़ा देनेवाले कारण परम्परा परिपूर्ण नरक स्थानकी भी रचना

करी है । पुण्यवान् पुरुषों के सत्कर्मों की न्यूनता अधिकता के अनुसार उनको भिन्न २ प्रकारका सुखानुभव करने के लिये जिसप्रकार बैकुण्ठ कैलास अमरावती आदि भिन्न २ प्रकारके स्वर्गलोकों की रचना करीहै तिसीप्रकार पापी पुरुषों को अधिक न्यून पापका दण्ड देने के लिये तामिस्र अन्धतामिस्र आदि कितनेही भिन्न २ प्रकारके नरक स्थान रचे हैं। नरक अनेक प्रकारके हैं उनमेंसे अट्ठाईस प्रकारके नरकों के नाम और लक्षण भागवतमें कहे हैं । अट्ठाईस नरकों के नाम जैसे--तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, शूकरमुख, अन्धकूपक्रिमिभोजन, सन्दशन, तप्तशूर्मि, वज्रकण्टकशाल्मलि, वैतरणी, पूयोद प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि, आपःपान, क्षार कर्दम, रक्षोगण भोजन, शूल प्रोत, दन्दशूक, अवटनिरोध, पर्य्यावर्त्त और शूची मुख यह कई एक नरक संयमनी नामक नरक पुरीके समीप अत्यन्त नीची भूमिपर स्थितहैं । इस पुरीके समीप केही किसी स्थानमें अग्निष्वातादि पितृलोक स्थित हैं । ऊपरोक्त अट्ठाईस नरकों के लक्षण क्रमसे कहते हैं ॥

॥ प्रथम तामिस्र ॥

जो पराये धन, पुत्र, वा स्त्री का हरण करते हैं, वह तामिस्र नरकमें पहुँचाये जाकर क्षुधा, पिपासा, दण्ड, ताड़ना और तर्जनादि की पीड़ा को भोगते हैं ॥

॥ द्वितीय अन्धतामिस्र ॥

जो निज स्वामीको धोखा देकर उसकी भार्याको भोगते हैं वह अन्धतामिस्र नरक में पहुचाये जाते हैं और वहां ऐसी यन्त्रणाओं को भोगते हैं कि–उस यातना से उनकी बुद्धि नष्ट होजाती है और अन्य किसी विषयमें दृष्टि नहीं रहती कि जिससे उद्धार हो ॥

॥ तृतीय रौरव ॥

जो, यह शरीरही मैं हूं, मेरा धन, मेरी स्त्री, मेरा पुत्र है इसप्रकार अभिमानी होकर अनेकों प्राणियों की हिंसा करते हुये पुत्र कलत्रादि का भरण पोषण करते हैं वह रौरवनामक नरकमें पहुंचाये जाते हैं और इन अभिमानियोंने जिन जीवों की जिस २ प्रकारसे हिंसा करी होती हैं, वह जीव इस नरकमें सबकी अपेक्षा अतिक्रूर रुरुनामक एकप्रकारके प्राणी होकर, उन पाप मति अभिमानी पुरुषों की तिसी २ प्रकारसे हिंसा करते हैं ॥

॥ चतुर्थ महारौरव ॥

जो प्राणी हिंसा करकै केवल अपने उदरको पूर्ण करतेहैं वह महारौरव नामक नरकमें जाते हैं, उन्होंने जिन २ प्राणियों की हिंसा करी होती है,वह प्राणी इस नरकमें पूर्वोक्त प्रकारके रुरु नामक प्राणी बनकर नानाप्रकार की पीड़ा देते हुये उन मांसाहारियों का मांस तोड़ २ कर खाते हैं ॥

॥ पञ्चम कुम्भीपाक ॥

जो देहको पुष्ट करने के लिये जीवित पशु पक्षीको पकड़ कर पकाते हैं, उनको यमके दूत कुम्भीपाक नरकमें डालकर औटते हुये तेलके कढ़ाओं में डालकर पकाते हैं ॥

॥ षष्ट कालसूत्र ॥

जो पुरुष ब्राह्मण का अपकार करता है वह काल सूत्र नामक, नरकमें जाता है, कालसूत्र नरक की परिधि दशसहस्रयोजन है, उसमें ताम्रमय समतप्त भूमि है, ब्राह्मण द्रोही इस नरक में पहुंचकर ऊपर सूर्यकी तीक्ष्ण किरणों से और नीचे अग्निकी लपटों से सन्तापित किये जाते हैं, एवं क्षुधासे कातर और पिपासा से भीतर बाहरसे सूखते रहते हैं, वह इस पीड़ाके कारण कभी सोते हैं, कभी बैठते हैं, कभी खडे हो जाते हैं कभी भागने लगते हैं। पशुके शरीरमें जितने रोमहैं उतने हजारवर्ष उनको इसप्रकार की पीड़ा भोगनी पड़तीहै॥

॥ सप्तम असिपत्रवन ॥

जो पुरुष अपनी इच्छानुसार वेद विहित मार्गका उल्लङ्घन करके पाखण्ड धर्मका अवलम्बन करते हैं यमदूत उनको असिपत्रवन नामक नरकमें डालकर कोड़ों की मार देते हैं, वह इन कोड़ों की मारकी पीड़ासे अस्थिर होकर इधर उधर को भागते हैं। असिपत्रवन नरकमें अनेकों तालके वृक्ष हैं, उनके पत्ते सबओरसे तरवार की समान धारवाले हैं, इस नरक के

पुरुष जब इधर उधर को भागते हैं तब यह तरवार कीसी धारवाले तालके पत्ते के ऊपर गिरते हैं और शरीर छिन्न भिन्न होजाता है उस समय वह हाय ! मरगया, इसप्रकार कहकर आर्त्त स्वरसे रोदन करते २ बार २ मूर्छित होजाते हैं (आजकल स्वामीदयानन्द के चेलेभी वेदके नामसे बड़ीडीग मारते हैं सो हमारे सनातनधर्म्मावलम्बी उनके मत को वेद विहित न समझें, क्योंकि–वह केवल वेदका नाम मात्रही पक्ष रखते हैं, प्रथमतौ प्राचीन ऋषि महर्षियों के वेद भाष्यों का तिरस्कार करके एक साधारण पण्डित संन्यास भ्रष्ट स्वामी दयानन्द के कपोल कल्पित भाष्यके अनुसार वेदका प्रमाण मानते हैं, तिसपरभी यदि कहीं अपनी इच्छा के प्रतिकूल होतो अपनी अपनी बुद्धिसे सर्वथा अनर्गल अर्थ करनेतकको तयार होजाते हैं, यदि किसी प्रकार भी न बने तो क्षेपक बतला देते हैं, वास्तवमें स्वामीदयानन्द के मतमें और पहिले नास्तिक चार्वाकके मतमें कुछ नाम मात्रकाही भेदहै,चार्वाक वेदका प्रमाण विल्कुल नहीं मानता, स्वामीदयानन्दने अपनी इच्छानुकूल अर्थ करके उस अर्थ के अनुसार वेदको प्रमाण मानाहै, बाकी श्राद्ध निन्दा ब्राह्मण निन्दा आदिमें दोनोंएक समान हैं, अब कहिये कि–क्या यह वेदानुयायी मत होसक्ता है ? नहीं कदापि नहीं, किन्तु स्वामीदयानन्द के मतका पाषण्ड मत कहना अनुचित नहीं है, अतः हमारे जिनभाइयों को असिपत्रवन नामक नरकमें जानेकी इच्छा नहो वह इस मतसे सर्वथा बचे रहैं ॥

॥ अष्टम शूकरमुख ॥

जो राजा अथवा राजकर्मचारी निरपराध पुरुषको दण्ड देता है अथवा दण्डार्ह ब्राह्मण को शारीरिक दण्ड देताहै वह शूकर मुख नामक नरकमें पड़ता है, वहां यमदूत उसके शरीर के प्रत्येक अवयव को इक्षुदण्ड (गन्न-पौंड़ा-ईख) की समान कुचलते हैं उस कुचलने की पीड़ासे अधीर होकर आर्त स्वरसे रोदन करता हुआ बारम्बार मूर्छित होजाता है ॥

॥ नवम अन्धकूप ॥

विधाताने सकल पुरुषों के लिये विहित कार्यका अनुष्ठान और निषिद्ध कार्यका अकरणरूप नियम स्थापन करके एक एककी वृत्ति नियत करी है, सो जो प्राणी जानसक्ते हैं कि-चोट लगने से कष्ट होता है वह यदि-जिन जीवों को अन्य का रुधिर पान आदि विहित है और उनको ऐसाज्ञान नहीं है कि-हम जिसके रुधिरको पियेंगे उसको कष्ट होगा ऐसे प्राणियों को अर्थात् मच्छड़, खटमल, जूं जलौका आदि को मारते हैं तो वह सब प्राणी अन्धकूप नामक नरकमें जाते हैं, उन्होंने जिन मच्छड़ खटमल आदिका विनाश किया होता है वह इस नरक में तीखे दांतों से उन मारनेवालों को काटकर मारने का प्रतिफल देते हैं, वह उस काटने की पीड़ा से अस्थिर होकर इधर उधर घूमते हैं, निद्रा को प्राप्त नहीं होसक्ते हैं, जीव कुशरीर पानेपर जैसा कष्ट भोगता है, यह भी वैसाही क्लेश भोगते हैं ॥

॥ दशम क्रिमिभोजन ॥

खाद्य वस्तु प्राप्त होनेपर जो पुरुष, उसका विभाग करके सबको बिना दिये स्वयंही भक्षण करलेता है और पञ्चयज्ञ का अनुष्ठान नहीं करता है उसको काक समान मानना चाहिये, ऐसा पुरुष मरणके अनन्तर क्रिमि भोजन नामक नरक में जाकर क्रिमि (कीडे) का जन्म धारण करता है और इस नरकमें अनेकों क्रिमि हैं उन सब क्रिमियों का भोजन करता है तथा वह क्रिमि इसको भक्षण करते हैं, जबतक बिना बांट करदिये भक्षण करता है और अहुत द्रव्यके भोजन करने का पाप क्षीण नहीं होता है उस समयतक यह आकृत प्रायश्चित्त पुरुष इसप्रकारही पीड़ाको भोगता रहता है

॥ एकादश सन्दंश ॥

जो पुरुष चोरी के द्वारा अथवा जबरदस्ती ब्राह्मण के सुवर्ण रत्नादि का हरण करता है वह सन्दंश नाम नरक में पड़ता है, यमदूत अग्निमें तपाये हुये लोहके गोलों से उसके शरीरको जलातेहैं और सण्डासियों से उसके मांसको तोड़तेहैं

॥ द्वादश तप्तशूर्मि ॥

जो पुरुष अगम्य स्त्री से सहवास करता है, अथवा जो स्त्री अगम्य पुरुष से व्यभिचार करती है, यमदूत उस पुरुष और उस स्त्री को तप्तशूर्मि नामक नरकमें लेजाकर कोड़ों की मार देते हुये, पुरुष को जलती हुई लोहकी स्त्री की मूर्त्तिसे

और स्त्री को प्रज्वलित लोहमय पुरुषकी प्रतिमा से आलिङ्गन कराते हैं॥

॥ त्रयोदश वज्रकण्टकशाल्मली ॥

जो पुरुष पशु आदिकों के साथ स्त्री सहवास करता है यमदूत उसको वज्र की समान काटोंयुक्त शाल्मली के वृक्षके ऊपर चढ़ाकर टांग देते हैं॥

॥ चतुर्दश वैतरणी ॥

जो राजा वा राज पुरुष अखण्ड धर्म सेतु को तोड़ता है वह वैतरणी नदीमें पड़ता है वैतरणी नदी नरक की चारों ओर की खाईरूप है इसमें विष्य, मूत्र, पीव, रुधिर, केश, हड्डी, नख और दुर्गन्ध चर्वी एवं मांसका स्रोत बहताहै तथा उसमें अनेकों भयंकर जलजन्तु हैं, वह सब जलजन्तु पापात्माओं को इधर उधर को खचेड़कर उनका मांस खाते हैं, उससे पापियों का मरण नहीं होता है, केवल पीड़ासे अस्थिर होकर अपने कर्मके विपाक को स्मरण करते हैं॥

॥ पंचदश पूयोद ॥

जो वृषलीपति होकर शौचाचार नियम और लज्जा का त्याग करते हैं वह विष्ठा मूत्र, पीव, लार और कफसे भरे हुए पुयोद नामक नरक में जाकर इन सब अपकृष्ट वस्तुओं का भक्षण करते हैं॥

॥ षोड़श प्राणरोध ॥

जो ब्राह्मण कुक्कुर और गर्दभों के स्वामी होकर विहित कालके सिवाय मृगया करते हैं वह प्राणरोध नरक में पहुंचाए जाते हैं, तहां यमदूत उनको बाण छोड़कर बेधते हैं।

॥ सप्तदश विशसन ॥

जो दम्भिक पुरुष दम्भ दिखाने के लिये अनुष्ठित यज्ञमें पशु हिंसा करते हैं, यमदूत उनको विशसन नामक नरक में डालकर नाना प्रकार की पीड़ाएं देकर हिंसा करते हैं॥

॥ अष्टादश लालाभक्ष ॥

जो पुरुष द्विज कुलमें जन्म ग्रहण करके कामसे मुग्ध हो सवर्णा भार्या को रेतः पान कराता है, यमदूत उसको लाला भक्ष नामक नरक में डालकर रेतः पान कराते हैं॥

॥ ऊनविंश सारमेयादन ॥

जो लुटेरापन करते हैं, अथवा किसी के घरमें अग्नि देते हैं, किम्वा प्राण विनाश के लिये किसी को विष पिलाते हैं, तथा जो राजा वा राजसेना के पुरुष स्वार्थ सिद्धिके निमित्त ग्राम का नाश करते हैं वह सारमेयादन नामक नरकमें जाते हैं तहां भयानक आकृति के साथ सौ कुक्कुर हैं, वह वज्र की समान अपनी दाढ़ों से इन दुरात्माओं का खण्ड खण्ड करके भक्षण करते हैं॥

॥ विंशतितम अवीचि ॥

जो मिथ्या गवाही देते हैं अथवा क्रय विक्रय में मिथ्या बोलतेहैं अथवादेंगे ऐसा कहकरनहीं देते हैं, मरण होनेपर यमदूत उनको लेजाकर सौ योजन ऊंचे पर्वतके शिखर पैसे नीचे को शिरकरके अवीचि नामक नरकमें डालदेतेहैं, अवीचि नरक तरङ्गों कीसमान ऊंचे नीचे पत्थरों का स्थानहै, पापात्माओं का इस स्थानसे गिरनेपर प्राणबियोग नहीं होता है, केवल शरीर चूरा चूराहोजाताहै यमदूत उनको केवल एक बारही उस पर्वत के शिखरसे अवीचि नामक नरक में डालकर छोड़ नहीं देते हैं किन्तु वह बार २ उनको सौ योजन ऊंचे पर्वत के शिखर पैसे नीचेको शिर करके अवीचि नामक नरक में डालते हैं उससेपापी पुरुष निरन्तर केवल यन्त्रणाओं को भोगते हैं ॥

॥ एकविंश अपःपान ॥

जो ब्राह्मण वा ब्राह्मणी सुरापान करते हैं वह अपःपान नामक नरक में पड़ते हैं, तहां यमदूत उनकी छातीपर बैठके अग्नि से ताए हुए लोहे को उनके मुखमें डालते हैं ॥

॥ द्वाविंश क्षारकर्दम ॥

जो पुरुष नीच होकर, जन्म, वर्ण, आश्रम, बिद्या, सदाचार अथवा तपस्या के द्वारा श्रेष्ठतर पुरुष का अहङ्कार पूर्वक असन्मान करता है वह जीवितही मृतवत् होता है और मरण के अनन्तर यमदूतों के द्वारा नीचे को शिरवाला होकर

क्षार कर्दम नामक नरक में डाला जाता है तहां वह असह्य पीड़ाओं को भोगते हैं ॥

॥ त्रयोविंश रक्षेभोजन ॥

जो पुरुष यज्ञमें मनुष्य की हिंसा करता है, और जोस्त्री पशुकी हिंसा करके मांस भक्षण करती है, यह दोनों मरण होने के अनन्तर रक्षोगण भोजन नामक नरक में जाते हैं, इन्होंने जिस मनुष्य वा पशु की हिंसा करी होती है, वहही इस नरक में राक्षस रूप से जन्म धारण करके हिंसा करने वालों के शरीर को छिन्न भिन्न करते हैं और तिसी प्रकार आनन्द के साथ उनके रुधिर को पान करते हुए नृत्य करते हैं, जिस प्रकार आनन्द के साथ उन पापियों ने इनके मांस को भक्षण किया था ॥

॥ चतुर्विंश शूलप्रोत ॥

जो मनुष्य किसी निरपराधी पशु पक्षी आदि प्राणी को किसी प्रकार से बिश्वास कराकर अपने वशमें करके उनका पिंजरेवा सूत्र में वन्धन करते हैं, जीवन की आशा से पला यन करने का उद्यत उन प्राणियों को नाना प्रकार की पीड़ा देकर जो क्रीड़ा करते हैं वह शूल प्रोत नामक नरक में जाते हैं, इस नरक में वह शूलके द्वारा विद्ध, तीखी चोंच वाले पक्षियों की चोंचों की प्रहार से घायल और भूख प्यास से मृतक की समान होते हैं ॥

॥ पञ्चविंश दन्दशूक ॥

जो उग्र स्वभाव के पुरुष प्राणियोंको पीड़ा देतेहैं वह दन्दशूक नरक में जातेहैं, इस नरकमें पञ्चमुख सप्तमुख आदि अनेक सर्प हैं वह उनको मूषक की समान पकड़कर भक्षण करते हैं

॥ षड्विंश अवटानिरोध ॥

जो पुरुष प्राणियों को अन्धकार मय बिवरगुफा, कोटे आदि में बन्द करके रखते हैं वह विषकी समान धूम से भरे हुये अवट निरोध नामक नरकमें बन्द करे जाते हैं ॥

॥ सप्तविंश पर्य्यावर्त ॥

जो गृहस्थ अतिथि अर्थात् अपरिचित पुरुष अथवा अभ्यागत अर्थात् परिचित पुरुष को आया देखकर क्रोध की दृष्टिसे देखते हैं, वह पर्यावर्त नामक नरक में जाते हैं. इस नरक में वज्रकी समान चोंचवाले गृध्र आदि पक्षी जबरदस्ती उनके नेत्र निकालते हैं ॥

॥ अष्टाविंश सूचीमुख ॥

जो धनाभिमानी पुरुष धनके खर्च होजाने के अथवा नष्ट होजाने के सन्देह से सबके ऊपर वक्र दृष्टि रखते हैं सशंक रहते हैं तथा उचित व्यय न करके धनका संचय करते हैं, उन का सूचीमुख नामक नरक में जाना पड़ता है, उस नरक में यमके दूत उनके सब शरीर को सुइयों से बेधकर तन्तुवाय (जुलाहे) की समान सब शरीर में सूत्र पिरोते हैं। महर्षि

बेदव्यासका कथन है कि–इन अठ्ठाइस प्रकार के नरकों के सिवाय और सैकड़ों सहस्रों प्रकार के नरक हैं, पापी पापके न्यूनाधिक भाव और स्वरूप के अनुसार उन सब नरकों में लेजाये जाते हैं, तहां पापका उचित फल भोग कर कुछ शेष रहने पर नरक से छूटते हैं और फिर प्रारब्ध के वशीभूत होकर जन्म ग्रहण करते हैं ॥

॥ दयानन्दीयमतखण्डन ॥

॥ लेखराम का महा झूठ लेख ॥

पुराण किसने बनाये इस नामकी एक छोटी सी पुस्तक लेखराम दयानंदी कृत हमारे दृष्टिगोचर हुई उसमें सर्वथाझूठ और अयुक्तही लेख है देखिये पृष्ठ १० में भागवत के नामसे लिखाहै कि नारदजीने विष्णु से कहा कि म्लेच्छोंने महादेव जीका मंदिर तोड़ डाला और महादेव जी ज्ञानवापी अर्थात् कुए में डूबगये फिर लिखाहै कि यह वृत्तान्त औरंगजेब के समय हुआथा जिसने विक्रम के १७१३ से १७६४ तक राज्य किया सो भागवत को बनेहुए केवल १८७ वर्ष हुए हैं इति, हम सम्पूर्ण दयानंदियों से प्रतिज्ञा पूर्वक कहते हैं कि मृत लेख राम का उक्त लेख सर्वथा झूठ है भागवत में औरंगजेब के समय को उक्त कथा कहीं भी नहीं है यदि कोई दयानन्दी उसको सत्य जाने तौ भागवत में (म्लेच्छों ने महादेव जीका मन्दिर तोड़ डाला और महादेव जी ज्ञानवापी अर्थात् कुएमें

डूबगये) यह लेख दिखायें नहीं तो लेखराम के मिथ्या लेख को प्रकट करके अज्ञों को उसके जालसे बचावे। फिर पृष्ठ १२ में देवी भागवत के नामसे लिखा है कि एक राजा का लड़का म्लेक्ष वेश्यापर आसक्त होगया यहां उसका आक्षेप यह है कि जब मुसलमान नहीं आये तब मुसलमान रण्डियां नथीं इससे देवी भागवत मुसलमानो के समय में बनी है इति, देवीभागवत में यह कथा है वा नहीं इसके अतिरिक्त यहाँ लेखराम की महा अज्ञता स्पष्ट प्रकट है कि म्लेच्छ शब्द का अर्थ मुसलमान समझा है उसने अपने गुरुका पोथा भी नहीं देखा था देखो सत्यार्थ मुद्रित सन् १८८४ के पृष्ठ २२९ में लिखा है कि देवासुर संग्राम में आर्यावर्तीय अर्जुन तथा महाराजा दशरथ आदि हिमालय पहाड़ में आर्य और दस्यु म्लेच्छ असुरों का जो युद्ध हुआ था उसमें आर्योंके सहायक हुये थे अबजो कोई लेखराम को विद्वान् जाने और म्लेक्ष शब्द का अर्थ मुसलमान माने वह बताये कि जब अर्जुन और महाराजा दशरथ आर्य दस्यु म्लेच्छ असुरों के युद्ध में आर्यों की सहायता को गयेथे तौ क्या मुसलमान अर्जुन और महाराजा दशरथ के समय में विद्यमान थे फिर उसी पृष्ठ में दयानन्द ने मनुके यह वाक्य लिखेहैं कि ॥

"आर्यवाचोम्लेच्छवाचःसर्वेतेदस्यवःस्मृताः१"

"म्लेच्छदेशस्त्वतःपरः"

अब जो कोई लेखराम के लेखको सत्य जानेगा वह मनु कोभी मुसलमानों के समय का बनाहुआ मानेगा फिर लेख-

रामने अपनी पोथी के पृष्ठ १३ में अत्रिस्मृतिका एक अशुद्ध श्लोक लिखा है और भागवता भवंति इस पदका अर्थ भागवत पुराण बांचते हैं यह किया है इससे उसकी महामूर्खता प्रकट है भागवताभवंति का अर्थ भागवत बांचते हैं कदापि नहीं किन्तु भगवत् सम्बन्धी अर्थात् साधु होते हैं यह है उक्त श्लोक के अर्थ में लेखराम ने प्रथम यह लिखा है कि शास्त्र से हीन पुराण बांचते हैं पुराणों से हीन हल जोतते हैं फिर यह कहना कि सबसे पतित भागवत पुराण बांचते हैं सर्वथा असमञ्जस है कि पुराणों के कहनेसे भागवत का ग्रहण प्रथमही होचुका भागवतपुराणों से पृथक् नहीं है इतनेही लेख से लेखराम का अनृत कथन और अज्ञता स्पष्ट प्रकट है अधिक लिखना आवश्यक नहीं क्योंकि सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४६१ के लेखानुसार कि एक हंडमें चुड़ते चावलों मेंसे एक चावल की परीक्षा करने से कच्चे वा पक्के हैं सब चावल विदित होजाते हैं । इस थोडेही लेखसे लेखराम का समस्त लेख झूठा और अयुक्त प्रकट होगया हमने दयानन्दही के ग्रन्थों में सैंकड़ों अशुद्ध शास्त्र विरुद्ध और असमञ्जसादि लेख दिखाये हैं लेखराम और कृपाराम आदिकी तो क्या कथा है सज्जनलोग इन लोगों के लेखोंपर कदापि विश्वास न करें इन्होंने सत्यके नाश और असत्य के प्रकाशही पर कमर बांधी है ॥

॥ यह पक्षपातहै वा पांडित्य ॥

तुलसीराम दयानन्दी श्वेताश्वतरोपनिषत् की व्याख्या

में "योब्रह्माणं विदधातिपूर्वं योवैवेदांश्चप्रहिणोतितस्मै" इस श्रुतिका अर्थ लिखते हैं कि जो आदिमें (ब्रह्माणं) वेद वेत्ता को बनाता और उसके लिये वेदों को प्रदान करता है "इति देखिये श्रुतिमें ब्रह्माणम् पद ब्रह्माशब्द की द्वितीया का एक वचन है जिससे श्रुतिका सीधा अर्थ यह चाहिये कि जो (परमात्मा) सृष्टिकी आदिमें श्री ब्रह्माजी को उत्पन्न करता है और जो उनके लिये वेदों को देता है। न जाने तुलसी-राम जीने ब्रह्माणं पदका अर्थ "वेद वेत्ताको" कैसे किया ? पक्षपातसे दयानन्द जीने अपनी अज्ञतासे लिखा है कि सृष्टि की आदिमें अग्नि वायु आदित्य और अंगिरा उत्पन्न हुये परमात्माने उन चारों के हृदयमें वेदों का प्रकाश किया, पूर्वोक्त श्रुतिमें दयानन्दजी की कपोल कल्पना के विरुद्ध सृष्टि आदिमें परमात्माने ब्रह्माजी को उत्पन्न किया और उनको वेद दिये यह स्पष्ट है, अतएव ब्रह्माणं पदका अर्थ वेद वेत्ताको ऐसा लिखदिया परन्तु गुरुका अर्थ फिरभी सिद्ध न हुआ क्योंकि तुलसीराम जीके लेखानुसार एक वेद वेत्ताको वेदों का प्रदान किया अग्न्यादिचार को नहीं, वेद वेत्ताको वेदों का प्रदान करना सर्वथा असङ्गत है अब कोई तुलसी राम जीसे पूछे कि किस वेद वेत्ताको आदिमें वेदों का प्रदान करता है तो अवश्य ब्रह्माजीको कहना पडेगा क्योंकि ब्रह्माणं पदका अन्य अर्थ समञ्जस न होगा। यदि हठात् और कुछ कहेंगे तो हम दयानन्दजी का लेख दिखाएँगे कि उन्होंने उक्त श्रुतिकी व्याख्यामें ब्रह्माणं पदका अर्थ ब्रह्माकोही कियाहै

॥ सम्पूर्ण दयानंदियों से निवेदन ॥

हे महाशयो समस्त विद्वानोंने ११३१ शाखाओं को वेदही माना है शाखाओं को वेदसे भिन्न नहीं जाना और दयानन्दजीने शाखाओंको वेद नहीं माना किन्तु उनको ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये वेदों के व्याख्यानरूप ग्रन्थ जाना है परन्तु उन्होंने जिन ऋगादि चार संहिताओं को ईश्वर प्रणीत वेद माना है वास्तवमें वेभी ११३१ शाखान्तर्गत चार शाखाही हैं शाखाओं से पृथक् कदापि नहीं जिसको आप लोग ऋग्वेद मानते हैं वह आश्वलायन गृह्यसूत्र और कात्यायनमुनि कृत ऋग्वेद सर्वानुक्रमणिका के लेखानुसार शाकल नाम शाखाहै जिसको आप यजुर्वेद कहते हैं उसके प्रत्येक अध्याय की इतिश्रीमें उसको माध्यान्दिन शाखा लिखाहै उक्त वेदका शतपथ ब्राह्मण है उसके प्रत्येक पृष्ठपर उसको यजुर्वेद माध्यान्दिन शाखा का ब्राह्मण लिखा है महीधर उवट आदि भाष्यकारोंने अपनी भूमिका में उसको माध्यान्दिन शाखा लिखाहै कात्यायन महर्षिने अपने बनाये प्रतिज्ञा सूत्र और सर्वानुक्रम सूत्रोंके प्रारम्भमें उसको माध्यान्दिन शाखाही लिखाहै जिस को तुम सामवेद कहते हो वह कौथुमी शाखा है इसकी व्याख्या चरण व्यूहमें स्पष्ट है आप लोग जिसको अथर्व वेद मानते हैं सायणाचार्यने अपने भाष्यके प्रारम्भमें उसको शौनकीय शाखा लिखा है इत्यादि प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध है कि उक्त ऋगादि चारों संहिता जिनको आप मूल वेद मानते हैं वे ११३१ शाखान्तर्गत चार शाखा हैं उनसे पृथक् कदापिनहीं

अब यदि आपलोग स्वामी जीके लेखानुसार हठ दुराग्रह से शाखाओं को वेद न माने तो उक्त चार संहिताओं कोभी वेद न जानें किन्तु उनको ब्रह्मादिक महर्षियों के बनाये वेदों के व्याख्यानरूप ग्रन्थ बतलायें और अन्यचार वेदों का पता लगायें जबतक आपके मतानुसार प्रबल प्रमाण पूर्वक वेदों का पता न लगे तबतक आपलोग मत विषयक वार्त्तामें किसी के सन्मुख किसीप्रकार जिह्वा न हिलायें किन्तु सर्वथा मौन हो जायें क्योंकि आपको धर्माधर्म के निर्णयमें केवल वेदही प्रमाण हैं और उनका पता नहीं जिनको आपके गुरुने वेद मानाथा वे शाखा सिद्ध होगई और शाखा आपके मतमें वेद हैं नहीं अब उक्त ऋगादि चार संहिताओं को ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये वेदों के व्याख्यानरूप ग्रन्थ बतलाइये और वेद क्या पदार्थ हैं इसका सम्यक् पता लगाइये अथवा पूर्व विद्वानों के मतानुसार ११३१ शाखाओं को वेद मानिये और स्वामीजीके सिद्धान्त को उनका कपोल कल्पित सर्वथा मिथ्या और त्याज्य जानिये यदि आप बलात्कार उक्त चार शाखाओं कोही वेद मानें तो स्वामी जीका लिखा हुआ सम्पूर्ण विधि निषेध उनहीं में दिखाइये अथवा उससे हाथ उठाइये ॥

॥ दयानन्द की बुद्धि ॥

एक समाजी महाशय अपनी बुद्धिकी भ्रान्तिसे अथवा द्वेषाग्नि की प्रेरणों से उलटा चोर कोतवाल को डांडे इस कहावतके अनुसार हमको भ्रान्ति बुद्धि बतलाते हैं अपने गुरु

का दोष हमारे ऊपर लगाते हैं उन्होंने सभ्यता के विरुद्ध सर्वथा अशुद्ध हमको यह लिखा हैं कि अपनी बुद्धिकी भ्रांन्ति से अथवा द्वेषाग्नि की प्रेरणा से कुछेक दिनोंसे आंय वांय शांय वकने लगाहै हमने उनके गुरुकी बुद्धिकी भ्रान्ति स्वधर्म रक्षार्थ विस्तारपूर्वक जगत् को दिखाई है और अपने सत्य लेखसे मिथ्यावादियों पर सम्यक् विजय पाई है अब उक्त महाशय की प्रेरणा से पुनः उसकी बुद्धिकी भ्रान्ति और द्वेषाग्नि का नमूना दिखाताहूं और अज्ञों को उसके जालसे बचाताहूँ नहीं २ उक्त महाशय ने एक समस्या दीहै और हमने उसकी सम्यक् पूर्त्ति की है इसको महेश जीका प्रसाद जानिये और दयानन्द का गुणानुवाद मानिये देखिय दयानन्द कृत ग्रन्थों में प्रायः वेदादि सत्शास्त्र विरुद्ध महा अशुद्ध सर्वथा मिथ्या और असमञ्जसादि लेख भरे पडे हैं इससे प्रतीत होता है कि उसने अपनी बुद्धिकी भ्रान्तिसे अथवा द्वेषाग्नि की प्रेरणा से जो कुछ मुखमें आया सो आंय वांय शांय बकदिया और जी चाहा सो लिखदिया देखो दलपतराय सङ्कलित दयानन्द जीवन चरित्र पृष्ठ ५८ । ५९ तथा ६० में उनका कथन है कि खोटी प्रारब्धसे इस जगह मुझे एक बड़ा ऐब लगगया अर्थात् मुझको भङ्ग पीनेकी आदत होगई किसी २ समय उसके कारणमैं सर्वथा वेहोश होजाया करता था-वहां जब मैं भङ्गके नशे से मदहोश और बेहोश कर बैठा हुआ-प्रातःकाल एक स्त्रीने मुझे दही दिया मैंने खालिया दही बहुत खट्टा था इसलिये भङ्गका नशा उतारने

को एक अच्छी औषधि होगई। पाठकगण विचार कीजिये कि पहिले दिन भांगपी और दूसरेदिन दही खानेसे नशा उतरा ऐसे भङ्गकी बुद्धि भ्रांत होनेमें क्या संदेह है वह आप कहता है कि मैं भङ्गके नशे में बहुधा बेहोश होजाया करता था यहांसे स्पष्ट सिद्ध है कि उसने अपनी बुद्धिको भ्रांतिसे और द्वेषाग्नि की प्रेरणा से जो कुछ मुखमें आया सो आंय वांय शांय बकदिया और चाहा सो लिखदिया उक्त जीवन चरित्रके पृष्ठ २७ में दयानन्द का कथन है कि मुझे पूरा २ निश्चय होगया कि ब्रह्म मैंहीहूँ इससे अधिक बुद्धिकी भ्रांति क्या होगी और ऐसे अज्ञानीको शांति क्या पृष्ठ ३७तथा३८ से प्रकट है कि उसने जिन्न पुरुषों को अपनी आंखोंसे गोवध करते और गो मांस खाते देखा उन्हीं से सीधा आदि लेकर अपने ब्रह्मचारी से भोजन बनवाया और खाया कहिये यह बुद्धिकी भ्रांति का काम है वा अज्ञता का परिणाम पृष्ठ ६४ तथा ६५ में आपका वर्णन है कि मैं एक भयानक जगहमें घुस गया और एक वृक्षके नीचे पड़रहा वहां दो पहाड़ी अपने एक सरदार सहित मुझको अपनी झोपड़ियों में बुलाने के लिये आये परन्तु मैंने उनके (भोजनादि) सत्कार स्वीकार न किया क्योंकि वे सब मूर्त्ति पूजक थे, धन्य जिनको अपनी आंखों गोवध करते और गोमांस खाते देखा उनसे सीधा आदि लेकर भोजन करना तो स्वीकार किया और मूर्त्ति पूजकों के सत्कार का तिरस्कार ये बुद्धिकी भ्रांति का अन्धकार है वा द्वेषाग्नि की प्रेरणा का चमत्कार यहभी ध्यानरहे

का दोष हमारे ऊपर लगाते हैं उन्होंने सभ्यता के विरुद्ध सर्वथा अशुद्ध हमको यह लिखा है कि अपनी बुद्धिकी भ्रांन्ति से अथवा द्वेषाग्नि की प्रेरणा से कुछेक दिनोंसे आंय वांय शांय बकने लगाहै हमने उनके गुरुकी बुद्धिकी भ्रान्ति स्वधर्म रक्षार्थ विस्तारपूर्वक जगत् को दिखाई है और अपने सत्य लेखसे मिथ्यावादियों पर सम्यक् विजय पाई है अब उक्त महाशय की प्रेरणा से पुनः उसकी बुद्धिकी भ्रान्ति और द्वेषाग्नि का नमूना दिखाताहूं और अज्ञों को उसके जालसे बचाताहूँ नहीं २ उक्त महाशय ने एक समस्या दीहै और हमने उसकी सम्यक् पूर्त्ति की है इसको महेश जीका प्रसाद जानिये और दयानन्द का गुणानुवाद मानिये देखिय दयानन्द कृत ग्रन्थों में प्रायः वेदादि सत्शास्त्र विरुद्ध महा अशुद्ध सर्वथा मिथ्या और असमञ्जसादि लेख भरे पडे हैं इससे प्रतीत होता है कि उसने अपनी बुद्धिकी भ्रान्तिसे अथवा द्वेषाग्नि की प्रेरणा से जो कुछ मुखमें आया सो आंय वांय शांय बकदिया और जी चाहा सो लिखदिया देखो दलपतराय सङ्कलित दयानन्द जीवन चरित्र पृष्ठ ५८। ५९ तथा ६० में उनका कथन है कि खोटी प्रारब्धसे इस जगह मुझे एक बड़ा ऐब लगगया अर्थात् मुझको भङ्ग पीनेकी आदत होगई किसी २ समय उसके कारणमें सर्वथा बेहोश होजाया करता था—वहां जब मैं भङ्गके नशे से मदहोश और बेहोश कर बैठा हुआ—प्रातःकाल एक स्त्रीने मुझे दही दिया मैंने खालिया दही बहुत खट्टा था इसलिये भङ्गका नशा उतारने

को एक अच्छी औषधि होगई। पाठकगण विचार कीजिये कि पहिले दिन भांगपी और दूसरेदिन दही खानेसे नशा उतरा ऐसे भङ्गकी बुद्धि भ्रांत होनेमें क्या संदेह है वह आप कहता है कि मैं भङ्गके नशे में बहुधा बेहोश होजाया करता था यहांसे स्पष्ट सिद्ध है कि उसने अपनी बुद्धिको भ्रांतिसे और द्वेषाग्नि की प्रेरणा से जो कुछ मुखमें आया सो आंय वांय शांय बकदिया और चाहा सो लिखदिया उक्त जीवन चरित्रके पृष्ठ २७ में दयानन्द का कथन है कि मुझे पूरा २ निश्चय होगया कि ब्रह्म मैंहीहूँ इससे अधिक बुद्धिकी भ्रांति क्या होगी और ऐसे अज्ञानीको शांति क्या पृष्ठ ३७तथा३८ से प्रकट है कि उसने जिन पुरुषों को अपनी आंखोंसे गोवध करते और गो मांस खाते देखा उन्हीं से सीधा आदि लेकर अपने ब्रह्मचारी से भोजन बनवाया और खाया कहिये यह बुद्धिकी भ्रांति का काम है वा अज्ञता का परिणाम पृष्ठ ६४ तथा ६९ में आपका वर्णन है कि मैं एक भयानक जगहमें घुस गया और एक वृक्षके नीचे पड़रहा वहां दो पहाड़ी अपने एक सरदार सहित मुझको अपनी झोपड़ियों में बुलाने के लिये आये परन्तु मैंने उनके (भोजनादि) सत्कार स्वीकार न किया क्योंकि वे सब मूर्त्ति पूजक थे, धन्य जिनको अपनी आंखों गोवध करते और गोमांस खाते देखा उनसे सीधा आदि लेकर भोजन करना तो स्वीकार किया और मूर्त्ति पूजकों के सत्कार का तिरस्कार ये बुद्धिकी भ्रांति का अन्ध-कार है वा द्वेषाग्नि की प्रेरणा का चमत्कार यहभी ध्यानरहे

कि स्वामीजी मूर्त्ति पूजकों केही रजवीर्य से प्रकट हुये मूर्त्ति पूजकों केही अन्नसे उनका शरीर बढ़ा जबतक सब जगह समाज स्थापित नहीं हुये मूर्त्ति पूजकों के भोजनादि सत्कार से पालन पोषण हुआ वास्तव में बात तो यह है कि समाजों के स्थापन होनेपर भी मूर्त्ति पूजकों के धन और अन्नादि का त्याग नहीं किया मूर्त्ति पूजक महाराज और धनी धर्मात्माओं से प्रत्यक्षही धन लिया जिसको आपने प्रशंसा पत्र समझकर अपने यजुर्वेद भाष्य अङ्क ४८ । ४९ के टाइटिल पेजपर छप वाया उसकी आदिमें श्रीमदेक लिंगेश्वरोजयति और स्वस्ति श्री लिखवाया छह महीने महाराज का अन्न घृत नैवेद्यादि पदार्थ खाया और चलतीबार दासहस्र रुपया गांठ बँधाया राज स्थानमें मूर्त्तिखण्डन का नाम न लिया धनके लोभसे स्वमत को सर्वथा त्यागदिया कहिये उनकी बुद्धिकी भ्रांति ही फलथा वा राज भय और धन तृष्णा का प्रबल बल पृष्ठ ८६ पर दयानन्द का कथन है कि मुझको एकलाश (मुरदा) दरया के ऊपर बहती हुई मिली मैं उसको पकड़कर किनारे पर लेआया तब मैंने उसको एक तेज चाकू से काटना प्रारम्भ किया मैंने दिलको उसमेंसे निकाला दिलको नाभिसे पसली तक काटा इसी तरह शिर और गरदन के एक भाग कोभी काटकर अपने सामने रखलिया इति। भला ये द्विजातियों और संन्यासियों का धर्म है वा नीचों का कर्म निःसंदेह उनसे बुद्धि भ्रान्तिने यह कर्म कराया और संन्यासको धब्बा लगाया वा झूठ बुलवाया और मिथ्यावादी बनाया पृष्ठ ८९ में है कि

जब मैं भङ्गके नशे में मदहोश और बेहोश होकर बैठाहुआ था और घोर निद्रामें सोताथा तो मैंने स्वप्नमें महादेव और पार्वती को देखा पार्वती महादेवजीसे कहरहीं थीं कि दयानन्द का बिवाह होजावे तो अच्छा है परन्तु महादेवने इसके विरुद्ध कहा और मेरी भङ्गकी तरफ इशारा किया अर्थात् भङ्गका जिक्र छेड़ा जब मैं जागा तो मुझे बड़ादुःख और क्लेश हुआ इति। यहां उनकी भ्रांतिका वारापार नहीं है और कलियुगाचार्य को सत्यासत्य तथा धर्माधर्म का विचार नहीं ये सारी भङ्गकी तरंगे हैं और विषयाशक्ति की उमंग बुद्धि की भ्रांति का विलाप है और भङ्ग के नशे में प्रलाप घोर निद्रा सुषुप्ति का नाम है वहां स्वप्नका क्या काम है विवाह का उत्साह मनमें बसा था संन्यासी का चित्त अनुचित कर्ममें फसाथा महादेवजीने उसके महा भङ्गड़ी होनेपर संकेतकिया और सन्यासी के विवाह का निषेध करदिया तब उसको बड़ा दुःख और महाक्लेश हुआ प्रतिकूल महेश हुआ शेर—क्यों नहो दुःख और क्लेश भला। जिसका होते बिवाह रुकजाये। सत्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८७५ के पृष्ठ ४५ में मांसादि पदार्थों से होम करना लिखा है पृष्ठ १४९ मांसके पिंड देनेमें कुछ पाप नहीं पृष्ठ १४८ गायको गधी की समान लिखा उसको घास जलभी दुग्धादि प्रयोजन के वास्ते देना अन्यथा नहीं पृष्ठ १७१ यज्ञके वास्ते जो पशुओं की हिंसा है सो विधिपूर्वक हनन है पृष्ठ ३०२ कोई भी मांस न खाय तो जानवर पक्षीमत्स्य और जलजन्तु जितने हैं उनसे शतसहस्र

गुने होजांय फिर मनुष्यों को मारने लगें और खेतों में धान्य ही न होने पावे फिर सब मनुष्यों की आजीविका नष्ट होनेसे सब मनुष्य नष्ट होजायँ पृष्ठ ३०३ जहां जहां गोमेधादिक लिखे हैं तहां तहां पशुओं में नरों का मारना लिखा है और एक बैलसे हजारहा गैयां गर्भवती होती हैं इससे हानिभी नहीं होती और बंध्या गाय होती है उसकोभी गोमेध में मारना क्योंकि बंध्यागाय से दुग्ध और वत्सादिकों की उत्पत्ती नहीं होती पृष्ठ ३९९ पशुओं को मारने में थोड़ासा दुःख होता है परन्तु यज्ञमें चराचर का अत्यन्त उपकार होता है इति पाठक गण ऐसा शास्त्र विरुद्ध अधर्मयुक्त लेख करना दयानन्द की भ्रान्त बुद्धिही का परिणाम है अथवा द्वेषाग्नि की प्रेरणा का काम संस्कार विधि मुद्रित सम्वत् १९३३ का पृष्ठ ११ जो चाहै कि मेरा पुत्र पण्डित सद सद्विवेकी शत्रुओं को जीतनेवाला स्वयं जीतने में न आनेवाला युद्धमें गमन हर्ष और निर्भयता करनेवाला शिक्षित वाणी का बोलने वाला सब वेद वेदाङ्ग विद्या का पढ़ने और पढ़ाने तथा सर्वायु का भोगनेवाला पुत्र होय वह मांसयुक्त भातको पकाके पूर्वोक्त घृतयुक्त खाय पृष्ठ ४२ अजाके मांसका भोजन अन्नादि की इच्छा करनेवाला तथा विद्या कामना के लिये तितिरका मांस भोजन करावे इति बुद्धिकी भ्रांतिने यहांतक तो भ्रमाया है कि उनसे मांस भोजन का उपदेश कराया है नहीं २ शिष्यों के लिये अद्भुत प्रयोग बताया है जिसका फल अपने लेखमें सम्यक् दर्शाया है पृष्ठ ४१ गर्भधारण से

चतुर्थ महीने में निष्क्रमण करै किम्वाइसके पूर्वभी यथायोग्य देखै तो करै बालक को वस्त्र पहिराके शुद्ध देशमें फिरावे इति यहां बुद्धिकी भ्रान्तिने स्वामी जीको कैसा नचाया है जिस की प्रेरणासे उन्होंने गर्भमें स्थित बालक को वस्त्र पहिरा के शुद्ध देशमें फिराना महा असम्भव गीत गाया है पृष्ठ १४१ मृतक के शरीर के बराबर घी और कर्पूर चन्दनादि सुगन्ध साथ लेले न्यूनसे न्यून बीससेर घी अवश्य होना चाहिये इतनाभी घृतादि न होय तो न गाडै न जलमें छोडे और न दाह करै किन्तु दूर जाके जङ्गलमें छोड़ आवै इति कहिये यह बुद्धिकी भ्रांतिकी लीला है वा वेदकी आज्ञा जङ्गल में मुरदे डाले जायँगे तो जगत् का उपकार होगा वा संहार कुछ हो बाबा वाक्य प्रमाण है गुरुकी आज्ञा माननेही में शिष्यों का कल्याण है पृष्ठ १६० मृतक की भस्म और अस्थिको भूमि में गाड़ देवें अथवा बाग वा खेतमें डालदेवें इति यहां तो बुद्धि भ्रांतिने खूब धूल उड़वाई गुरुजीने शिष्यों को मृत पुरुषोंकी भस्म और अस्थिको बाग और खेतमें डालने की अच्छीविधि सुनाई ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ २१४ विवाहित पतिके मरने वा रोगी होनेसे दूसरे पुरुष वा स्त्री के साथ संतानोंके अभावमें नियोग करै तथा दूसरे केभी मरण वा रोगी होनेके अनन्तर तीसरे के साथ करले इसीप्रकार दशवेंतक करनेकी आज्ञा है पुरुषके लिये भी विवाहित स्त्रीके मरजानेपर विधवा के साथ नियोग करने की आज्ञा है और जब वहभी रोगी हो मरजाय तो संतानोत्पत्ति के लिये दशम स्त्री पर्यन्त नि-

योग करलेवै–सत्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८८४ पृष्ठ ११८ (इमांत्वमिंद्र) इस मन्त्रमें ग्यारहवें पुरुषतक स्त्री नियोग कर सक्ती है वैसे पुरुषभी ग्यारहवीं स्त्रीतक नियोग करसक्ता है ००००० जब पति संतानोत्पत्तिमें असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवै कि हे सुभगे सौभाग्य की इच्छा करनेहारी स्त्री तू मुझसे दूसरे पतिकी इच्छाकर क्योंकि अब मुझसे संतानोत्पत्ति की आशा मत करै पृष्ठ ११९ विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्मको परदेश गया हो तो आठवर्ष विद्या और कीर्त्तिके लिये गया होतो छः और धनादि कामना के लिये गया हो तो तीन वर्ष बाट देखके पश्चात् नियोग करके संतानोत्पत्ति करले जब विवाहित पति आवै तब नियुक्त पति छूटजावै–जो पुरुष अत्यन्त दुःखदायक हो तो स्त्रीको उचितहै कि उसको छोड़के दूसरे पुरुषसे नियोगकरे संतानोत्पत्ति करके उसी विवाहित पति की दायभागी संतानोत्पत्ति कर लेवे पृष्ठ १२० गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागमन करने के समयमें पुरुष वा स्त्री से न रहा जाय तो किसीसे नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति करदे इत्यादि कहिये स्वामीजी ने बुद्धिकी भ्रांतिकी प्रेरणा से अथवा अपनी स्वाभाविकी अज्ञता से यह कैसा शास्त्र विरुद्ध महा अशुद्ध सर्वथा अयुक्त और असमञ्जस लेख किया है कि जिसने लज्जाको भी लज्जित करदिया है अधर्म को धर्म बताया है अज्ञों को कुमार्गमें चलाया है पर स्त्री और पर पुरुष सङ्गमही का नाम व्यभिचार है आर्योपदेश्य रत्नमाला के पृष्ठ २ में स्वामीजीका भी

यही सुविचार है बुद्धिकी भ्रांतिसे आंय बांय शांय बकना इसीका नाम है जोकि संपूर्ण सज्जनों की दृष्टिमें बुरा कामहै उक्त सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ८८ जो मुखादि अङ्गों से ब्राह्मणादि उत्पन्न होते तौ उपादान कारणके सदृश ब्राह्मणादि की आकृति अवश्य होती जैसे मुखका आकार गोलमाल है वैसेही उनके शरीर काभी गोलमाल मुखाकृति के समान होना चाहिये इत्यादि यहां बुद्धिकी भ्रांति प्रत्यक्ष है अङ्गों में महा अङ्गका नाम दक्ष है उत्पत्ति स्थान उपादान नहीं होता जिस अङ्गसे जो उत्पन्न होता है वह उस अङ्गके समान नहीं होता है पृष्ठ ८९ प्रश्न जो किसीके एक पुत्र वा पुत्री हो वह दूसरे वर्णमें प्रविष्ट होजाय तो उसके मा बाप की सेवा कौन करैगा-उत्तर-उनको अपने लड़के लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान विद्या सभा और राज सभा की व्यवस्था से मिलैंगे इत्यादि जिसदिन आर्यों में इसका प्रचार होगा जगत् में हाहाकार होगा ऐसा असमञ्जस लिखना बुद्धिकी भ्रांतिही का प्रताप है अथवा किसी देवता का शाप है पृष्ठ ९७ उत्तम स्त्री सब देश तथा सब मनुष्यों से ग्रहणकरैं इति इस आज्ञासे सम्यक् विदित है कि मुसलमान और ईसाई तो क्या चमार भङ्गीतक भी दयानन्द के मतमें विहित है बुद्धिकी भ्रांतिने स्वामीजी का सारा ज्ञान हरलिया उसीकी प्रेरणासे उन्होंने शिष्यों को सबदेश तथा सब मनुष्यों से उत्तम स्त्री ग्रहण करने का उपदेश करदिया पृष्ठ १८८ जब उपासना करना चाहै तब एकान्त शुद्ध देशमें जाकर आसन

लगा प्राणायाम कर बाहर विषयों से इन्द्रियों को रोक मन को नाभि प्रदेशमें वा हृदय कण्ठ नेत्र शिखा अथवा पीठके मध्य हाड़में किसी स्थानपर स्थिरकर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मामें मग्न होकर संयमी होवै इति स्वामी जीकी बुद्धिकी भ्रांति अतिप्रबल है उसी का यह विषरूप फल है कि जिसने पाषाणमय मूर्त्तिकी पूजा तो छुड़वाई पीठके हाड़में ईश्वर की उपासना कराई धन्य ! पृष्ठ १९४ ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का कामहै इति ईश्वर को त्रिकालदर्शी न मानना बुद्धिकी भ्रांतिका काम है वा नास्तिकता का परिणाम स्वामीजी ने आर्य्याभिविनय के पृष्ठ ८ में आपही ईश्वर को त्रिकालदर्शी लिखा है परस्पर विरुद्ध दो लेखों में अवश्य एक जगह उनकी मूर्खता है-पृष्ठ २०८ प्रश्न अनादि किसको कहते हैं और कितने पदार्थ अनादि हैं इति यहां बुद्धिकी भ्रांतिने स्वामी जीको ऐसा अज्ञ बनाया कि प्रश्नका उत्तर लिखने में ही न आया पृष्ठ २४१ मुक्तिमें जाना वहांसे पुनः आनाही अच्छा है क्या थोडेसे कारागारसे जन्म कारागारदण्डवाले प्राणी अथवा फांसी को कोई अच्छा मानता है जब वहांसे आनाही नहो तो जन्म कारागारसे इतनाही अन्तर है कि वहां मजूरी नहीं करनी पड़ती इति, जिसने मुक्तिको कारागार और फांसी की समान माना है और बन्धनमें आनाही उत्तमजाना है उसकी बुद्धिके भ्रांत होनेमें किसीको संशय नहीं है और उसको नास्तिकों का शिरोमणि कहने में भय नहीं है पृष्ठ २४१ जब

तक ३६०००० तीनलाख साठसहस्र वार उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होता है उतने समय पर्यन्त जीवों को मुक्ति के आनन्दमें रहना इति यह स्वामी जीने सोवर्षके दिन फैला-ये हैं और अङ्क तथा अक्षरों में छपवाये हैं मड़ा अशुद्धि कीहै बुद्धिकी भ्रांति एकको दश वतला रही है तीनलाख साठस-हस्र अक्षरों में लिखे हैं अतएव यंत्रालयकी अशुद्धि न कहिये झूठेकी शरण न गहिये-पृष्ठ २५८ जो शीत प्रधान देश होतो अधिकार है चाहे जितने केश रक्खें और जो उष्ण देश होतो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये क्योंकि शिरमें वाल रहने से उष्णता अधिक होतीहै और उससे बुद्धि कम होजाती है डाढ़ी मूछ रखने से भोजन पान अच्छेप्रकार नहीं होता और उच्छिष्ट वालों में रहजाता है इति पृष्ठ ३७९ और जो विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत और शिखा को छोड़ मुसल-मान ईसाइयों के सदृश बन बैठना यहभी व्यर्थ है इति आप ही शिखा सहित छेदन करादेने की आज्ञा देनो और फिर शिखाके त्यागी को मुसलमान ईसाइयों के सदृश कहना बुद्धिकी भ्रांतिका सम्यक् परिचय है और स्वामी जीने यज्ञो-पवीत और शिखा का त्याग करदिया था इससे उनका मुसलमान और ईसाइयों के सदृश बनबैठना निश्चय है पृष्ठ २६६ यह राज पुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हों उनको दण्ड देवें और प्राणभी वियुक्त करदें उन का मांस चाहे फेकदें चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खि-लादेवें वा जला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तोभी

संसारकी कुछ हानि नहीं होती किन्तु उस मनुष्यका स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक होसक्ता है इति स्वामी जीकी बुद्धि भ्रांतिका भण्डार और अज्ञता का आगार जोकि मांसाहारी मनुष्यों को हिंसादि पशुओं और मनुष्यों का मांस खानेवाला जानते हैं क्योंजी यही बुद्धि ऋषिमुनियों के ग्रन्थों में वेद विरुद्ध होनेका निर्णय करनेवाली है वा सत्यासत्य और धर्माधर्म को कोई अन्य बुद्धि पहिचानती है ? पृष्ठ ३३३ हिरण्याक्ष–पृथिवी को चटाई की समान लपेट शिराने धर सोगया–हिरण्यकश्यप–ने एक लोहे का खम्भा अग्निमें तपाके उससे बोला जो तेरा इष्ट देव राम सच्चा हो तो तू इसको पकड़ने से न जलेगा प्रह्लाद पकड़ने को चला मनमें शङ्का हुई जलने से बचूंगा वा नहीं नारायणने उस खम्भेपर छोटी २ चीटियों की पंक्ती चलाई पृष्ठ ३३४ रथेन बायु बेगेन जगाम गोकुलम् प्रति। कि अक्रूर जी कंसके भेजनेसे बायुके बेगकी समान दौड़नेवाले घोड़ों के रथपर बैठकर सूर्योदयसे चले और चारमील गोकुलमें सूर्यास्त समय पहुँचे पूतना का शरीर छः कोश चौड़ा और बहुतसा लम्बा लिखा है इत्यादि लेख बुद्धिकी भ्रांतिही के कारण स्वामी जीने भागवतके नामसे किया है अथवा द्वेषाग्नि की प्रेरणासे लिख दिया है वस्तुतः भागवतमें उनके लेखानुकूल नहीं है और यह लिखने और शोधन तथा छापनेवालों की भूल नहीं महात्मा जीकी भ्रांति बुद्धिका प्रभाव है अथवा उनका जान बूझकर झूठ लिखने का स्वभावहै। पृष्ठ ३३६ जान श्रुति शूद्रने

भी वेद "रैक्यमुनि" के पास पढ़ा था इति जान श्रुतिको शूद्र कहनेवाला निःसंदेह भ्रान्त बुद्धिही है कि वेदव्यास महर्षिने उत्तर मीमांसा में उसके क्षत्रिय होनेकी सम्यक् सिद्धिकी है पृष्ठ ३८२ जिस बातमें सहस्रएक मत हों वह वेद मत ग्राह्यहै और जिसमें परस्पर विरोध हो वह कल्पित, झूठा, अधर्म, अग्राह्य है इति बाबाजीने भङ्ग बहुत पी है उसीने उनकी बुद्धि सर्वथा भ्रांतकी है उसने और तो जो कुछ शास्त्र विरुद्ध अन्यथा लेख करा था सो कराथा परन्तु यह महा शोक है कि वेदों को स्पष्ट कल्पित झूठा अधर्म और अग्राह्य ठहराया पृष्ठ ५४६ जो दूसरे मतोंको कि जिसमें हजारों करोड़ों मनुष्य हों झूठा बतलावै अपने को सच्चा उससे परे झूठा मत और कौन होसक्ता है इति बुद्धिकी भ्रांतिने यह क्या ऊट पटांग लिखवाया उसी के हाथसे उसीका घर ढवाया सबमतों को सच्चा ठहराया और अपने झूठे मतको आप झूठा बताया स्यात् अपने किये से पछताया अतएव अन्तमें यह छपवाया कि जो दूसरे मतों को कि जिनमें हजारों करोड़ों मनुष्यहों झूठा बतलावे और अपने को सच्चा उससे परे झूठा दूसरामत और कौन होसक्ता है इस लेखमें स्वमत का झूटा होना सम्यक् दर्शाया परन्तु बुद्धिकी भ्रांतिसे अथवा द्वेषाग्निहठ दुराग्रह और पक्षपात की प्रेरणा से चेलों की समझमें उसका आशय फिरभी न आया यायों कहिये कि कलियुगने अपना प्रताप दिखाया अज्ञों को भ्रमाया धर्मको मिटाया और अधर्म को बढ़ाया–पृष्ठ ५८८ अविद्वानों को असुर पापियों को राक्षस

अनाचारियों को पिशाच मानताहूं इति आजकल जो कोई समाज घुसजाता है वह आर्यही कहा जाता है आर्योद्देश्य रत्नमाला के पृष्ठ ११ पर जो आर्य का लक्षण छपा है वैसातो कोई विरलाही है प्रायः औरही प्रकारके दृष्टिमें आते हैं वे क्यों आर्य कहाते हैं समाजियों को अपने गुरूके लेखानुसार इसका प्रबन्ध करना चाहिये जो जैसा हो उसका वैसाही नाम धरना चाहिये वा स्वामी जी हीने अपना मत बढ़ाने के हेतु अपने सम्पूर्ण चेलों को आर्य नामक उपाधिका पारितोषिक दिया है और अपनी बुद्धिकी भ्रांति अथवा द्वेषाग्नि की प्रेरणा से स्वलिखित आर्य लक्षणपर कुछ ध्यान नहीं किया यह दयानन्द जीकी बुद्धिकी भ्रांति का नमूना महेश जी का प्रसाद है जिससे सर्वत्र सूर्यवत् प्रकाशित उनकी अज्ञता और प्रमाद है दयानन्द जीके अज्ञान की संक्षेपसे परीक्षा है और उनके अन्यथा लेखों की समीक्षा जगन्नाथ दासके सत्य होनेका प्रमाण है और धर्म रक्षकों का धनुषत्राण यदि हमपर मिथ्या दोषारोपण करनेवाले महाशय के अन्तःकरणमें हठ दुराग्रह और पक्षपात नहीं है और उनकी आंखों के आगे अंधेरी रात नहीं तो हमारे लेखको देखकर दयानन्द जीको अवश्य भ्रान्त बुद्धि बतलायेंगे और संपूर्ण को उनका भ्रान्त बुद्धि होना सम्यक् समझायेंग यदि अपनी बुद्धि की भ्रांति अथवा द्वेषाग्नि की प्रेरणासे कुछ आंय बांय शांय झूठी बातें बनायेंगे तो यथोचित उत्तर पायंगे जगत् को हँसायेंगे और अपनी अज्ञतापर पछतायेंगे–इति ॥

॥ ध्यान दीजिये ॥

प्रियवर ! वेदमें दो प्रकार के वाक्य हैं एक मंत्र नामक दूसरे ब्राह्मण नामक, इन दोनों का महर्षि जैमिनिने अपने मीमांसा शास्त्रमें ऐसा लक्षण किया है–"तच्चोदकेषु मन्त्राख्या शेषे ब्राह्मण शब्दः" अर्थात् जोकि–विधि निषेध के प्रेरक हैं वह बेद वाक्य मन्त्र कहाते हैं और शेष बेद वाक्य ब्राह्मण कहाते हैं परन्तु स्वामी दयानन्द जीके चेले कहते हैं कि-मंत्र भागही वेद है ब्राह्मण भाग नहीं इस विषय पर जो वह तुच्छ कुतर्कें करते हैं उनको उत्तर सहित हम पुस्तकाकार छापकर प्रकाशित करेंगे यहां आपको इतनाही जानलेना चाहिये कि वह महर्षि जैमिनि के लेखकी परवाह नकरके अपनी इच्छानुसार केवल मंत्र भागको वेद मानते हैं, इसका कारण यह है कि ब्राह्मण भागरूप वेदके मानने से तो मूर्ति पूजा और श्राद्ध आदि अवश्यही मानना पड़ैगा इससे यह नहीं समझना कि– मंत्र भागमें श्राद्धादिका प्रमाण हैही नहीं किन्तु मंत्र भागके सूत्र रूपमें और ब्राह्मण रूप बेदमें विस्तारके साथ लिखा है, इस कारण यदि आर्यसमाजियों से कहा जाय कि आप ब्राह्मण रूप बेदमें विस्तार के साथ लिखे हुये मूर्ति पूजन को क्योंनहीं मानतेहैं तो तत्काल कहदेतेहैं कि ब्राह्मण भाग बेद नहीं हैं और मंत्र भागके जिन मन्त्रों से तुम मूर्ति पूजन आदि सिद्ध करते हो उनका अर्थ ठीक नहीं है स्वामी जीने ऐसा अर्थ नहीं किया है, परन्तु पाठक गण ! इस बात को यह मुख मर्दक उत्तर देते हैं कि हे दयानन्द जीके चेलो !

यदि तुम ब्राह्मण भागको वेद नही मानते तौ जिन यज्ञोपवीतादि संस्कार, अग्नि होत्रादि पंच महायज्ञ और ओंकार की महिमा का बड़ाभारी घमण्ड रखते हो उनका प्रमाण तौ मंत्र भागमेंसे निकाल दिखलाओ तवतौ नीचे ऊपर को देखने के सिवाय कुछभी उत्तर नही देसक्ते हैं-क्योंकि संस्कार पंच महायज्ञादिका वर्णन तौ ब्राह्मण रूप वेद मेंही है, इस कारण हे सनातन धर्मावलम्बियो! यदि कोई आर्यसमाजी आपके सन्मुख मूर्ति पूजन और श्राद्धादिका खण्डन करैतौ उसको यही उत्तर देना चाहिये कि-ब्राह्मण भागमें मूर्ति पूजन आदि का पूरा प्रमाण है और यदि तुम उसको प्रमाण नही मानोगे तौ संस्कार पंच महायज्ञादि कोभी त्यागदो क्योंकि ब्राह्मण भागके सिवाय मन्त्र भागमें उनका भी कोई प्रमाण नहीं है। प्रिय पाठकगण? जिनके लेखका आर्यसमाजी बड़ाभारी घमण्ड रखते हैं उन स्वामी दयानन्द जीने जो कुछभी सत्यार्थप्रकाश आदिमें लिखा है वह भँगेड़ी अफीमियों की अनर्गल वार्तो की समान और धोखे बाजीसे भराहुआ है, जिसका खण्डन अनेकों विद्वानों ने किया है और समय २ पर कुछ नमूने की तौरपर दिखाया करैंगे॥

लोकानुद्धरयन् श्रुतीर्मुखरयन् क्षोणीरुहान् हर्षयन्, शैलान् विद्रवयन्मृगान् विवशयन् गोवृन्दमानन्दयन्। गोपान्सम्भ्रमयन् मुनीन् [illegible]लयन् सप्तस्वरान् जृम्भयन्, ओंकारार्थमु

दीरयन् विजयते वंशीनिनादः शिशोः ॥१॥

॥ स्तोत्रसङ्ग्रह ॥

॥ वेदसार शिवस्तोत्र ॥

पशूनांपतिं पापनाशं परेशं
गजेन्द्रस्यकृत्तिं वसानंवरेण्यम् ।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गांगवारिम्
महादेवमेकंस्मरामि स्मरामि ॥१॥

अर्थ-जो सकल प्राणियों के अधिपति हैं, जो भक्तों के पापों का नाश करतेहैं, जो परमेश्वर गजेन्द्र की चर्मको धारण करते हैं, जो सर्वोत्तमहैं, जिनके जटाजूट में गंगजल तरंगलेता है, ऐसे महादेव जीको मैं बारम्बार स्मरण करताहूं ॥१॥

महेशं सुरेशं सुरारातिनाशम्
विभुं विश्वनाथं विभूतांगभूषम् ।
विरूपाक्षमिन्द्वर्क वन्हित्रिनेत्रम्
सदानन्दमीडे प्रभुंपञ्चवक्त्रम् ॥२॥

अर्थ-जो महेश्वर और देवताओंके ईश्वरहैं, जो देवताओं के शत्रुवंश का ध्वंश करतेहैं, जो सर्वव्यापक, विश्वनाथ और विभूति के द्वारा अपने शरीर को भूषित करते हैं, जो विरू

पाक्ष अर्थात् विकृत नेत्र हैं, चंद्रमा सूर्य और अग्नि यह जिन के तीननेत्र रूपहैं, ऐसे सदानंद पञ्चमुख प्रभुकीमैं स्तुतिकरताहूं

गिरीशं गणेशं गलेनीलवर्णं,
गवेन्द्राधिरूढं गुणातीत रूपम् ।
भवंभास्करं भस्मना भूषितांगं,
भवानीकलत्रंभजेपञ्चवक्त्रम् ॥३॥

अर्थ–जो कैलास पर्वतपर शयन करतेहैं, प्रथम गणकेअधि पति हैं जिनकी ग्रीवा नीलवर्ण है, जो वृषभपर आरूढ़ होते हैं, जो सत्वरजः तम इन तीनो गुणोंसे परेहैं, जिनसे अनन्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है, जो तेज पुंजमय हैं, जो भस्म से अपने शरीर को भूषित करते हैं, तिन पञ्चानन भवानी पति को भजताहूं ॥३॥

शिवाकान्तशम्भो शशांकार्द्धमौले,
महेशानशूलिन् जटाजूटधारिन् ।
त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूपः,
प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप ॥४॥

अर्थ–हे पार्वतीनाथ ? हे चन्द्रार्द्ध चूड़ामणे ! हे जटाजूट धारिन् ! एक तुमही जगत् में व्याप रहेहो, हेप्रभो ! यह विश्व तुम्हाराही रूपहै, तुम पूर्ण ब्रह्महो, हेपरमेश्वर, आपमेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये प्रसन्न हूजिये ॥४॥

परात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यम्,

निरीहंनिराकार मोङ्कारवेद्यम्।
यतोजायते पाल्यते येन विश्वम्,
तमीशंभजे लीयतेयत्रविश्वम् ॥५॥

अर्थ–हे भगवान् ! एक तुमही परमात्मा रूप हो, तुमही जगत् के आदि कारण हो, तुम सब प्रकार की चेष्टाओं करके रहित हो निराकार हो, ओंकार के द्वारा जानने योग्य हो, तुमसेही जगत् उत्पन्न होता है, तुमही जगत् का पालन करते हो और तुह्मारे मेंही अनन्त ब्रह्माण्ड लीन होजाता है, मैं आपको भजताहूं ॥५॥

नभूमिर्नचापो नवन्हि र्नवायु,
र्नचाकाशमास्ते नतन्द्रानिद्रा।
नग्रीष्मोन शीतं न देशोन वेशो,
नयस्यास्तिमूर्तिस्तमीडे महेशम् ॥६॥

अर्थ--जो भूमि नहीं है, अग्नि नहीं है, वायु नहीं है, आकाश नहीं है, और जिसको तंद्रा नहीं है, ग्रीष्म नहीं है, शीत नहीं है, देश नहीं है, वेश नहीं है, और जिस की मूर्ति नहीं है तथा जो ब्रह्मा विष्णु एवं शिव इन मूर्तित्रय रूप है तिस महेश्वर की मैं स्तुति करताहूं ॥६॥

अजंशाश्वतं कारणं कारणानां,
शिवंकेवलंभासकं भासकानाम्।
तुरीयंतमः पारमाद्यन्त हीनम्,
प्रपद्येपरं पावनं द्वैत हीनम् ॥७॥

अर्थ--जो अजन्मा, सनातन, कारण का कारण, सर्व मङ्गलमय तथा जगत् के प्रकाशक सूर्य चन्द्रमादि कोभी प्रकाशित करता है, जो तुरीय ब्रह्म और मायासे परहै, जिसका आदि और अन्त नहीं है. जो परब्रह्म स्वरूप जगत्को पवित्र करने वाला और द्वैता हीन है तिस शिवकी मैं शरणागतहूं ॥७॥

नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते,
नमस्ते नमस्ते चिदानन्द मूर्ते ।
नमस्ते नमस्ते तपोयोग गम्य,
नमस्ते नमस्ते श्रुति ज्ञान गम्य ॥८॥

अर्थ--हे विभो ! हे विश्वमूर्त्ते ! आपको बारम्बार नमस्कार है, हे चिदानन्द मय ! आपको बारम्बार नमस्कार है, हे भगवन् ! तुम तपस्या और योग करके गम्य हो आपको बारम्बार नमस्कार है, हे शिव ! तुम वेदसे प्राप्तहुए ज्ञानके विषय हो, आपको बारम्बार नमस्कार करताहूं ॥८॥

प्रभोशूलपाणे विभो विश्वनाथ,
महादेव शम्भो महेश त्रिनेत्र ।
शिवाकान्त शान्त स्मरारे मुरारे,
त्वदन्यो वरेण्यो नमान्योनगण्य: ॥९॥

अर्थ--हे प्रभो ! हे शूलपाणे ? हे विभो ! हे विश्वनाथ ! हे पार्वती कान्त हे शान्त मूर्ते ! हे मदनारे ! हे पुरविजयिन् ! आपसे अन्य कोई पदार्थ भी मान्यगण तथा वरेण्य नहीं है ॥

शम्भोमहेश करुणामय शूलपाणे,
गिरापते पशुपते पशुपापनाशिन् ।
काशीपते करुणया जगदेत देक,
स्त्वंहंसिपासिविदधासि महेश्वरोऽसि॥ १०॥

अर्थ--हे शम्भो ? हे महेश ! हे करुणामय ! हे शूलपाणे ? हे गौरीपते ! हे पशुपते ! आप पशुभाव को प्राप्तहुए हमारे संसार पापका नाश करते हो, हे काशीपते ! एक आपही अपनी करुणा से इस जगत् का पालन करते हो, संहार करते हो और जगत् की फिर रचना करते हो इस कारण आप महेश्वर हो ॥१०॥

त्वत्तोजगद्भवति देवभवस्मरारे,
त्वय्येवतिष्ठति जगन्मृडविश्वनाथ ।
त्वय्येव गच्छति लयंजग देतदीश,
लिंगात्मकेहर चराचरविश्वरूपिन् ॥११॥

अर्थ--हे भव ! आपसे जगत् उत्पन्न होता है, हे देव ? हे मदनान्तकारिन् आपसेही यह जगत् स्थित होरहा है, हे विश्व नाथ ? आपके ही विषय यह जगत लीन होता है, हे हर ! यह चराचर विश्व आपकाही स्वरूप है ॥११॥

इतिश्री शङ्कराचार्य प्रणीत वेदसार स्तोत्र समाप्त ॥

॥ हरगौरी स्तोत्र ॥

कस्तूरिका चन्दन लेपनायै,

श्मशानभस्मांगविलेपनाय।
सत्कुण्डलायै फणिकुण्डलाय,
नमःशिवायैच नमःशिवाय ॥१॥

अर्थ–कस्तूरी और चन्दन का जिनके शरीर पर लेपन होरहा है, जिन्होने श्मशान (चिता) की भस्म अपने शरीर पर मली है, जिनके सुवर्ण के कुण्डल रत्न जटित हैं, जो निरन्तर सर्पों के कुण्डल धारण करते हैं, उन पार्वती और शिवदोनो के चरणों में एक मनसे पुनः२ नमस्कार करताहूं॥

मन्दारमाला परिशोभितायै,
कपालमाला परिशोभिताय।
दिव्याम्वरायैच दिगम्वराय,
नमःशिवायैच नमःशिवाय ॥२॥

अर्थ–मन्दार (कल्पवृक्ष) केपुष्पों की माला जिनके कण्ठको शोभित करती है, नरकपालों की मालासे जो शोभित हैं, जिनके दिव्य वस्त्रहैं, और जो दिगम्बर (नग्न) रहतेहैं तिन पार्वती और शिव दोनों के चरणों में एक मनसे बारम्वार नमस्कार करताहूं॥२॥

चलत्क्वण त्कंकण नूपुरायै,
विभ्रत्फणा भासुरनूपुराय।
हेमां गदायैच फणां गदाय,
नमःशिवायैच नमःशिवाय ॥३॥

अर्थ–चलने में जिनके नूपुर कंकण वजते हैं, जिनको सर्प के फण रूपी नूपुर और कंकण शोभा देते हैं, जिनके सुवर्णके वाहु भूषण (बाजूबन्द) हैं, जिनका वाहु भूषण प्रतिक्षण सर्पोंका है, तिन पार्वती और शिव दोनों के चरणों में एक मनसे बारम्बार नमस्कार करताहूं ॥३॥

विलोल नीलोत्पललोचनायै,
विकाश पंकेरुह लोचनाय।
द्विलोचनायै विषमे क्षणाय,
नमःशिवायैच नमःशिवाय ॥४॥

अर्थ–चंचल नील कमल की समान जिनके नेत्र हैं, जिन के नेत्र प्रफुल्लित कमल के समान हैं, जिनके दो नेत्रहैं जिनके तीन नेत्र हैं, तिन पार्वती और शिव दोनों के चरणोंमें एक मनसे बारम्बार नमस्कार करताहूं ॥४॥

प्रपन्न प्रेष्टे सुखदा श्रयायै,
त्रैलोक्यसंहारकताण्डवाय।
कृतस्मरायै विकृत स्मराय,
नमःशिवायैच नमःशिवाय ॥५॥

अर्थ–जिनका आश्रय प्रपन्न भक्तजनों को सुखदायकहै जिनका ताण्डव नृत्य त्रिलोकी संहारक है, जिनसे कामदेव की उत्पत्तिहै, जिन्होने कामदेवको भस्म कियाहै, तिनपार्वती और शिव दोनोंके चरणोंमें एकमनसे बारम्बार नमस्कार करताहूं

चाम्पेयगौरार्द्ध शरीरकायै,
कर्पूर गौरार्द्ध शरीरकाय ।
धम्मिल्लवत्यैच जटा धराय,
नमःशिवायैच नमःशिवाय ॥६॥

अर्थ–जिनका आधा शरीर चम्पक की समान पीतवर्ण है, जिनका आधा शरीर कपूर की समान श्वेत बर्णहै, जिनके मस्तक पर कवरी बन्ध है, जो निरन्तर जटाजूट बांधे रहतेहैं तिन पार्वती और शिव दोनों के चरणोंमें एकमनसे बारम्बार नमस्कार करताहूं ॥६॥

अम्भोधर श्यामल कुन्तलायै,
विभूति भूषांग जटा धराय ।
जगज्जनन्यै जगदेकपित्रे,
नमःशिवायैच नमःशिवाय ॥७॥

अर्थ–जिनके कुन्तल घन घटा की समान श्यामवर्ण हैं, जिनोंने अपने जटाजूट को भस्मसे भूषित कराहै, जो जगत् की माता हैं, जो जगत्के एकमात्र पिताहैं, तिन पार्वती और शिव दोनोंके चरणोंमें एकमनसे बारम्बार नमस्कारकरताहू ॥

सदाशिवानां परिभूषणायै,
सदाशिवानां परिभूषणाय ।
शिवान्वितायैच शिवान्विताय,
नमःशिवायैच नमःशिवाय ॥८॥

अर्थ-जिनकी सदामङ्गल रूप भूषणों से शोभा रहती है, जिनकी सदा अमङ्गल रूप भूषणों से शोभा रहती है, जो सदा मङ्गल मयी रहती हैं, जो सदा मङ्गल मय रहते हैं, तिन पार्वती और शिव दोनों के चरणों में एकमनसे बारम्बार नमस्कार करताहूं ॥८॥

इतिश्री शङ्कराचार्य्य विरचित हरगौरी स्तोत्र समाप्त ॥

॥ शिवरामाष्टक स्तोत्र ॥

शिवहरे शिवराम सखेप्रभो,
त्रिविधताप निवारणहेविभो।
अजजनेश्वर यादव पाहिमां,
शिवहरे विजयंकुरु मे वरम् ॥१॥

अर्थ-हे शिवहरे शिवरामसखे प्रभो त्रिविधताप निवारण विभो अज जनेश्वर यादव ? मेरी रक्षाकरो, हे शिवहरे ! मेरी उत्कृष्ट विजय करो ॥१॥

कमल लोचन राम दयानिधे,
हरगुरो गजरक्षक गोपते ।
शिवतनो भवशंकर पाहिमां,
शिवहरे विजयं कुरुमे वरम् ॥२॥

अर्थ-हे कमल लोचन राम दयानिधे ? हे हरगुरो गज रक्षक गोपते शिवतनो भवशङ्कर ? मेरो रक्षाकरो, हे शिव हे हरे मेरी उत्कृष्ट विजय करो ॥२॥

सुरजन रंजन मंगल मन्दिरं,
भजतिते पुरुषः परमं पदम् ।
भवति तस्य सुखं परमद्भुतं,
शिवहरे विजयं कुरुमे वरम् ॥३॥

अर्थ–हे सुररञ्जन ! जो मङ्गलायतन आपको (शिव और बिष्णु को) भजता है वह परमपद को प्राप्त होजाता है और उसको परम सुख मिलता है, अतएव हे शिव हे हरे मेरी उत्कृष्ट बिजय करो ॥३॥

जय युधिष्ठिर वल्लभ भूपते,
जयजयार्जित पुण्यपयोनिधे ।
जय कृपामय कृष्णनमोस्तुते,
शिवहरे विजयं कुरुमे वरम् ॥४॥

अर्थ–हे युधिष्ठिर बल्लभ ? तुम्हारी जयहोय, हे कृपामय कृष्ण ! तुह्मारी जयहोय, तुमको नमस्कार है, हे शिव ! हे हरे मेरी उत्कृष्ट बिजय करो, ॥४॥

भव विमोचन माधव मापते,
सुकवि मानसहंस शिवारते ।
जनक जातरत राघव रक्षमां,
शिवहरे विजयं कुरुमे वरम् ॥५॥

अर्थ–हे भवविमोचन ? माधव ! मापते सुकवि मानसहंस पार्वती बल्लभ सीतावल्लभ राघव ? मेरी रक्षाकरो, हे शिव ! हे हरे ! मेरी उत्कृष्ट बिजय करो ॥५॥

अवनि मण्डल मङ्गल मापते,
जलद सुन्दर राम रमापते ।
निगम कीर्ति गुणार्णव गोपते,
शिवहरे विजयं कुरुमे वरम् ॥६॥

अर्थ-हे अवनि मण्डल मङ्गल मापते जलद सुन्दर राम रमापते निगम-कीर्ति-गुणार्णव गोपते ! हे शिव ? हे हरे ? मेरी उत्कृष्ट विजय करो ॥६॥

पतित पावन नाम मयीलता.
तवयशो विमलं परिगीयते ।
तदपि माधव मां किमु पेक्षसे,
शिवहरे विजयं कुरुमे वरम् ॥७॥

अर्थ-हे पतितपावन। मैं आपकी बिमल नामावलि और यशका गान करताहूं हे माधव ! तथापि आप मेरी उपेक्षा क्यों करते हैं, ! हे शिव ! हे हरे ? मेरी उत्कृष्ट विजय करो ॥७॥

अमरतापर देव रमापते,
विजयतस्तव नामधनोपमा ।
मयिकथं करुणार्णव जायते,
शिवहरे विजयं कुरुमे वरम् ॥८॥

अर्थ-हे अमरता परदेव ? (देव गणों में श्रेष्ठ देव) रमापते ? दया सागर ! तुह्मारे नाम की जय सर्वत्रही होती है, फिर मुझमें क्योंनहो, अतएव हेशिव हेहरे मेरी उत्कृष्ट विजयकरो

हनुमतः प्रिय चाप कर प्रभो,
सुरसरि द्धृत शेखर हेगुरो ।
ममविभोकिमु विस्मरणम्कृतम्,
शिवहरे विजयं कुरुमे वरम् ॥९॥

अर्थ-हे हनुमत्प्रिय चापकर प्रभो ! हे सुरसरिद्धृत शेखर गुरो ? हे विभो ! तुम क्या मुझको भूलही गये ! हे शिव हे हरे ! मेरा उत्कृष्ट बिजय करो, ॥९॥

नर हरेति सुरंजन सुन्दरं,
पठतियः शिवराम कृतंस्तवम् ।
विशति रामरमा चरणाम्बुजे,
शिवहरे विजयं कुरुमे वरम् ॥१०॥

अर्थ-जो पुरुष, सुन्दर सुखदायक इस राम स्तोत्रका पाठ करता है, वह पुरुष राम रमाके चरण कमलों में प्रवेश करने को समर्थ होता है, हे शिव ! हे हरे मेरी उत्कृष्ट बिजयकरो ॥

प्रात रुत्था ययो भक्त्या,
पठे देकाग्र मानसः ।
विजयो जायते तस्य,
बिष्णु माराध्य माप्नुयात् ॥११॥

अर्थ—जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर एकाग्र चित्तसे शिव राम स्तोत्र पाठ करता है, उसकी सर्वत्र विजय होतीहै और वह आराध्य विष्णु भगवान् को प्राप्त होता है ॥११॥

इति श्रीरामानन्दविरचितशिवरामाष्टकस्तोत्रसमाप्त ॥

॥ दशावतार स्तोत्र ॥

॥ अष्टपदी ॥

प्रलयपयोधिजलेधृतवानसि
वेदं, विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ।
केशवधृतमीनशरीरजयजगदीशहरे ॥१॥

छाया—प्रलय पयोनिधि जलते वेद उधारे, बिनुश्रम पोत चरित विस्तारे, केशव धरि मीन शरीर जय जगदीश हरे १

क्षितिरति विपुलतरेतव
तिष्ठतिपृष्ठे, धरणिधरणकिण ।
चक्रगरिष्ठे, केशवधृतकच्छपरूप
जयजगदीशहरे ॥२॥

छाया—छिति अति विपुल तिहारी पीठ विराजै, धरनि धरण से किनि जिमि छाजै। केशव धरि कच्छपरूप जय जगदीश हरे ॥२॥

बसतिदशन शिखरेधरणी
तवलग्ना, शशनिकलङ्ककलेव
निमग्ना । केशवधृतशूकररूप
जयजगदीशहरे ॥३॥

छाया—दशन शिखरपर धरनी सोहत ऐसे, अंक मयंक कलापर जैसे, केशव धरि शूकर रूप जय जगदीश हरे ॥३॥

तव कर कमल वरे नखमद्भुत शृङ्गं,
दलित हिरण्य कशिपु तनु भृङ्गम्।
केशव धृत नरहरि रूप जय॥
जगदीश हरे॥४॥

छाया—अचरजमय करकमल नखाग्रतिहारे, हिरन कशिपु अलि उदर विदारे, केशव धरि नर हरि रूप जय जगदीश हरे

छलयसि विक्रमणे बलि मद्भुत वामन,
पद नख नीर जनित जन पावन।
केशव धृत बामन रूप जय
जगदीश हरे॥५॥

छाया—अद्भुत बामन वपु धरि बलि छलि लीने, पद नख जल जन पावन कीने, केशव धरि वामन रूप जय जगदीशहरे

क्षत्रिय रुधिर मये जगदप गत पापं,
स्नपयसि पयसि शमित भवतापम्।
केशव धृत भृगुपति रूप जय॥
जगदीश हरे॥६॥

छाया—छत्री रुधिर नीर में स्नान कराये, जग जन के सब पाप नशाये केशव धरि भृगुपति रूप जय जगदीश हरे ६

वितरसि दिक्षु रणे दिक्पति कमनीयं,
दशमुख मौलि वलिं रमणीयम्।
केशव धृत यति रूप जय॥

जगदीश हरे ॥७॥

छाया—दशदिश दिक्पति रणमें मोदित कीने, दशमुख के दश शिर बलि दीने, केशव धरि रघुपति रूप जय जगदीश हरे ७

बहसिवपुसिविशदेवसनंजलदाभं,
हलहतभीति मिलितयमुनाभम् ।
केशवधृतहलधररूप, जय
जगदीश हरे ॥८॥

छाया—गोरे तन घन रुचि शुचि बसन बिराजै, हल हति भय यमुना रङ्ग छाजै, केशव धरि हलधर रूप जय जगदीश हरे ॥८॥

निन्दसियज्ञविधेरहहश्रुतिजातं,
सदयहृदयदर्शितपशुघातम् ।
केशवधृतबुद्धशरीर जय
जगदीश हरे ॥९॥

छाया—यज्ञ वेद विधि निन्दित कीनो, पशु बध देखि दया चित दीनो, केशवधरि बुद्ध शरीर जय जगदीश हरे ९

म्लेच्छनिवहनिधने कलयसिकरवालं,
धूमकेतुमिवकिमपिकरालम् ।
केशवधरिकल्किशरीर जय
जगदीश हरे ॥१०॥

छाया—म्लेच्छनि मारन कारन असि करलीनो, धूम-केतु सम जिन भय दीनो, केशव धरि कल्कि शरीर जय जगदीश हरे ॥१०॥

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारं,
शृणुसुखदंशुभदंभवसागरम् ।
केशवधृतदशविधरूप जय
जगदीश हरे ॥११॥

छाया—श्रीजयदेव सुकवि विकृत शुभ सुख दायक, सुन यह गीत गोविन्द सहायक, केशव धरि दश विधरूप जय जगदीश हरे ॥११॥

॥ सनातनधर्म की ग़ज़लैं ॥

॥ गजल ॥

किसी की विपदन तुमनी सुनीए बिहारी जी । क्यों मेरी बार देर करी ये बिहारी जी ॥ टेक । जब द्रौपदीपै भीर परी ये बिहारी जी , फ़ौरन सहाय आन करी ये बिहारीजी१ गजको जो पैर ग्राहने पकड़ा था बैर से, छिनमें दया करीपै करी ये बिहा० ॥२॥ बृजपै जो इन्द्रने चला बादके दलके दल, कनउङ्गलिपै उठायो गिरी ये बिहा० ॥३॥ यमलार्जुन जो वृक्ष थे उरसे जो परसे तुम, सुन्दर मनुजको देहधरी ये बिहा० ४ नाथा था काली नागको यमुना में,कूदके, जब धार बीच गैंद

गिरी ये विहा० ॥५॥ श्रीकृष्ण वन विध्वंस कियो कंस बंश को, भारत की भारी भीर हरी ये विहा०॥६॥ रामावतार धार कर रावण को मारकर, द्विज धेनुकी सहाय करी ये विहा० ७ प्रल्हाद जीके हेत हुये आप नर हरि, कानों में टुक भनक जो परी ये विहा० ॥८॥ मुनीने दिया जो शाप अहिल्या बनी शिला, तुमरो चरन परसके तरी ये विहा० ॥९॥ क्या विप्र सुदामा को न काफी थे लोक दो, मुट्ठी जो तीसरी था भरी ये विहा० ॥१०॥ सम्भल में कल्कि विष्णु का अवतार धरोगे, कब आवेगी वो ऐसी घड़ी ये विहा० ॥११॥ बनमाली मिश्र अबतो शरण हरके चरणकी, विनती ये हाथ जोर करी ये विहारी जी ॥१२॥

(२)

हमें वैदिक सनातनधर्म, प्राणोंसे भी प्यारा है। यही है ज्ञानकी कुंजी, यही मुक्ती का द्वारा है ॥१॥ हुये थे सृष्टि के आरम्भमें, अवतार ब्रह्माजी। उन्हीने चार मुखसे चार वेदों को उचारा है ॥२॥ स्मृती और उपनिषद आदिक, लिये ऋषियों ने श्रुतियों से। कि जिनमें ब्रह्म विद्यारूप, गङ्गाजी की धारा है ॥३॥ महर्षि व्यास आदिकने, लिया है वेदका आशय। वे नाना अनूप ग्रन्थ, सतमतको प्रचारा है ॥४॥ हुआ जब राज कलियुग का हुई तब धर्मकी हानी। अनेकों पन्थ चल निकले, सनातन मत विसारा है ॥५॥ कोई तेरहसौ वर्षोंसे, अठारहसौ से कोई। कोई इनसे भी कुछ कमबेश,

इक दूजे से न्यारा है ॥६॥ छिपाया सत् के सूरज को, असत् मतकी घटाओं ने । घटाया तेज सत् मतका, कुमतने घर बिगारा है ॥७॥ सुमतसे धर्मके, उपदेश की प्रेरित करो वायु । फटैं बादल अविद्याके, घटै जो अन्धकारा है ॥८॥ वही फिर वेद मतरूपी, सनातनधर्म का भानू । अलौकिक तेजसे अपने, हरै जो तम अपारा है ॥९॥ करो अब प्रेरणा भगवन्, कि सब जन मनसे तनसे धनसे । करैं निज धर्मकी रक्षा, भरोसा अब तुम्हारा है ॥१०॥ गहे बनमालिशङ्करने, चरन हरके परन करकै । रखैंगे लाज श्रीमहाराज, उनकाही सहारा है ॥११॥

॥ बरवा ॥

हे हरि अधम उधारन । दीनदयाल ॥ लखि न सकौ जन दुखिया । परम कृपाल ॥१॥ शिला भई मुनि नारी । नहिं कोई मीत ॥ गृह तजि शाप निवारयो । गायो गीत ॥२॥ रक्षा मुनि मख कीन्यों । दानव मारि ॥ तोरि धनुष सिय बाहयों । जनक उबारि ॥३॥ बालिसुकण्ठ सतायो । नीति बिहाय ॥ काल कलेवा तेहिको कीन्हयों जाय ॥४॥ लङ्कापति अभिमानी । जन दुख दीन ॥ ताहिमारि निज दासै । राजा कीन ॥५॥ द्रुपद सुता अकुलानी । लाज बिचारि ॥ प्यादे पगसों धायो करुणा धारि ॥६॥ चारि हाथका पट्का । भयो अपार ॥ ग्राह ग्रस्यो जब गजको । कीन उबार ॥७॥ हिरनकशपु नित त्रासै । जन प्रहलाद ॥ फारि खंभको मारयो । हरयो विषाद ॥८॥ जेहि जहँ परी बिपतिया । तुरतै धाय ॥ जाय आ-

पदा टारी । भयो सहाय ॥९॥ अव प्रभु मोहिं उबारौ । हौं आधीन ॥ सागर महँ परिकै । दुखिया दीन ॥१०॥ तात मात कोउ नाहीं । होय सहाय ॥ काहि पुकारौं अब जो । लेय बचाय ॥११॥ सबै स्वारथी लोगवा । स्वारथ मीत ॥ बने बने के साथी । साधै प्रीति ॥१२॥ काम परे कोउ अपनो । नहिं दरशाय ॥ नाथ विपति की बेरियां । तुमहिं सहाय १३ महा अधम मैं कामी । पाप पहार ॥ भजन भाव नहिं जानौं स्वामि तुम्हार ॥१४॥ चरण शरण अव आयों । पकरो बांह ॥ जगत जाल निरवारौ । हे सिय नाह ॥१५॥ त्रेता सतयुग द्वापर । तारे महान ॥ अव कलियुग मोरि वारी । हे भगवान् ॥१६॥ काहभयो बहुतारयो । भवके पार ॥ मोहिं तारौ तौ जानौं तारन हार ॥१७॥ दास कहावों तुम्हरो । जानै संत ॥ तेहिते एक अंदेशा । हे भगवन्त ॥१८॥ तुम्हसे बश जग जाहिर । मैं तौ दीन ॥ बिनतारे सब हँसि हैं । प्रभु का कीन १९ ताते दीनै तारौ । यही सोहाय ॥ देर नाहिं अब आवै । हे रघुराय ॥२०॥

श्रीराम जन्मोत्सव--छन्द (प्रभाती)

प्रगटे रघुनन्दन दुष्ट निकन्दन । भक्तन के रखवारे ॥ कौशिल्या माताके सुखदाता । दशरथ राज दुलारे ॥१॥ भये हंस बंश रवि उदित अमित छवि । मुदित गण सारे ॥ नभ दुन्दुभि बाजै चहुँ दिशि गाजै । जय जय शब्द पुकारे ॥२॥ आनँद घन वरषे ऋषि मुनि हरषे । योग समाधि बिसारे ॥

इन्द्रादिक देवा कहि हरि सेवा । निज २ लोक सिधारे ॥३॥ निज निर्मित माया धरि हरि काया । माता सन्मुख ठारे ॥ कर शंख–चक्रधर गदा पद्म वर । रूप चतुर्भुज धारे ॥४॥ भव भय रुज मोचन अम्बुज लोचन । त्रिभुवन मोहन हारे ॥ सुन्दर तनु तन शोभा मुनि मन लोभा । पद पङ्कज अरुणारे ५ पीताम्बर सोहै जन मन मोहै । दरशन परम पियारे ॥ बन-माल विराजै रति पति लाजै । चन्दन तिलक लिलारे ॥६॥ भयो दिव्य प्रकाशा दिपै अकाशा । लज्जित रवि शशि तारे॥ प्रभु अलख अनूपा ज्योति सरूपा । निज माया विस्तारे ॥७॥ कहै मातु चकित चित पुनि २ हरषित धनि २ भाग्य हमारे ॥ जो सब जग स्वामी अन्तर्यामी । सो सुत आज निहारे ॥८॥ ब्रह्माण्ड अशेषा देव विशेषा । रोम रोम प्रति न्यारे ॥ निर्गुण गुणराशी अज अबिनाशी । उरपुर आय पधारे ॥९॥ सन्तन सुखकारी जन दुखहारी गोद्विज पालन हारे । श्रुतिपत प्रति पाला परम कृपाला धर्महेत अवतारे ॥१०॥ प्रभु ममहित कारन किय तनु धारन जन्म जन्म दुख टारे । मोरी मतिथोरी महि मा तोरी बरनौ कौन प्रकारे ॥११॥ मैंतों तुछ बुद्धिनारी बिस्म य भारी । कौतुक देख तुम्हारे । धरिये शिशु काया हरिये माया मोपर कृपा बिचारे ॥१२॥ सुनमातु सिखावन परम सुहा वन भये बालक अति बारे । माता के आगे रोवन लागे अच रज मोद अपारे ॥१३॥ जब रोदन ठाना तब सब जाना । प्रग टे जग उजियारे ॥ सब रानी धाईं देत बधाई । गावहिं मंगल चारे ॥१४॥ नृप दशरथ आये अति हरषाये । लखि सुत परम

मुखारे ॥ दीने बहु दाना धन मणि नाना । याचक याचत हारे ॥१५॥ पूजे कुलदेवा किये द्विजसेवा । बहु आदर सत्कारे। कुलरीति पुरानी किय नृप ज्ञानी । गुरु श्रुति मंत्र उचारे १६ सबपुर नरनारी उत्सव भारी । करहीं निज घर द्वारे ॥ सुर गण बरषाये सुमन सुहाये । बोलहिं जय जय कारे ॥१७॥ बन माली शंकर हरिपद किंकर । चरण कमल चित धारे ॥ नित शीश नवावै हरिगुण गावै । निज मनगति अनुसारे ॥१८॥

॥ गजल ॥

धर्मकी नावको अब जल्द उबारो भगवान् । अपने भक्तों की बिगड़ती को सम्हारो भगवान् ॥ कलियुगी वायु चली धर्मकी नैया के विरुद्ध । धर्म रक्षक हो तुम्ही कष्ट ये टारो भग वन् ॥ दुख समन्दर के अन्दर ये पड़ा आज जहाज । धर्मके बेड़े को उस पार उतारो भगवान् ॥ ग्राहसे डूबते गज को है छुड़ाया जिसने । कर कमल आज वही अपने पसारो भगवान्॥ इन्द्रसे ब्रजको बचाया धरा गिरवर करपर । अबभी टुक देश को सब क्लेश निवारो भगवान् ॥ वेदका धर्म सनातन सो भु लाया कलिने । आसुरी पन्थ चलाये हैं हजारों भगवन् ॥ धर्म की प्रेरणा करदीजिये सबके मनमें । याकि धरि रूप यहां वेग पधारो भगवन् ॥ मिश्र बनमाली सदा आपके चरणोंकी शरण । निज कृपा दृष्टि से मुझ ओर निहारो भगवन् ॥

(२)

उठो भारत निवासी जन, करो [illegible] । लगा कर अपना तन मन [illegible] बांधो हिम्मत की क[illegible]र का ॥ [illegible]

दिन होगए सोते, न अबभी होशमें होते । समय अनमोल क्यों खोते, करो निज धर्मकी० ॥२॥ तजो यह नींद आलस की, मिटाओ फूट आपस की । लो बूटी प्रेमके रसकी, करो निज धर्म० ॥३॥ बनेहां आपके भाई, मुहमदी याकि ईसाई । न कुछ सुध बुध तुम्हैं आई, करो निज धर्म० ॥४॥ अविद्या देशमें छाई, पुरातन रीति बिसराई । इन्हें उपदेश दो भाई, करो निज धर्मकी रक्षा ॥५॥ भला है राज सरकारी, सुखी इसमें प्रजासारी । सब अपने मतके अनुसारी, करो निज धर्म की रक्षा ॥६॥ सदा जीवैं महारानी, सुलक्षण न्याय गुण खानी । दो मत विषयक अभय बानी, करो निज धर्म० ७ रक्खो बनमाली शंकर का परन हर अपने किंकरका । नहो भय भव भयंकर का, करो निज धर्म० ॥८॥

(३)

अब कहां सोरहे भारत के जगाने वाले । धर्म उपदेश के छकाने वाले ॥१॥ वेदके धर्म सनातन का सुनाके सब मर्म । मुक्ति मिलने की सरल युक्ति बताने वाले ॥२॥ ज्ञानके मार्ग में चलते थे चलाते सबको ॥ भक्ति की नावमें भवपार लगाने वाले ॥३॥ योग विद्या की न वह महिमा न वह चरचाहै ॥ है कहां पहली सी सिद्धिके जताने वाले ॥४॥ याद आते हैं हमें पहले ऋषि और मुनी ॥ ब्रह्म विद्यासे अविद्या को मिटाने वाले ॥५॥ [illegible] उजियारे ॥ सबों में निपुण पहले तुम्हारे पुरुषा ॥ अ- [illegible] चारे ॥१४॥ नृप दशरथ आये अति हरषे [illegible] सबही विद्याके

रचे ग्रन्थ अलौकिक ऐसे ॥ जिनके आगे हैं शिरके झुकाने वाले ॥७॥ मोक्षका मार्ग बताते थे सबको निशदिन ॥ धर्म उपदेश से सब क्लेश छुड़ाने वाले ॥८॥ है तवारीख से सावित कि यहां के विद्वान् ॥ हुये सब देशों को विद्या के सिखाने वाले ॥९॥ सूर्य विद्या का यही देश था सब का शिरताज ॥ थे यहां धर्मका इकरंग चढ़ाने वाले ॥१०॥ यूरूपी फलासफरों को भी चकित है बुद्धि ॥ हैं जो नई रोशनी के लैम्प जलाने वाले ॥११॥ यह जमाने की है खूबी न रही वह खूबी ॥ न वो बल बुद्धि न विद्या के बढ़ाने वाले।१२॥ हां ? कहूं क्या कि दिखाया है ये दिन कलियुग में ॥ ख्वार हैं वे जो थे सर दार कहाने वाले ॥१३॥ राजे महाराजे कहां ? जो थे बड़े तप धारी ॥ धर्म रिपुओं के प्रबल बलको घटाने वाले ॥१४॥ धर्म रवितेज घटा कलियुगी छाई है घटा ॥ यत्न वायू से कहां इस के हटाने वाले ॥१५॥ फूट के फलको चखा टूट गया प्रेमका नेम ॥ पक्षपाती हुये मत लड़ने लड़ाने वाले ॥१६॥ हानियां करके परस्पर किया भारत गारत ॥ अब कहां इसके हैं दुख दूर करने वाले ॥१७॥ नये मत भेद चले वेदका सत् मत भूले ॥ पर्म निज धर्म सनातन का भुलाने वाले ॥१८॥ छोड़ प्राचीन प्रथा मोड़के मुंह निज मतसे ॥ नये फैसन के हुये पंथ चलाने वाले ॥१९॥ मातृ भाषाकी न कुछ फिक्र न कुछ धर्मका जिक्र। शुष्कामत वाद से दुखदेश पै लाने वाले ॥२०॥ भाइयो! अब भी उठो जागो कुमति को त्यागो ॥ ऋषियों मुनि[illegible] नहे। नाम लजाने वाले ॥२१॥ बांधो हिम्मत की क[illegible]र का ॥ [illegible]

पीके ॥ धर्म रक्षक बनों उपदेश सुनाने वाले ॥२२॥ श्रीमहा-रानी का यह राज्य बहुत है अच्छा ॥ हमही क्या सबही हैं तारीफ के गाने वाले ॥२३॥ मिश्र बनमाळी सदा हरके हैं चरणोंकी शरण । अपने भक्तोंके वही प्रणके निभाने वाळे २४

(४)

करके भरोसा मनमें प्रभू सर्वाधार का । निशदिन विचार कीजिये सत मत प्रचारका ॥ रक्षाव शिक्षा कीजिये प्यारे स्व धर्मकी । जो मनमें हो विचार मनुष तनके सार का ॥ निज धर्म के प्रचार में बांधो कमर उठो। फैलाओ चरचा देशमें आपस के प्यारका॥ है धन्य जो चलावैं चलैं प्रेम नेम में। मनमें रक्खें न अंश परस्पर विकारका ॥ आपस की फूट छोड़ के मुह इससे मोड़कैं । उपदेश देशमें करो भारत सुधारका ॥ निज मातृ भूमि की करो कुछ उन्नति की फिक्र । इस कीही जिक्र कीजिये नाना प्रकारका ॥ कालि काळ जाळमें फँसे भूले पुरानी चाळ । नये मत चले ठिकाना न उनकी शुमारका ॥ ऐसे भी लोग हैं जो कहैं पूर्व थे बुजुर्ग । अपने लिये खिताब धरैं होशियार का ॥ पुरुषाओं को हम कहते हैं थे सबसे बुद्धि मान् । किससे बखान उनकी हो विद्या अपार का ॥ यूरूप अमेरिकादि के निष्पक्ष जन अनेक । देते हैं अब सुबूत हमारी पुकार का ॥ भारत के ऋषि और मुनी पहलेसमय में । विद्या [illegible] हरते अविद्यांधकार का ॥ धर्मोपदेश से सदा चारे ॥१४॥ देश । उद्देश्य पूर्ण करते थे सर्वप्रकार का ॥

ऋषियों के वंशमें हो है तुममें भी उनका अंश। परिचय दिखा ओ यत्नसे उस चमत्कार का॥ की पहिले बुजुर्गों नेही रक्षा स्वधर्म की। डर करते थे न धर्ममें खांडे की धारका॥ तुम मनसे धनसे धर्मकी रक्षापै हो तयार। टुकसार प्राप्त कीजिये जीवन अपार का॥ देते हैं खेद, वेद विरोधी कुमत नये। फैलाया जाल कलियुगी फंदे हजार का॥ आलस को त्याग नींद से गफलत की जागकै। कुछ सोचो यत्न भिन्न मतों के प्रहार का॥ अब धूम धाम कीजिये सनातन स्वधर्म की। बीड़ा उठालो भाइयो देशोद्धार का॥ धर्मोन्नति बिना नहो भारत की उन्नती। कीजै स्वधर्म वृद्धि समय है विचार का॥ हे हिन्दु, आर्य कार्य सुमति से करो सभी। आपस में त्यागो वार कुमति के कुठार का॥ मत वादसे विषाद बढ़ा आन देश में। मिल जुल उपाय कीजै विपद होने हारका॥ भारत पै प्रेमवारि की वर्षा करो सदा। यह कल्प वृक्ष दाता फल अर्थादि चार का॥ भारत निवाशियो रक्खो आपस में प्रीति रीति। टुक कीजिये इलाज कुमत के बुखार का॥ वेदादि शास्त्र सिद्ध घटा धर्म सनातन। उमड़ा अधर्म है, न पता वार पार का॥ वेद, और पुराण, शास्त्र विहित धर्म का। उप देश देश में दो सदा सदाचार का॥ धर्मात्मा जनोंके लिये सुख है सब जगह। हरदम खुला किवांरहै मुक्ति के द्वारका॥ भारत की महारानी के निष्पक्ष राजमें। अवसर भलाहै बिग ड़ी हुई की संवार का॥ हरिके चरण कमल की शरण मेंही करके प्रण। बस इक यही उपाय है भवसिंधु पार का॥ अब

तार जल्द लीजिये हे कल्कि विष्णु जी । अब कुछ नहीं ठिकाना है पृथिवी के भार का । बनमाली मिश्र मनसे जो सुमिरन किया करै । त्रय ताप हरै जाप रकार और मकारका॥

(५)

दीजै दर्शन प्रभू वनसी के वजाने वाले । प्यारी मुरली की मधुर धून के सुनाने वाले ॥१॥ सुनकै वह नाद छुटै योगियों की योग समाधि । ऋषियों मुनियों के अचल मनको चलाने वाले ॥२॥ गौ ब्राह्मण के सदा आपही रक्षक हो प्रभू । दीन भक्तौं के तुम्ही फन्द छुड़ाने वाले ॥३॥ कौरवों की सभामें पांडवों का मान रक्खा । पतिव्रतो द्रोपदीका चीर बढ़ाने वाले ॥४॥ इन्द्र के कोपसे रक्षा करी ब्रजकी तुमने । तुमही हो उंगलि पै गिरवर के उठाने वाले ॥५॥ द्विज सुदामा को किया आपने क्षण भरमें निहाल । धन्य तुम प्रेम के नाते को निभाने वाले ॥६॥ मिश्र बनमाली, शरण आया है हे वनमाली । तुमही भवसिन्धु से नैया के तराने वाले ॥७॥

(६)

साकार भी वही है निराकार भी वही है । निर्गुण वही सर्व गुणागार भी वही ॥१॥ घट २ में प्रघट रूप अनूपम कीहै झलक । सबमें रमाहै सबके हैं किरपार भी वही ॥२॥ हरि का न कोई तात मात भ्रात जक्तमें । आधार बिन है विश्व के आधार भी वही ॥३॥ श्री वेद धर्म कर्म के रक्षक वही प्रभू । दुष्टों के काल, भक्तों के हितकार भी वही ॥४॥ पटको कपट

के खोल मिलै श्यामका दर्शन । सुन्दर दरससे करतेहैं निस्पार भी वही ॥५॥ जब जब कि होती धर्मकी हानी तभी तभी । बनमालि मिश्र लेते हैं अवतार भी वही ॥६॥

(७)

वेदों के सत्यधर्म सनातन का हो प्रचार । हरदम यही है प्रार्थना भगवत् से बारबार ॥१॥ हो नित्य नित्यकर्मका वर्ताव देश में-वेदोक्त धर्म कर्म का सब जन करें विचार॥२॥ गो विप्र की रक्षा का हो हर मनमें चिन्तवन-मिल झुल के सब स्वधर्म के हित हेतु हो तयार ॥३॥ वेदों का भेद बुद्धि के अनुकूल है सभी । पर जाने वही जिसपै हो हरि की कृपा अपार ॥४॥ मुशकिल है वेद धर्म का सब मर्म जानना । पाया न पार गर्चे हुये नाना भाष्यकार ॥५॥ श्रुति काहि आशय स्मृति और शास्त्र भी कहै । ऋषियों ने कह सुनाया है सत् मत् विविध प्रकार ॥६॥ उपदेश दें पुराण पुरानेही ढंग से । यह धर्म की कथा हैं भरा इनमें धर्म सार ॥७॥ आपस में बृथा लड़ना झगड़ना नहीं भला । हे हिन्दू ! आर्य ! कुछतो सुनो मेरी यह पुकार ॥८॥ फैलाया जाल आके विदेशी कुपन्थ ने । तज कै कुमति सुमति से करो यह कुमति संहार ॥९॥ टुक देशकी दशा पै धरो ध्यान भाइयो ? । धर्मोपदेश से करो निज देश का सुधार ॥१०॥ छाई अधर्म की घटा और धर्म है घटा । अबभी स्वधर्म रक्षापै होजाओ होशियार ॥११॥ श्रीवेद धर्म प्यारा है बनमाली मिश्र को तन मन स्वधन स्वधर्म की रक्षा पै दीजै वार ॥१२॥

८

धनि धन्य हे कृपाला । दीनों पै तुमदयाला ॥ व्यापक हो आप सबमें । घट२ मघट उजाला ॥१॥ तुम हो अनन्त अ-नादी । सबके हो अन्त आदि ॥ नित अज अजर अमर हो। जय जक्त भक्त पाला ॥२॥ ब्रह्मा का रूप धारा । सृष्टी रची अपारा ॥ श्रुति धर्म को प्रचारा । सब द्वन्द्व फन्द टाला ॥३॥ श्रीविष्णु रूप बनके । हरे दुःख अपने जन के ॥ करें सब ज-गत् का पालन । अद्भुत चरित निराला ॥४॥ किया शिव स्वरूप धारण । हुये हर प्रलय के कारण ॥ जय त्रिगुणरूप निर्गुण । श्रुति गावैं गुण विशाला ॥५॥ जय जय अखण्ड व्यापी । जय जय परम प्रतापी ॥ सब आपकी प्रजाहै । क्या अदना और आला ॥६॥ राजा प्रजाके स्वामी देवों के देव नामी ॥ त्रिभुवन में आपही का रहै जै जै बोल बाला ॥७॥ तुमही अनेक रूपा अद्वैत एक अनूपा ॥ ज्योतिः स्वरूप अनू पम अक्षय अभय अकाला ॥८॥ तुमही ने सब बनाये बहु नाम रूप भाये ॥ कोई दुख कोई सुखमें कोई गोरा कोई काला ॥९॥ भारत हुआ है गारत अति हीन दीन आरत ॥ इसेदो स्वधर्म बूटी निज धर्म प्रेमप्याला ॥१०॥ करो प्रेरणा ये भगवन् मिल झुलके भारती जन ॥ श्री वेदधर्म पर हों दृढ़ युवा वृद्ध बाला ॥११॥ अवतार कब धरोगे ! भूभार कब हरोगे ॥ हे कल्कि विष्णु भगवन् ? वह दिन कब आनेवाला ॥१२॥ अद [illegible]त पदार्थ सारे—भुवि सूर्य चन्द्रतारे ॥ सृष्टी नियम के सुन्दर [illegible] में सबको ढाला ॥१३॥ सब तुमको मानते हैं—सब यश

वखानते हैं ॥ रचै गिरजा कोई मसजिद-मन्दिर कोई शिवाला ॥१४॥ निराकार कोई माने--साकार कोई जानें ॥ निर्गुण कोई सगुण के--गुण गण सुनाने वाला ॥१५॥ हम राम नाम कहते--नित प्रेम मग्न रहते ॥ क्रिष्टान गाड जानें--कहैं मुल्ला हक़तआला ॥१६॥ मक्के कोई जावे--काशी को कोई धावे ॥ तसवीह कोई फेरै--जपता है कोई माला ॥१७॥ कर्मोंके बन्धनों ने--अपनेहि अवगुणों ने ॥ ये जहाज लाजरूपी--भवसिंधु बीच डाला ॥१८॥ प्रभु आपका सहारा-रहताहै प्राण अधार। ॥ न लगेगा कुछ ठिकाना--तुमने जो न सँभाला ॥१९॥ अजामील गीध गनिका--कहो क्या सुकर्म इनका ॥ करके कृपाहि तारे--करतव ने देखा भाला ॥२०॥ मैं भी कुटिल हूं कामी सव पापियों मेंनामी ॥ निज ओर देख स्वामी तारो हे नन्द लाला ॥२१॥ अशरण शरण तुम्ही हो हर दुःख हरण तुम्ही हो ॥ वनमाली मिश्र शरण संभल का रहने वाला ॥२२॥

॥ श्रीजन्माष्टमी संवन्धी ॥

॥ गजल आदि ॥

हुये प्रकट नन्दके दुलारे ! आनन्द के वज रहे नगाड़े ॥ जसोदा मैया के आगे ठारे चतुर्भुजी रूप अनूपधारे ।१॥ अमर गणोंने खुशी मनाई। अकाश में दुन्दुभी वजाई ॥ ऋषी मुनी जनके मनको भाई। मुदित हुये भक्त जन सारे ॥२॥ हुई गगन से सुमन की वृष्टी। मगन हुई सुखमें सारी सृष्टी ॥ अन

चहुं ओर आवैं दृष्टी । मनावै घरबार में जै जै कारे ॥३॥ तरह तरह वेश करके धारन । पधारे सुरगण दरस के कारन ॥ लखैं अलख द्वन्द फन्द टारन । अनेक असुस्ति बचन उचारे ॥४॥ थकित चकित शेष कीभी वानी । नजाय महिमा अमित बखानी ॥ सुनावैं गुण वेद सन्त ज्ञानी । बखाने लीला पुराण अठारे ॥५॥ वो शिरपै सुन्दर मुकुट विराजै । वो कान कुण्डल किरीट छाजै ॥ कि देख जिनको अनङ्ग लाजै । लज्जित हुये सूर्य चंद्र तारे ॥६॥ सुनादो बंशी का नाद प्यारा । कि दूर हो विषाद सारा ॥ मुझै तुम्हारा ही है सहारा । तुम्हीं हमारे हो बंशी वारे ॥७॥ शरण है बनमाली मिश्र भगवन् । चरण गहै अवर हमारा मन ॥ करूं मैं क्या आप योग्य अर्पन । हूं आप याचक तुम्हारे द्वारे ॥८॥

॥ कबित्त ॥

जहां तहां फूल डोल नये नये ढंग रचे तिनमें अमोल रंग रंग के सुसाज हैं । जहां तहां बाँकी झाँकी बनी अति शोभा घनी उनमाहीं जात सभी दरशन काज हैं ॥ सुन्दर अनूप रूप लखि मोहशो रति पति, बनमाली मिश्र अति धन्य वेही आजहैं । सांवरी सूरत वारे माधुरी मूरत हारे नैन सों निहारे जिन श्री ब्रजराज हैं ॥१॥

सीसपै मुकुट सोहै कटि पीतपट सोहै मुखके निकट सोहै बांसुरी सुतान की । कोमल कपोलन पै कुंडल सुडोलन पै बैन बोलन पै नुछावर प्रानकी ॥ देखके मुखारविन्द मन्द

मन रविचन्द विहसन्त दन्त छविकोटि चपलान की । चारु भुज चारी शंख चक्र गदापद्म धारी बलिहारी मिश्र बन-माली भगवान् की ॥२॥

(सवैया)

नारद शारद शेष गणेश महेश सुरेश सदा गुणगावैं। सोउ कृपानिधि गोद्विज पालक श्री भगवन्त को अन्त न पावैं ॥ वे दहु भेद नजानि सकै, कहिनेति निरन्तर कीर्ति सुनावैं ॥ सो महिमा बनमाली कहै कस जाकहँ दोयक अक्षर आवैं ॥१॥

॥ छन्द चौपय्या ॥

प्रकटे नन्द नन्दन दुष्ट निकन्दन भक्तन के हितकारी।
जय जय सुर रञ्जन कलिमल भंजन जग बन्दन दुख हारी।
जो अज अविनाशी आनँद राशी सो माया तनु धारी।
जसुदा की गोदी रुदन बिनोदी करत चरित्र अपारी ॥१॥
रिपु कंस पठाई पूतना आई प्रभु कहँ दूध पिलाने। स्तन विष साने सो प्रभु जाने मनमहँ अति मुसकाने ॥ जीवन हरलीन्हा पान जु कीन्हा पुनि निज धाम पठाये। यह सुभगति देखी चरित्र विशेषी सुरमुनि वृन्द लजाने ॥२॥ बाणासुर आयो लै प्रभु धायो डरो गगन बलवाना। बिलपत पितुमाता भूमि निपाता हरि सामर्थ न जाना ॥ ताको बध कीन्हा सो सब चीन्हा धन्य धन्य करि माना। इहि बिधि रिपु मारे अग णित सारे तारे कृपा निधाना ॥ जब पाण्डव नारी श पुकारी ताकी बात सँभाली। गजराज उबारो गिरिवर

ब्रजकी बिपदा टाली ॥ श्रुति मत प्रति पालक खलदल घालक गोद्विज भक्ति निराली। श्रीहर करुणा निधि गुणगण बहु बिधि शरण मिश्र बनमाली ॥

॥ सिपाही की कबिता ॥

जिस हाथ में बंदूक सजती है, उसमें लेखनी की कैसी बहार होती है ? पाठक वह बहार हम देख चुके हैं। और देखकर इतने प्रसन्न हुये हैं, कि आपको बिना दिखाये रह नहीं सक्ते हैं। देखिये एक सिपाही महाशय ने धर्म्मनीति समाज नीति प्रभृति पर कैसी कबिता लिखी है ॥

॥ घनाक्षरी छन्द ॥

फूल रहे फूलन के बिरवा चमन बीच लम्पट भ्रमर बास पंकजा जरीरही। लगेरहे बागन में पादप अनेक जाति फैली फल भारन सों शाखन डरी रही। मौजके फुहारा और भरे रहे हौज जल खेलन से वेलन से बेलन हरीररी। दिलकी दलील कील करी करी जील हाय खेल गयो खेली खेत खोपड़ी पड़ी रही ॥१॥

लगी रही मौज सभा सजी ज्यों मुनीशन की कागज करद कैंची कलमें धरी रही। डसी रहीं कुरसी औ बूरसी किताब नाति पानदान पीकदान लिलमची धरी रही। खड़े रहे चोपदार चौकस के द्वार बीच हाटक लपेटी हाथ चौवन फरी रही। पेशी बांह पेश रहीं मिसिले हजारबार खेल गयो खेली खत खोपड़ी पड़ी रही ॥२॥

बने रहे बँगला बनात के कनात् खेमा चांदनी चँदोवा छोलदारी ही खरी रही। तनी रही चिकन वारीक खश खानदान छिड़क गुलाब आब टीटी तर धरी रही। भर रहे नशासी जुमुर्रद के पियाला कर सोना की सुराही हू शराब सो भरी रही। सिकी रही सीखन कबाब की मसालेदार खेल गयो खेली खेत खोपड़ी पड़ी रही ॥४॥

होरही तमाशा हास बासन अखाड़न में मुजरा की मौज मिलि कंचनी खरी रही। सारंगी मृदंग बीन तालसाज लिये रहे गावत कलाव तनकी सुरन भरी रही॥ सीताराम हाथ में अनाम दाम परे रहे कंठ मध्य मनियों हार मोतियों लरी रही। भरे रहे मनके मनोरथ अनेक हाय खेल गयो खेली खेत खोपड़ी पड़ी रही ॥५॥

हाथी दांत खाड़ ऊनी पाठकी नवार रही चंदन की चौकी चार औरन लरी रही। कोमल बिछौना बिछे कसे रहे सेजबन्द फूलन की माला गास तकिया धरी रही॥ खासी खुशबोई लिये अम्बर कपूर केरी, केवड़ा गुलाव इतर शीशियां भरी रही। लगी रही शौककी संगातकी बरसात आप खेल गयो खेली खेत खोपड़ी पड़ी रही ॥६॥

होरही इस्पीच बीच मँडप के पोलिटिकल अकल रि पोर्टरन की फेरमें परी रही। बैठे रहे बाबू छः हजार ता पीट रहे हुर्रे हूका शोर बाढ़ें वोट लिये खरी रही। ल फूल डेलिगेटन की छातीपर सब्जेक्ट रिशेप्शन क

करी रही । किये रहे पास रिजलूशन सिवलसर्विस खेळ गयो खेली खेत खोपड़ी परी रही ॥७॥

होरहे डिफौर्मर रिफौर्मर का रूप धरे सोशल रिफौर्मर को मिटिंग करीरही । ग्यारह पति मुर्दा और बारवें को हैजा हुआ तेरवें को दस्त आया विधवा खरी रही । कोट पटलून बूट टाँगे रहे खूटोंपर टेबल पै टोप रक्खा गलेमें घरी रही। स्वयम्बर शादी की मुराद रही मनही में खेळ गयो खेली खेत खोपड़ी परी रही ॥८॥

पड़ा रहा नाम शर्मा बर्मा नहीं आया काम गुप्त और दासन की पदवी खरी रही । सरकारी खिताब ले जनाब मशहूर हुआ सियेसाई रायकी बहादुरी झरी रही । एमे रहे पास और बीए भी उदास हुये रोरही वकालत बरिष्टरी डरी रही । खड़ी रही राजसभा, आर्यसभा विद्यासभा खेळ गयो खेली खेत खोपड़ी परी रही ॥९॥

लगे रहे नोटिस बजार गली कूचन में वार्षिक उत्सवकी तयारी ही करी रही । खाकभरा होम कुण्ड वेद का न नाम रहा उर्दू अंगरजी की किताबैं हाथही रही । रोय रहे बन्धु वर्ग भ्रातृगण रोय रहे बटे रहे नेम ताली ताली पै धरीरही। छापी रही देवि देवतानकी बुराई बुरी खेळ गयो खेली खेत खोपड़ी पड़ी रही ॥१०॥

किया रहा अर्थ ऋग् यजुकी गपोड़बाजी सोभी नहीं पूरा हुआ बासना भरी रही । सिखारहा योग बर्ष चारसौके जीने लिये मौतने कपाळ क्रिया जल्दी करी रही ॥ खुल्लारहा

कालिज स्वरूप जेसे होटल का आपस में जूता चल नमस्ते खरी रही । चिमनी चिराग और फानूस लैम्प जले रहे खेल गयो खेली खेत खोपड़ी पड़ी रही ॥११॥

लीया रहा आर्य पदनाऊ और धीवरोंने बगल में गुच्छी मच्छी जाल में फरी रही । थर्डन पसन्द सोये फर्सट कलास वचि पोथी भाष्यभूमिका की तकिया करी रही ॥ होरहा फजीता जहां तहां इन स्वांगिन का प्रतिनिधि बम्बे अजमेर में भरी रही । एक मत होने का इरादा मिल खाक साथ खेल गयो खेली खेत खोपड़ी पड़ी रही ॥१२॥

॥ भुजंगप्रयात ॥

गयो विप्र जो वेद पन्थै न धारयो । गयो क्षत्रि जो शत्रु नाहीं बिदारयो ॥ गयो वैश्य सोई जो दान न दीन्हयों । गयो शूद्र सेवा द्विजाती नकीन्हयो ॥ यती सोगयोजाहि संगी सुहायो । गृही सो गयो भिक्षुकै जो फिरायो ॥ गयी नारी नाहै निजै सो न पागी । सो त्यागी गयो बासना जाहि जागी ॥ गयो पुत्र मातापिता जोन सेयो । पितासो गयो पुत्र विद्या न देयो ॥ गयो सो गुरू जो प्रकाश्यो हियोना । गयो शिष्य भक्ती गुरू जो कियोना ॥ गयो साधु सोई जो इन्द्री न रोक्यो । गयो पाहरू तस्करै जो न टोक्यो ॥ गयो सेवकै स्वामि सों भेराख्यो । गयो स्वामि सों भृत्य से बैन भाख्यो ॥ गयो सो जासों सिद्धी भईना । गयो जंत्रसो जासों व्याधी ग[illegible] सो विद्या गई नम्रता जायें नाहीं । गयेवे-नहीं नीर [illegible]

माहीं ॥ गयो मित्र जो नेह नाहीं निबाह्यो । गयो शत्रु जो शत्रु अन्तै न दाह्यो ॥ गयो भूप जो नीतिको त्यागि दीन्ह्यो। प्रजासों गयो भूप सेवा न कीन्ह्यो ॥ गयो मेघना मूसळाधार बरस्यों । गयी राजि जामें प्रजा अन्न तरस्यों ॥ गयो क्षेत्र सो बीज जोना उगायो । गयो वृक्ष फूलै फलै जोन लायो ॥ गयो वासरै जो बिना अन्न बीत्यो । गयो रैनि सोई जो निद्रा से रीत्यो ॥ गयो नैनसे श्याम झांकी न कीन्ह्यो । गयो घ्राण इन्द्री सुगन्धै न लीन्ह्यो ॥ गयो श्रोत्र गोविन्द गानै सुन्योना । गयो राग गोविन्द गानै सुन्यो ना ॥ गयो हाथ काहू सहारा कियो ना । गयो देह जो हेतु औरे दि-योना ॥ गयो मंत्र जो नीति रीति न जानी । भलाई गई जाही आपै बखानी ॥ सो योगी गयो चित्त वृत्ति न रोकी। गयो सन्त सोई भयो जो सशोकी ॥ तपस्वी गयो क्रोध जो चित्त आयो । जपी सो गयो ध्यान जोना लगायो ॥ फलै चाह राख्यो गयो कर्म सोई । गयो ज्ञान जामें अखंडै न होई॥ गयी बुद्धि सोई विवेकी भईना । गयी ऋद्धि सोई परै जो दईना ॥ गयी भक्तिसो भेष जो नाहि मान्यो । गयी मित्रता जो छल्यो चित्त आन्यो ॥ सभा सो गई जामें बूढ़ो नआयो। गयी जीह जो कृष्ण नामैं न गायो ॥ गयी बाळ वै जोकै [illegible]द्या पळ्योना । गयो अश्व सो जापै नित्तै चळ्योना ॥ ज-[illegible]ी गयी लोक दोऊ न साध्यो । बुढ़ापा गयो जो प्रभूना [illegible]यो ॥ गयो दीन जो सर्व त्यागी भयोना । समस्तै गयो [illegible]ामैं लयोना ॥

॥ अथ श्रीविक्टोरियास्तव ॥

यदनुशासन भाल भरा नृपा अव निवेश्य करी खलु यत्कृपा ॥ इह बदान्य नृपाधि नृपेश्वरी जयति सामलका वि-कटोरिया ॥१॥ स्व बिषयेषु यया परि कल्पिताः प्रति पुरं नि-ळया बहुधा श्रुधाः । पठन चित्र कलौषधि संज्ञका जयति सा मलका विकटोरिया ॥२॥ सुगुणिनः सुधियो बहु पाठका अ-मित मासिक मान प्रकल्पिताः ॥ परि पठन्ति सदा शिशवः स्त्रियो जयति सामलका विकटोरिया ॥३॥ बहु सुवस्तु चयानि महाद्भुत–स्थल जला भ्रज जीव व पंक्षिच ॥ सकल देश भवा निह पेषुवा जयति सामलका विकटोरिया ॥४॥ पटु धियो बहु यत्न सुशिक्षिता बहव एव हितेषु फिरं गजाः ॥ बहु कला कुशलाः प्रभवन्निवै जयति सामलका विकटोरिया ॥५॥ दहन वारि चरत् द्रुत गानि यत्सु कृपया सदऽनांसिवि भान्तिहि ॥ भरतखण्ड भुवीह चमूरिशो जयति सामलका विकटोरिया ६ उरू दया प्रति वर्षमतीज्यया गुरु धनं लघुराति सराष्ट्रकम् ॥ विपुल तर्ष दवर्गवरेश्वरी जयति सामलका विकटोरिया ॥७॥ सुकरुणार्द्र दृशा जगतीतलं कृत मलं सकलं समलंकृतम् । गदि धनोन धवो न तन्नूनया जयति सामलका विकटोरिया८ द्रुत विलम्बित संज्ञक मष्टकम् यदि करिष्यति साश्रुति दृक् थम् ॥ स्वयमयोद्भवतर्ष गुरूत्तमम् सपदिनैन मुतैष्यातितत्कवि

सनातनधर्म दर्पण प्रथमभाग समाप्त